महावीर या महाविनाश

प्रवचन-क्रम

1. मानवीय गरिमा के उदघोषक..2
2. अंतर्दृष्टि की पतवार...14
3. आत्म-दर्शन की साधना..25
4. स्वरूप में प्रतिष्ठा...40
5. व्यक्ति है परमात्मा...53
6. असुत्ता मुनि..68
7. अंतस-जीवन की एक झलक...81
8. जीवन-चर्या के तीन सूत्र...98
9. सत्य का अनुसंधान...114 10...अहिंसाः आचरण नहीं, अनुभव है .... 130 11..अहिंसा-दर्शन 145

महावीर या महाविनाश
पहला प्रवचन

मानवीय गरिमा के उदघोषक

इस पुण्य स्मरण-दिवस पर मैं दुखी भी हूं और आनंदित भी हूं। दुखी इसलिए हूं कि महावीर का हम स्मरण करते हैं, लेकिन महावीर से हमें कोई प्रेम नहीं है। दुखी इसलिए हूं कि धर्म-मंदिरों में हम प्रवेश करते हैं, लेकिन धर्म-मंदिरों पर हमारी कोई श्रद्धा नहीं है। दुखी इसलिए हूं कि हम सत्य की चर्चा करते हैं, लेकिन सत्य पर हमारी कोई निष्ठा नहीं है। और ऐसे लोग जो झूठे ही मंदिर में प्रवेश करते हों, और ऐसे लोग जो झूठा ही भगवान का स्मरण करते हों, उन लोगों से बुरे लोग हैं, जो भगवान का स्मरण नहीं करते और मंदिरों में प्रवेश नहीं करते। क्योंकि वे लोग जो स्पष्टतया धर्म के विरोध में खड़े हैं, कम से कम नैतिक रूप से ईमानदार हैं--उनकी बजाय, जो धर्म के पक्ष में तो नहीं हैं, लेकिन पक्ष में खड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।
सारी जमीन इस तरह के धार्मिक लोगों से भर गई है जो धार्मिक नहीं हैं,
और उनके कारण धर्म रोज डूबता चला जाता है। और सारे मंदिर ऐसे लोगों से भर गए हैं जो नास्तिकों से भी बदतर हैं, और इसलिए मंदिर मंदिर नहीं रह गए हैं। उन ओंठों से भगवान महावीर का या बुद्ध का या कृष्ण का स्मरण, जिन ओंठों में सच में ही धर्म की कोई प्रतिष्ठा नहीं है, अपमानजनक है। इसलिए मैं दुखी हूं।
और इसलिए आनंदित भी हूं कि इतना सब हो जाने के बाद भी, मनुष्य के जीवन
से धर्म की सारी जड़ें टूट जाने के बाद भी, मनुष्य के अंतस्तल से धर्म से सारे संबंध विच्छिन्न हो जाने के बाद भी, सारी निष्ठा और सारी आस्था खंडित हो जाने के बाद भी इसलिए आनंदित हूं, कि कम से कम हमारे मन में पच्चीस सौ वर्ष पहले कोई हुआ हो, पच्चीस सौ वर्ष पीछे इतिहास में कोई हुआ हो, उसके प्रति एक स्मृति की रेखा हमारे हृदय में उठती है। जो अंधकार घना है, उसके लिए दुखी हूं, लेकिन जो स्मृति की थोड़ी सी प्रकाश-किरण है, उसके कारण आनंदित भी हूं।
हम कितने ही दूर चले गए हों, लेकिन हमारे मन में एक स्मरण और एक स्मृति
और एक ख्याल मौजूद है। उस किरण के सहारे शायद पूरे अंधेरे को भी मिटाया जा सकता है।
इस स्मृति-दिवस पर महावीर के संबंध में कुछ थोड़ी सी बातें कहूंगा और कुछ थोड़ी सी बातें आपके संबंध में कहूंगा। क्योंकि जो बातें केवल महावीर के संबंध में हों, वे आपके किसी काम की नहीं होंगी। और जो बातें केवल आपके संबंध में हों, उनसे महावीर का कोई संबंध नहीं होगा। इसलिए उचित है कि मैं थोड़ी सी बातें आपके संबंध में कहूं और थोड़ी सी बातें महावीर के संबंध में कहूं, ताकि आप महावीर से संबंधित हो सकें। ताकि रास्ता बन सके और आप उनके विचार तक, उनके उस आकाश तक आपकी आंखें खुल सकें। इसलिए थोड़ी सी बात आपकी और थोड़ी सी बात महावीर की।
इसके पहले कि महावीर के संबंध में कुछ कहूं, बहुत उचित है कि आपके संबंध में कहूं। क्योंकि आप महावीर को समझना चाहते हैं, आप महावीर को प्रेम करना चाहते हैं, आप महावीर के प्रति निष्ठावान होना चाहते हैं। और आप महावीर के विचार और उनकी साधना से लाभान्वित होना चाहते हैं, तो आपके संबंध में कुछ बातें बहुत जरूरी हैं।
पहली बात तो यह जरूरी है कि आप इस बात को समझ लें कि अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं इसलिए महावीर को श्रद्धा देते हों तो वैसी श्रद्धा का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा नहीं है। अगर आप जैन घर में पैदा होने से महावीर को आदर देते हों तो क्षमा मुझे करें, आप कोई भी आदर नहीं देते हैं। आपके किसी घर में पैदा होने से महावीर को दिए गए आदर का क्या संबंध हो सकता है? आपका किसी समाज में पैदा हो जाना, आपका किसी परिवार में पैदा हो जाना, महावीर से आपको संबंधित नहीं करता।
इसे स्मरण रखें, कोई व्यक्ति ईसाई घर में पैदा हो जाने से क्राइस्ट से संबंधित नहीं होता। और कोई व्यक्ति जैन घर में पैदा हो जाने से महावीर से

संबंधित नहीं होता। कोई व्यक्ति हिंदू घर में पैदा हो जाने से कृष्ण से संबंधित नहीं होता। यह बात इतनी सस्ती नहीं है। धर्म से संबंधित होना जीवन का सबसे मंहगा सौदा है। और जिन लोगों ने समझा हो कि खून से और जन्म से तय हो जाता है, उन पागलों के लिए क्या कहा जाए?
धार्मिक होना दुरूह साधना की बात है। और धार्मिक होने के लिए किसी जन्म से कोई संबंध नहीं है, बल्कि अपने भीतर जो भी बुरा है और जो भी अंधकार है, उसकी मृत्यु से धर्म का संबंध है। आपके जन्म से नहीं, आपके मर जाने से आप धर्म से संबंधित होंगे। आपके किसी घर में पैदा हो जाने से नहीं, आपकी संपूर्ण अहंता को लेकर अगर आप मर सकेंगे, तो आप धर्म से संबंधित हो जाएंगे।
और मैं आपको यह भी कहूं, जैसा मैंने कहा कि ईसाई घर में पैदा होने से कोई क्राइस्ट से संबंधित नहीं होता और जैन घर में पैदा होने से महावीर से संबंधित नहीं होता, वैसे ही मैं आपको यह भी कहूं कि जो महावीर से संबंधित हो जाता है वह क्राइस्ट से भी संबंधित हो जाता है और कृष्ण से भी संबंधित हो जाता है। इन जीते और जागते प्रकाश स्रोत में से किसी एक से भी जो संबंधित हो जाता है, वह अनंत प्रकाशों से संबंधित हो जाता है।
गांधी जी को किसी ने अमरीका से एक पत्र लिखा था और उनको पूछा था कि आप गीता को बहुत आदर देते हैं, क्या मुझे आप आज्ञा देंगे कि मैं भी हिंदू हो जाऊं? गांधी जी ने उसे उत्तर दिया कि मैं किसी को यह नहीं कह सकता कि वह हिंदू हो जाए, या मुसलमान हो जाए। मैं तो यही कहूंगा, वह जिस धर्म में है, उस धर्म की संपूर्ण गहराई में उतर जाए। अगर वह क्रिश्चियन है तो वह अच्छा क्रिश्चियन हो जाए, अगर वह मुसलमान है तो अच्छा मुसलमान हो जाए। अच्छे मुसलमान में, अच्छे ईसाई में, और अच्छे जैन में कोई फासला नहीं रह जाता है। सब फासले बुरे लोगों में हैं। सारे फासले बुराई के बीच हैं, भलाई के बीच कोई फासला नहीं है।
और इसीलिए जो धर्म अलग-अलग खड़े दिखाई पड़ते हों, जो मंदिर और चर्च अलग खड़े दिखाई पड़ते हों, जानना कि वे बुरे लोगों ने खड़े किए होंगे। वे भले लोगों के खड़े किए हुए नहीं हो सकते। और जो संप्रदायों और संगठनों में विभक्त दिखाई पड़ते हों और जो आर्गनाइजेशंस में बंधे हुए दिखाई पड़ते हों, समझना कि उसमें बुरे लोग नेता होंगे। वह भले लोगों का काम नहीं हो सकता। साधु जगत में किसी को लड़ाते नहीं हैं और असाधु सिवाय लड़ाने के कुछ भी नहीं करते हैं।
यदि महावीर से आप संबंधित हो गए तो आप क्राइस्ट से और कृष्ण से भी संबंधित हो जाएंगे। क्योंकि ये नाम अलग हैं, इनके भीतर जो सचाई है, वह एक है। यहां बहुत, हजार दीए जलते हों, वे हजार दीए अलग-अलग हैं, लेकिन उनमें जो ज्योति जलती है वह एक है। और लाख फूल यहां खिले हों, वे फूल सब अलग-अलग हैं, लेकिन जो सौंदर्य उनमें प्रकट होता है वह एक है। सारी जमीन पर जो भी श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं, और जिनके जीवन में परमात्मा का प्रकाश उतरा है, और जिनके जीवन में सौंदर्य का अनुभव हुआ है, और जिन्होंने सत्य को उपलब्ध किया है, उनकी देहें अलग हों, उनकी आत्माएं अलग नहीं हैं।
इसलिए महावीर के इस जन्म-दिवस पर पहली बात आपसे यह कहूं कि आप सिर्फ
इस कारण महावीर के प्रति अपने को श्रद्धा से भरे हुए मत समझ लेना कि आपका जन्म जैन घर में हुआ है।
धर्म बपौती नहीं है और किसी को वंशक्रम से नहीं मिलता।
धर्म प्रत्येक व्यक्ति की निजी उपलब्धि है और अपनी साधना से मिलता है।
इस समय सारी जमीन जिस भूल में पड़ी है, वह भूल यह है कि हम उस धर्म को, जिसे कि चेष्टा से, साधना से, प्रयास से उपलब्ध करना होगा, उसे हम पैदाइश से उपलब्ध मान लेते हैं! इससे बड़ा धोखा नहीं हो सकता। और जो आपको यह धोखा देता है, वह आपका दुश्मन है। जो आपको इसलिए जैन कहता हो कि आप जैन घर में पैदा हुए, वह आपका दुश्मन है, क्योंकि वह आपको ठीक अर्थों में जैन होने से रोक रहा है। इसके पहले कि आप ठीक अर्थों में जैन हो सकें, आप गलत अर्थों में जो जैन हैं, उसे छोड़ देना होगा। इसके पहले कि कोई सत्य को पा सके, जो असत्य उसके मन में बैठा हुआ है, उसे अलग कर देना होगा।

तो यह तो मैं आपके संबंध में कहूं कि आप अपने संबंध में यह निश्चित समझ लें कि अगर आपका प्रेम और श्रद्धा केवल इसलिए है, तो वह श्रद्धा झूठी है। और झूठी श्रद्धा मनुष्य को कहीं भी नहीं ले जाती। झूठी श्रद्धा भटकाती है, पहुंचाती नहीं है। झूठी श्रद्धा चलाती है, लेकिन किसी मंजिल को निकट नहीं लाने देती है। झूठी श्रद्धा अनंत चक्कर है। और सच्ची श्रद्धा एक ही छलांग में कहीं पहुंचा देती है।
तो आपकी झूठी श्रद्धा छूटे। आपका यह ख्याल मिट जाना चाहिए कि खून से
और पैदाइश से मैं धार्मिक हो सकता हूं। धार्मिक होना अंतस-चेतना के परिवर्तन से होता है। यह तो पहली बात आपके संबंध में कहूं।
दूसरी बात आपके संबंध में यह कहना चाहूंगा कि शायद आपको यह पता न हो
कि धर्म क्या है? आप रोज सुनते हैं--जैन धर्म, हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म। ये सब नाम हैं, ये धर्म नहीं हैं। शायद आप सोचते हों कि धर्म का संबंध किन्हीं सिद्धांतों को याद कर लेने से है। शायद आप सोचते हों किसी तत्व-प्रणाली को, किसी फिलासफी को, किसी तत्व-दर्शन को सीख लेने से है। तो आप भूल में होंगे।
धर्म का संबंध किन्हीं सिद्धांतों के स्मरण कर लेने से और याद कर लेने से नहीं है। आपको सारे सिद्धांत याद हो जाएं, तो भी आप धार्मिक नहीं बन सकेंगे। स्मृति से धर्म का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। यह हो सकता है कि आप सारे धर्म के सिद्धांत दोहराने लगें, वे आपकी वाणी और विचार में प्रविष्ट हो जाएं, उससे कुछ भी न होगा।
बहुत लोग समझते हैं धर्म के संबंध में कुछ जान लेंगे तो धार्मिक हो जाएंगे! धर्म के संबंध में कुछ भी जानने से कोई धार्मिक नहीं होता। कोई धार्मिक हो जाए तो धर्म के संबंध में सब जान लेता है। इस सूत्र को मैं पुनः दोहराऊं, धर्म के संबंध में जान लेने से कोई धार्मिक नहीं होता, धार्मिक कोई हो जाए तो धर्म के संबंध में सब जान लेता है।
तो यदि आप जैन धर्म के संबंध में कुछ जानते हों, महावीर के धर्म के संबंध में कुछ जानते हों, उसका कोई मूल्य नहीं है। अगर महावीर जिसे धर्म कहते हैं, उस अर्थ में आप थोड़े बहुत धार्मिक हों तो उसका बहुत मूल्य है। धर्म जानकारी नहीं है, धर्म आमूल जीवन को परिवर्तित करना है। धर्म कुछ सीखना नहीं है, धर्म कुछ वस्त्रों की भांति ऊपर से ओढ़ लेना नहीं है, धर्म तो श्वासों की भांति, प्राणों की भांति, हृदय की धड़कन की भांति, जब समग्र जीवन में प्रविष्ट हो जाए, तो ही सार्थक होता है।
तो दूसरी बात आपसे मैं यह कहूं कि अगर महावीर के सिद्धांत आपको मालूम हों तो उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। अगर महावीर की जीवन-चर्या आपको मालूम हो तो उसका मूल्य है। महावीर क्या कहते थे कि सृष्टि कैसे बनी, महावीर क्या कहते थे कि कितने पदार्थ हैं और कितने तत्व हैं, महावीर क्या कहते थे कि तर्क क्या है और सत्य क्या है, इसे जान लेने का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य इस बात का है कि महावीर कैसे चलते थे, कैसे उठते थे, कैसे जीते थे। महावीर के तत्व-चिंतन का मूल्य नहीं है, महावीर की जीवन-चर्या का मूल्य है।
जो जीवन-चर्या को साधेगा, वह महावीर के तत्व-ज्ञान को अपने आप उपलब्ध
हो जाएगा। जो महावीर के तत्व-ज्ञान को सीख कर बैठा रहेगा, वह तत्व-ज्ञानी बन कर रह जाएगा, वह महावीर की जीवन-चर्या को उपलब्ध नहीं होगा। जीवन-चर्या मूल है, तत्व-ज्ञान गौण है। जीवन-चर्या का वृक्ष कोई लगाए, तो तत्व-ज्ञान की शाखाएं अपने आप फूट आती हैं। और जो तत्व-ज्ञान की शाखाओं को इकट्ठा करता रहे, उसके हाथ में लकड़ियों का बंडल तो बहुत इकट्ठा हो जाता है, भार तो बहुत हो जाता है, उसके जीवन में मुक्ति का प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है। इसलिए दूसरी बात आपसे यह कहूं।
और तीसरी बात आपसे यह कहूं कि धर्म केवल उनके काम का है, जिन्हें प्यास हो। एक कुएं के पास हम खड़े हों। कुएं में जो पानी है, वह पानी केवल उन्हीं के लिए है, जिन्हें प्यास हो, अन्यथा पानी पानी नहीं है। पानी का होना पानी के भीतर नहीं है, आपकी प्यास में है। प्यास हो तो पानी पानी बन जाता है, प्यास न हो तो पानी कुछ भी नहीं रह जाता।

यह प्रकाश जल रहा है यहां। इस प्रकाश का होना प्रकाश में ही नहीं है, मेरी आंख में भी है। अगर आंख हो तो यह प्रकाश बन जाता है, आंख न हो तो सब अंधकार हो जाता है।
धर्म के सत्य तो निरंतर उपलब्ध हैं, जैसे प्रकाश निरंतर उपलब्ध है। प्रश्न धर्म के सत्यों का नहीं, प्रश्न मेरे भीतर आंख के होने का है। पानी तो हमेशा उपलब्ध है--प्रश्न पानी का नहीं, मेरे भीतर प्यास के होने का है। तो इसके पहले कि मैं पानी की चर्चा करूं, यह जरूरी है कि मैं आपकी प्यास की चर्चा कर लूं। इसलिए तीसरी बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, जहां तक मेरी समझ है, आपमें शायद ही धर्म की प्यास हो। क्योंकि जिनमें धर्म की प्यास हो, वे बहुत दिन बिना धार्मिक हुए नहीं रह सकते हैं। यह मैं सोच ही नहीं सकता कि कोई आदमी मुझसे कहे कि मैं वर्ष भर से प्यासा हूं और अभी पानी की तरफ गया नहीं! यह मैं सोच ही नहीं सकता, यह मेरी कल्पना में नहीं आता कि कोई आदमी वर्ष भर से प्यासा है और कुएं की तरफ गया नहीं! उसका न जाना इस बात का सबूत है, उसके भीतर प्यास न होगी। प्यास हो तो जाना ही पड़ेगा। प्यास हो तो चरण उस तरफ चले ही जाएंगे, प्यास हो तो सांसें खिंची चली जाएंगी, प्यास हो तो प्राण उसी तरफ भागेंगे।
जहां प्यास है, वहां गति है। और जहां प्यास नहीं है, वहां कोई गति नहीं है।
दुनिया को लोग कह रहे हैं कि अधार्मिक हो गई है! दुनिया अधार्मिक नहीं
हो गई। केवल एक बात हो गई है कि वह जो प्यास है धर्म की तरफ जाने की, वह क्षीण हो गई है; उसका बोध विलीन हो गया है, उसका ख्याल मिट गया है। ख्याल चीजों को देख कर पैदा होते हैं। विचार और आकांक्षाएं बाहर घटनाएं घटें तो हमारे भीतर अनुप्रेरित होती हैं।
जब महावीर जैसा व्यक्ति गांव से निकलता होगा और उनके आनंद को, और उनकी शांति को, और उनके प्रकाश को जब लाखों लोग देखते होंगे, तो स्वाभाविक था कि यह प्यास उनके भीतर पैदा होती हो कि ऐसी शांति और ऐसा आनंद हमें कैसे उपलब्ध हो जाए! मैं आपको कहूं कि महावीर या बुद्ध या उस तरह के व्यक्ति किसी को कोई उपदेश नहीं देते हैं। उनका उपदेश एक ही है। और वह बहुत गहरा है, और वह यह है कि जब वे आपके करीब से निकलते हैं, तो आपके भीतर एक प्यास को सरका कर जगा देते हैं। उनकी शिक्षाओं का उतना मूल्य नहीं है। इसलिए शिक्षाएं तो सब किताबों में लिखी हुई हैं, उनका आप पर कोई असर नहीं होता। इसलिए दुनिया से जब भी कोई शिक्षक मिट जाता है, तो उसकी शिक्षाएं तो सब मौजूद होती हैं, उनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। क्योंकि शिक्षक की खूबी शिक्षाओं में नहीं थी। शिक्षक की खूबी थी आपके भीतर प्यास को जगा देने में। कोई मुर्दा शिक्षा उसको नहीं जगा सकती है। केवल जीवित व्यक्ति ही उसे पैदा कर सकते हैं।
कल्पना में भी अगर आप ख्याल करें महावीर का, अगर कल्पना में भी विचार उठे कृष्ण का, क्राइस्ट का, तो आपके भीतर क्या होगा?
आपके भीतर यह होगा कि आपको लगेगा कि अगर हड्डी-मांस की इस देह में यह संभावना हो सकी कि यह सौंदर्य फलित हुआ है, तो क्या मेरे हड्डी-मांस दूसरे ढंग के बने हुए हैं? क्या महावीर के हड्डी-मांस किसी विशेष ढंग के बने हुए हैं?
कुछ ऐसे नासमझ हैं, जो कहेंगे, विशेष ढंग के बने हुए हैं। कुछ ऐसे नासमझ हैं, जो कहेंगे, उनके शरीर में खून ही नहीं है, दूध भरा हुआ है! लेकिन मैं आपको कहूं, उनके शरीर में बिल्कुल वैसे ही खून है, जैसे आपके शरीर में है। और उनकी हड्डियां बिल्कुल वैसी ही नश्वर हैं, जैसी आपकी हैं। यह मैं इसलिए कहना चाहता हूं ताकि आपको यह न भूल जाए कि महावीर होना आपकी भी संभावना है।
अगर महावीर के शरीर में दूध रहता हो खून की जगह, तो फिर आप महावीर नहीं
हो सकते। अगर महावीर की काया वज्र-काया हो, तो फिर आप महावीर नहीं हो सकते। कमजोर लोग जो दो-चार दिन में अस्पताल जाते हों, ये महावीर कैसे होंगे! उन नासमझों ने जिन्होंने यह प्रचार किया कि महावीर की काया वज्र-काया थी और जिन्होंने यह प्रचार किया उनका शरीर कोई दूसरे नियम पालता था, उन्होंने सारी दुनिया को महावीर से वंचित कर दिया।

मेरी बात हो सकती है ऐसा लगे कि मैं महावीर को नीचे उतार रहा हूं! मैं महावीर को एक सामान्य आदमी बना देना चाहता हूं, ताकि सामान्य आदमियों के वे काम के हो जाएं। जो सीढ़ी आप तक न पहुंचती हो, वह आपको आकाश तक कैसे ले जाएगी? वही सीढ़ी ऊपर उठा सकती है, जो मेरे पैर तक आती हो। अगर महावीर को अपना सिर बनाना है, अगर महावीर की ऊंचाई तक उठना है, तो महावीर की सीढ़ी आप तक आनी चाहिए।
एक गलती हुई पीछे सदियों में, आदर और श्रद्धा के मोह में हमने इन सारे लोगों को अलौकिक बना दिया। हमने महावीर को, बुद्ध को भगवान बना दिया। और हमने कहा कि वे अलौकिक पुरुष हैं! हमने अपने प्रेम में ये बातें कहीं, लेकिन हमें पता न रहा कि यह प्रेम मंहगा पड़ जाएगा। और यह प्रेम मंहगा पड़ गया। अब हम उनकी श्रद्धा करते हैं और आदर करते हैं, लेकिन कभी यह आकांक्षा हमारे भीतर पैदा नहीं होती कि हम महावीर बन जाएं। और अगर मैं आपसे कहूं कि मेरे मन में यह आकांक्षा पैदा हो कि मैं महावीर बन जाऊं, तो अनेक को तो ऐसा लगेगा यह बात तो नास्तिकता की हो गई, अनेक को तो ऐसा लगेगा यह महावीर का अपमान हो गया।
मैं आपको कहूं कि अगर इसमें महावीर का अपमान भी होता हो, तो भी मैं तैयार हूं। क्योंकि महावीर का कोई क्या अपमान कर सकेगा! मान-सम्मान के जो पार निकल गए हों, उनका कोई अपमान नहीं कर सकता। लेकिन आपका मैं सम्मान जरूर कर सकता हूं। महावीर के अपमान में भी अगर आप सम्मानित होते हों, एक क्षुद्रतम मनुष्य अगर महावीर के अपमान से सम्मानित होता हो, हम महावीर का अपमान करने को तैयार हैं--उस क्षुद्रतम मनुष्य को ऊपर उठाने के लिए, उसे महावीर तक पहुंचाने के लिए।
महावीर आप जैसे व्यक्ति हैं--आप ही जैसे व्यक्ति। लेकिन एक दिन आया कि
वे आप जैसे बिल्कुल नहीं रह गए। वे बिल्कुल आप ही के जैसे हड्डी-मांस के बने हुए व्यक्ति हैं। लेकिन एक वक्त आया कि उनके भीतर एक ऐसी आत्मा का उदय हुआ, जो अलौकिक है। देह तो आपकी थी, आत्मा आपकी नहीं थी। देह तो बिल्कुल आपकी थी, आत्मा महावीर की आपकी नहीं थी। और इसलिए एक रास्ता है। कम से कम देह के तल पर आप महावीर के साथ खड़े हैं। कम से कम देह के तल पर आप महावीर के साथी और मित्र हैं। और अगर देह के तल पर साथी और मित्र हैं, तो क्यों न आत्मा के तल पर मित्र होने की आकांक्षा पैदा हो?
अगर बीज के तल पर हम समान हैं वृक्षों से... अगर एक वट-वृक्ष के पास पड़ा हुआ एक वट का बीज यह सोचे कि मैं समान हूं इस वृक्ष से, क्योंकि यह वृक्ष भी बीज था और मैं भी बीज हूं। अगर उसे यह पता चले कि इस विराट वृक्ष के भीतर भी वे ही तत्व विराजमान हैं जो मेरे भीतर विराजमान हैं, जो इसके भीतर जाग गया है वह मेरे भीतर सोया हुआ है, तो उस बीज के भीतर प्यास पैदा होगी। प्यास तब पैदा होगी, जब संभावना संभावित दिखाई पड़े।
हमने सारे इन पुरुषों को लोकोत्तर बना कर बिठा दिया है, और तब हमारे भीतर प्यास क्षीण हो गई। हमने अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है। हमने आदर और श्रद्धा में ऐसी बातें गढ़ ली हैं, जिनके कारण हम खुद अपने ही उन प्यारे लोगों से वंचित हो गए हैं, जो हमारे हृदय की धड़कन बनने चाहिए थे।
तो मैं आपको कहूं, महावीर को भगवान बाद में कहना, पहले महावीर को अपना मित्र, साथी, सहयोगी और पड़ोसी कहें। उन्हें निकट समझें, ताकि उस दूर तक उठना आपके लिए संभव हो जाए, जहां तक वे पहुंचते हैं।
ये तीन बात मैं आपसे कहना चाहता हूं। और इन तीन बातों के आधार पर ही संभव होगा कि कुछ महावीर के संबंध में कहूं, उसे आप समझ सकें।
पहली बात मैंने आपसे यह कही कि आपके जन्म से आपका धर्म तय नहीं होता, उसके लिए कुछ और करना होता है। अगर महावीर का जीवन देखें, अगर उनकी उत्कट आकांक्षा और अभीप्सा का जीवन देखें, अगर उनकी साधना और प्यास का जीवन देखें--तो महावीर क्या कर रहे हैं? महावीर क्या कर रहे हैं? महावीर केवल एक उपाय कर रहे हैं, महावीर की पूरी साधना एक बात की है कि उनके भीतर वर्द्धमान की मृत्यु हो जाए, ताकि महावीर का जन्म हो सके। अगर धर्म जन्म से मिलता होता, तो महावीर को भी मिल गया होता। फिर बारह वर्षों की उत्कट तपश्चर्या में जाना नासमझी होती। फिर अपने जीवन को गलाना और बदलना पागलपन

होता। फिर अपने रत्ती-रत्ती को जलाना और उस दुर्गम अकेली चढ़ाई को चढ़ना हम कैसे समझा पाते कि ठीक है?
लेकिन महावीर जानते हैं कि धर्म जन्म से उपलब्ध नहीं होता। धर्म संकल्प से उपलब्ध होता है। धर्म श्रम से उपलब्ध होता है--अपनी मेहनत से, अपने श्रम से। इसलिए महावीर की परंपरा श्रमण परंपरा कहलाई। श्रमण का अर्थ हैः धर्म किसी भी भांति सिवाय श्रम के और उपलब्ध नहीं होता। उतना ही उपलब्ध होता है जितना हम श्रम करते हैं। उससे ज्यादा नहीं। कोई प्रसाद नहीं मिल सकता भगवान की तरफ से। कोई गुरु का आशीर्वाद कुछ नहीं कर सकता। किसी प्रार्थना, किसी स्तुति से धर्म नहीं पाया जा सकता।
यह बड़ी अदभुत बात थी। लेकिन हम ऐसे नासमझ हैं कि जिन महावीर ने यह कहा
कि स्तुति से धर्म नहीं पाया जा सकता, प्रार्थना से धर्म नहीं पाया जा सकता, भगवान के प्रसाद से धर्म नहीं पाया जा सकता, धर्म किसी से भिक्षा में नहीं पाया जा सकता--जिन्होंने यह कहा, उनके भक्त उनकी ही मूर्तियों के सामने हाथ जोड़े खड़े हुए हैं और उनसे प्रार्थना कर रहे हैं कि वे कुछ दे दें! जिन्होंने कहा, कुछ भी नहीं दिया जा सकता, जो भी लेना हो छीनना होगा; जो भी लेना हो पराक्रम से, अपने पराक्रम से पाना होगा। यह बड़े गौरव की बात उन्होंने कही। मनुष्य के संबंध में बड़े गौरव की और बड़ी गरिमा की बात उन्होंने कही। इससे बड़ा सम्मान मनुष्य का कभी नहीं हुआ है।
अगर मुझसे कोई कहे कि हम तुम्हें यह सत्य दिए देते हैं, तुम्हें कुछ न करना पड़ेगा, तो मैं उससे कहूंगा, ऐसे सत्य को मैं लूंगा कैसे! जिस सत्य के लिए मुझे कुछ न करना पड़ा हो, उसे केवल नपुंसक स्वीकार कर सकेंगे, पुरुषार्थहीन स्वीकार कर सकेंगे। जिनकी जीवन की सारी ऊर्जा बुझ चुकी है, वे स्वीकार कर सकेंगे। और ऐसा उधार और भिक्षा में पाया गया सत्य क्या जीवंत हो सकता है? क्या ऐसी चीज जीवन को प्रकाश और ज्योति से भर सकती है? महावीर ने कहा, सत्य कहीं भिक्षा से नहीं मिलेगा, सत्य के लिए तो आक्रमण करना होगा। सत्य के लिए भिक्षु नहीं, क्षत्रिय होना पड़ेगा।
आज तक जगत में जिन्होंने भी सत्य को पाया हो, उन सबको क्षत्रिय हो जाना पड़ेगा। क्षत्रिय का अर्थ है, उन्हें तो अपने श्रम की तलवार के बदौलत, अपने पराक्रम से, अपनी चेष्टा से पाना होगा। और इसलिए महावीर की परंपरा श्रमण परंपरा कहलाई। इसलिए महावीर उदघोषक कहलाए इस अदभुत मानवीय गरिमा के कि उन्होंने मनुष्य को इस बात का स्वाभिमान दिया कि तुम सत्य को मांगो मत, सत्य को जीतो।
सत्य को मांगो मत, सत्य के लिए जीतो। सत्य के लिए स्तुतियां मत करो, सत्य के लिए संघर्ष करो। सत्य के लिए लड़ो, सत्य के लिए अपना बलिदान दो, सत्य के लिए अपने को समर्पित करो। जिस मात्रा में जो अपने को देने को राजी होगा, उसी मात्रा में सत्य पर उसका अधिकार सुनिश्चित होता है। इस बात को महावीर ने तपश्चर्या कहा।
तपश्चर्या का अर्थ हैः इंच-इंच अपने को देना सत्य को पाने के लिए। जिस दिन व्यक्ति अपने को समग्रतया देने में समर्थ हो जाता है, उस दिन वह समग्र सत्य को उपलब्ध भी हो जाता है। अपने को देना और सत्य को पा लेना, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए सत्य की फिकर छोड़ दे कोई आदमी और अपने को देने की फिकर कर ले।
अपने को देने का मतलब क्या है? क्या आप सोचते हैं, घर-द्वार छोड़ कर भाग जाएं, तो आपने अपने को दिया? क्या आप सोचते हैं कि पत्नी और बच्चों को छोड़ कर भाग जाएं, तो आपने अपने को दिया? क्या आप सोचते हैं, अपनी संपत्ति और पद छोड़ कर चले जाएं, तो आपने अपने को दिया?
यह अपने को देना नहीं है। क्योंकि पद का क्या मूल्य था? धन का क्या मूल्य था? धन का मूल्य था कि उससे मेरी अहंता तृप्त होती थी। पद का मूल्य था कि मेरा अहंकार उससे बलिष्ठ होता था। अगर धन को छोड़ कर मेरे मन में त्याग का अहंकार पैदा हो गया हो, तो धन छा.ेडना व्यर्थ हो गया। अगर पद को छोड़ कर मेरे मन में त्यागी होने का दंभ पैदा हो गया हो, तो पद को छोड़ना व्यर्थ हो गया।
पद को और धन को छोड़ने की बात नहीं है, बात तो अहंता को छोड़ने की है। जो अहंता को छोड़ता है, वह अपने को छोड़ता है। और जो अहंता के अतिरिक्त कुछ भी

छोड़ता हो, उसका छोड़ना सब फिजूल है; क्योंकि उस छोड़ने में भी उसकी अहंता फिर बलिष्ठ हो जाएगी। जो धन से प्रगाढ़ होती थी, वह धन के त्याग से प्रगाढ़ हो जाएगी। और जो अहंकार रास्तों पर चलता था कि मेरे पास इतना है, वही अहंकार फिर कल रास्तों पर चलेगा कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन मैं! मैं उसमें उतना ही मौजूद होगा।
मैंने सुना है, एक बादशाह अपने बचपन में एक स्कूल में पढ़ता था। उसके साथ एक मित्र था। बाद में वह मित्र फकीर हो गया, नग्न फकीर हो गया। उसने सब छोड़ दिया। बादशाह भी युवा हुआ, गद्दी पर बैठा। उसने दूर-दूर के राज्य जीते और अपने साम्राज्य को विस्तीर्ण किया। राजधानी नवीन बनाई। वैभव के दूर-दूर तक उसकी पताकाएं फहरीं। और तब एक दिन उस पुराने मित्र फकीर का नगर में आगमन हुआ, राजधानी में आगमन हुआ। राजा ने कहा, मेरा मित्र आता है। सब त्याग करके आ रहा है, बहुत उसकी उपलब्धि है। हम उसका स्वागत करें और शाही सम्मान दें। उसने सारे नगर को सजवाया। और जिस संध्या उसका प्रवेश होना था, उस दिन सारे नगर में दीपावली मनवाई। रास्तों पर कालीन बिछवाए, जहां से वह गांव में प्रवेश करेगा। राजा खुद अपने दरबारियों को लेकर द्वार पर स्वागत करने गया।
यह सारा स्वागत का इंतजाम चलता था, कुछ लोगों ने उस फकीर को जाकर कहा, राजा अपना धन दिखलाना चाहता है। राजा अपनी संपत्ति और वैभव दिखलाना चाहता है। इसलिए सारी राजधानी को सजा रहा है, ताकि तुम्हें हतप्रभ कर सके, ताकि तुम्हें दिखा सके कि तुम क्या हो, अकिंचन दरिद्र! नंगे भिखारी! और राजा क्या है।
उस फकीर ने कहा, अगर वह दिखलाना चाहता है अपनी संपत्ति, अपना वैभव, तो
हम भी उसे कुछ दिखला देंगे। सुनने वाले हैरान हुए। फकीर के पास दिखलाने को क्या था! सिवाय नंगे शरीर के उसके पास कुछ भी नहीं था। लेकिन उसने कहा, हम भी दिखला देंगे!
और जिस दिन नगर में उसका प्रवेश हुआ, उन बहुमूल्य ईरानी कालीनों पर जब
वह आकर चला तो लोग देख कर हैरान हुए। दिन तो अभी वर्षा के न थे, लेकिन उसके पैर घुटने तक कीचड़ से भरे थे! वह नंगा फकीर कीचड़ से भरा हुआ था और कीचड़ भरे पैरों से उन कीमती कालीनों पर चलता था। राजा को, सब को हुआ कि ये पैर इतने कीचड़ में कैसे भर गए! महल की सीढ़ियों पर चढ़ते वक्त राजा से नहीं रहा गया और उसने पूछा कि मित्र, क्या मैं यह पूछूं कि ये पैर इतनी कीचड़ से कैसे भर गए हैं?
उस फकीर ने कहा कि अगर तुम कालीन बिछा कर रास्तों पर अपना वैभव दिखलाना चाहते हो तो हम फकीर हैं, हम उस पर कीचड़ भरे पैर चल कर अपनी फकीरी दिखला देंगे!
उस बादशाह ने कहा, मैं तो सोचता था कि हममें तुममें कोई फर्क पड़ गया होगा। लेकिन हम पुराने ही मित्र हैं और कोई फर्क नहीं पड़ा। तुम भी वहीं हो, जहां मैं हूं। तुमने छोड़ कर भी उसी दंभ को तृप्त किया है, जिसे मैं पाकर तृप्त कर रहा हूं।
इसलिए सवाल छोड़ने का नहीं है और पकड़ने का नहीं है। इसलिए सवाल स्वयं
को देने का है, छोड़ने-पकड़ने का बिल्कुल भी नहीं। संपत्ति को देने का नहीं है, स्वत्व को देने का है।
महावीर की जो साधना है, वह संपत्ति छोड़ने की नहीं, स्वत्व को छोड़ने की है। स्वत्व छूटता है तो संपत्ति तो अपने आप छूट जाती है। जो संपत्ति छोड़ते हैं, उनका स्वत्व जरूरी रूप से नहीं छूटता।
महावीर की साधना स्वयं को विलीन और विसर्जित कर देने की है।
महावीर का कहना यह है कि जिसका अहंकार मर जाएगा, अहंकार की मृत्यु पर उसे आत्मा के दर्शन होंगे। जब तक अहंकार है, तब तक आत्मा का कोई दर्शन नहीं है। जो आत्मा को जानना चाहता हो, उसे मैं को, मैं-भाव को विसर्जित और विलीन कर देना होगा।
मैं की बदलियों के पीछे आत्मा का सूरज छिपा है। और जब तक मैं की बदलियां घिरी रहें, तब तक आत्मा के सूरज के दर्शन नहीं होंगे। इसलिए महावीर की समस्त साधना मैं को छोड़ देने की साधना है। सब तरफ से, सब उपायों से यह भाव छूट जाए कि मैं कुछ हूं। जिसका यह भाव छूट जाता है कि मैं कुछ

हूं, उसे यह भाव मिलता है कि मैं सब कुछ हूं। जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण को पा लेता है। और जो सब छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाता है, रिक्त और खाली, वह इस सारे, समस्त सृष्टि के रहस्य का मालिक हो जाता है।
मैं को छोड़ना महावीर का बुनियादी आधार है।
आपने सुना होगा कि महावीर की शिक्षा अहिंसा की है। और मैं आपको यह कहूं कि अहिंसक केवल वही होता है, जिसके भीतर मैं-भाव विलीन हो जाता है। मैं ही एकमात्र हिंसा है, अहंकार! यह बोध कि मैं कुछ हूं, यह एकमात्र हिंसा है और सब हिंसाओं में ले जाती है। हिंसक में और कुछ भी नहीं है, मैं की प्रगाढ़ता है।
अहिंसक में क्या है?
मैं की शून्यता है, मैं-भाव का विलीन हो जाना है।
आज दोपहर ही मैं एक साधु की बात करता था। वहां दूर चीन में एक साधु हुआ। वह जब अपने गुरु के आश्रम पर गया तो उसके गुरु ने आंख उठा कर उसको देखा। गुरु के देखते ही उसे खुशी हुई कि गुरु ने मुझे देखा, मुझे स्वीकार किया, मुझे इज्जत दी। लेकिन जैसे ही उसके मन में यह ख्याल उठा कि गुरु ने मुझे स्वीकार किया, मुझे देखा, मुझे इज्जत दी, वैसे ही गुरु की आंखें नीचे झुक गईं और बंद हो गईं। उसके तीन वर्ष तक गुरु ने फिर आंख उठा कर नहीं देखा। वह बहुत हैरान हुआ कि मुझसे क्या भूल हो गई?
उसने अपने किसी मित्र साधु को पूछा कि मुझसे क्या भूल हो गई? गुरु ने मुझे देखा था, मैं प्रसन्न हुआ और उस दिन से उनकी आंखें नीचे झुक गईं! तो उसके मित्र ने कहा, मत घबड़ाओ। उनके देखने से तुम्हारे मैं-भाव में सजगता आई होगी, इसलिए उन्होंने फिर नहीं देखा। क्योंकि तब तो देखना पाप हो जाएगा। तुम्हारा मैं प्रगाढ़ होगा उनके देखने से, कि गुरु मेरी ओर देखते हैं, तो पाप हो जाएगा। इसलिए गुरु तुम्हारी ओर नहीं देखते हैं। तुम उस दिन उनकी आंख के योग्य बनोगे जब उनकी आंख तुम्हें देखे, लेकिन तुम्हें कुछ भी पता न पड़े।
ऐसे तीन वर्ष बीते। एक दिन बगीचे में गुरु ने न केवल देखा, बल्कि गुरु उसे देख कर हंसे और मुस्कुराए भी। उसे पहले जैसा बोध तो नहीं हुआ अहंकार का, लेकिन एक आश्चर्य का भाव आया कि आज वे क्यों तीन साल के बाद हंस रहे हैं!
जैसे ही उसे यह भाव आया, गुरु की हंसी विलीन हो गई और आंखें नीचे की नीचे झुक गईं। तीन वर्ष और बीते, उसने किसी को पूछा कि यह क्या हुआ? वे मुस्कुराए थे, फिर मुस्कुराहट वापस चली गई। जिससे पूछा उसने कहा कि उनकी मुस्कुराहट से अगर तुम्हारे भीतर कुछ भी हुआ हो, अगर आश्चर्य भी पैदा हुआ हो, अगर जिज्ञासा भी आई हो, तब भी तुम अभी बाहर की बातों से कंपित होते हो। अभी बाहर की बातें तुम्हारे भीतर स्पंदन पैदा करती हैं। इसलिए गुरु ने डर कर अपनी मुस्कुराहट वापस ले ली होगी। वे तो तब मुस्कुराएंगे, जब उनकी मुस्कुराहट तुम्हारे भीतर कोई फर्क पैदा न करे।
ऐसे तीन वर्ष और बीते। और तीन वर्ष बाद उसके गुरु ने उसे रास्ते में पकड़ा और गले लगाया और उसे पास बिठाया। और उसके गुरु ने कहा, आज मैं प्रसन्न हूं। आज जब मैंने तुम्हें गले लगाया तो तुमने ऐसे देखा कि मैं शायद किसी और को गले लगा रहा हूं। उसके गुरु ने कहा कि आज मैं प्रसन्न हूं। जब मैंने तुम्हें गले लगाया तो तुमने मुझे ऐसे देखा, जैसे मैं किसी और को गले लगा रहा हूं। और अभी जब मैं तुमसे बातें कर रहा हूं, तो तुम ऐसे सुन रहे हो, जैसे मैं किसी और से बातें कर रहा हूं। अब तुम हवा-पानी की तरह हो गए। अब तुम्हारे भीतर जो मैं की कठिनाई थी, काठिन्य था, वह विलीन हो गया। अब तुम्हारे भीतर मैं का पत्थर चला गया। अब तुम तरल हो गए, अब तुम सरल हो गए। अब प्रभु का तुम्हें साक्षात निकट है।
जो मैं की कठिनता को छोड़ देते हैं, वे ही साधुता को और सरलता को उपलब्ध होते हैं।
महावीर ने उस मैं-शून्य सरलता को ही अहिंसा कहा है।
महावीर का अहिंसा से प्रयोजन दूसरे को दुख देना, न देना नहीं है।
महावीर की बात बहुत गहरी है। वे यह कहते हैं, जिसके भीतर मैं-भाव है, वह चाहे या न चाहे, उससे दूसरों को दुख मिलेगा। वह न भी हिंसा करे, तो भी उससे

हिंसा होगी। उसकी वाणी में, उसके चलने में, उसके उठने में हिंसा होगी।
उसके भाव में, उसके विचार में हिंसा होगी, उसके स्वप्नों में हिंसा होगी।
तो महावीर कहते हैं, जो मूलतः अहिंसक होना चाहता हो, दूसरे को दुख देने, न देने का प्रश्न नहीं है; अपने भीतर मैं को विलीन कर लेने का प्रश्न है।
वहां मैं शून्य हो जाएगा, दूसरे को दुख देना असंभव हो जाएगा।
और यह भी स्मरण रखें, जिस दिन दूसरे को दुख देना आपको असंभव हो जाएगा, उसी दिन--ठीक उसी दिन--दूसरा भी आपको दुख देने में असमर्थ हो जाएगा। जैसे वृक्ष जितने ऊंचे जाते हैं उतनी ही गहरे उनकी जड़ें होती हैं। वृक्ष की ऊंचाई जितनी ऊपर होती है, उतनी ही गहरी उसकी जड़ें होती हैं। जितना ऊपर वृक्ष विकसित होता है, उतना ही भीतर गहरा होता है। जितना लंबा वृक्ष होगा, उतनी लंबी उसकी जड़ें होंगी। ऐसे ही जो व्यक्ति दूसरों के जीवन में दूर तक दुख पहुंचाता है, उतने ही दूर तक उसके जीवन में भीतर गहरे दुख पहुंच जाता है। बाहर हम जितना दुख फैलाते हैं, उतनी ही गहरी दुख की जड़ें हमारे भीतर पहुंच जाती हैं। जो व्यक्ति बाहर दूसरों को दुख पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है, उस वृक्ष के कट जाने पर उसकी जड़ें भी विलीन हो जाती हैं।
अगर जीवन में आनंद पाना हो तो महावीर कहते हैं, दूसरे को दुख देने में असमर्थ हो जाओ, तो आनंद को उपलब्ध हो जाओगे। अभी तो हम आनंद पाने में दूसरों को दुख देने की फिकर नहीं करते, बल्कि शायद आनंद पाने में दूसरों को दुख देने को भी सीढ़ियां बना लेते हैं। महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति कभी आनंद को उपलब्ध नहीं होगा। ऐसा व्यक्ति कितनी ही आनंद की खोज करे, वह जितना दुख दूसरों में व्याप्त करता रहेगा, उतना ही गहरा दुख उसके भीतर प्रविष्ट होता चला जाएगा।
इसे महावीर कर्म-बंध कहते हैंः जो दुख देगा, वह दुख पाने के कर्म बांध लेगा।
लेकिन उनकी बुनियादी शिक्षा यह नहीं है कि दूसरे को दुख देने से बचो।
उनकी बुनियादी शिक्षा यह है कि उस जड़ को काट दो, जिसके कारण दूसरों को दुख देने की मजबूरी ऊपर पड़ती है। और वह जड़ मैं की है।
धर्म मैं की मृत्यु चाहता है। जिसका मैं मर जाता है, वही केवल धार्मिक होता है।
इसलिए मैंने कहा कि जन्म से धर्म का संबंध नहीं, मृत्यु से धर्म का संबंध है। जब हमारा मैं मर जाएगा, तो हम धर्म से संबंधित होंगे। इसलिए जो धर्म में जाने को उत्सुक हों, उन्हें मरने को तैयार होना चाहिए।
मरने से मेरा अर्थ समझे? मरने को तैयार होना चाहिए--उन्हें उस मैं को, जिसे हम सजाते और संवारते हैं, जिसे हम जीवन भर चेष्टा करते हैं परिपुष्ट करने की, उसे छोड़ने का साहस चाहिए। इसलिए धर्म इस जगत में सबसे बड़ा दुस्साहस है।
हम क्या देखते हैं लेकिन?
हम देखते हैं बूढ़े, मरणासन्न धार्मिक होने में उत्सुक होते हैं!
धार्मिक होना हो तो अंतिम दिन की प्रतीक्षा न करें। धार्मिक होना हो
तो जब शक्तियां परिपूर्ण हों और जब जीवन ऊर्जा से भरा हो और जब कुछ दुस्साहस करने का सामर्थ्य हो, तब कूद पड़ें। इसमें भी महावीर ने क्रांति की। पुराना धर्म यह कहता था कि धर्म अंतिम चरण है जीवन का। चार आश्रमों में विभक्त है जीवन। तीन आश्रम व्यतीत करो, चतुर्थ आश्रम में जब सब जीवन विलीन हो जाए, तब वृद्धावस्था में धर्म की साधना करो!
महावीर ने इसमें भी क्रांति की है। और महावीर ने कहा कि धर्म की साधना करनी है तो जब युवा हो, जब सारा बल और पराक्रम साथ है, सारा वीर्य और ओज साथ है, तब संलग्न हो जाओ। धर्म बुढ़ापे की दवा नहीं है, धर्म युवा होने का दुस्साहस है।
इसलिए स्मरण रखें, शक्ति के क्षीण होने की प्रतीक्षा न करें। धर्म मरतों का सांत्वना और आश्वासन नहीं है, धर्म जीवितों की दुस्साहसपूर्ण साधना है। इसलिए जब शक्ति और ऊर्जा मालूम हो, जितनी मालूम हो, उसके क्षीण होने की प्रतीक्षा न करें, उसे संलग्न करें, उसे उपाय में लगाएं, उसे संयोजित करें और जीवन को अनुशासित बनाएं, तो संभावना हो सकती है कि एक दिन क्रमशः अपने मैं-भाव पर चोट करते-करते मैं विलीन हो जाए।

सतत जागरूक रह कर, अपनी समस्त क्रियाओं में यह बोध रखते हुए कि मेरा मैं तो काम नहीं कर रहा है? मेरा अहंकार तो काम नहीं कर रहा है? मेरी अहंता तो पुष्ट नहीं हो रही है? जो ऐसी विवेक और अप्रमत्तता को साधता है, वह धीरे-धीरे मैं की बदलियों को मुक्त, उनको विसर्जित करने में समर्थ हो जाता है। और तब उसे उस सूरज का बोध होता है, जिसे हम धर्म कहते हैं। धर्म इसलिए ग्रंथों में नहीं है। मैं के पीछे छिपा है, ग्रंथों के शब्दों के पीछे नहीं। धर्म महापुरुषों की वाणी में नहीं छिपा है, अपने ही मैं की ओट में छिपा है। जो उसे वाणियों में खोजते रहते हैं, वे पंडित होकर समाप्त हो जाते हैं। जो उसे अपनी मैं की ओट में खोजते हैं, वे जीवन में उस सत्य को पाते हैं, जिसे हम साधुता कहते हैं, जिसे हम संन्यास कहते हैं, जिसे हम ज्ञान कहते हैं और जिसे अंत में हम मोक्ष कहते हैं।
यदि मुक्त होना है तो एक ही बंधन है जिससे मुक्त होना है--और वह बंधन मैं-भाव का है। और वही बंधन हिंसा है। मैं-भाव हिंसा है। मैं-भाव का शून्य हो जाना अहिंसा है। इसलिए महावीर ने अहिंसा को परम धर्म कहा। एक ही बात कही कि अहिंसा परम धर्म है। इस अर्थों में परम धर्म है, जो उसको ही साध ले तो शेष सब उसका अपने आप सध जाता है।
इस अहिंसा का जैन, हिंदू, मुसलमान से क्या वास्ता है? इस मैं को छोड़ने
से हिंदू, मुसलमान, ईसाई का क्या वास्ता है? यह तो सार्वभूत, सार्वभौमिक, शाश्वत सत्य है। और धर्म का कोई सत्य किसी संप्रदाय के लिए नहीं है। इसलिए कृपा करें, महावीर से खुद मुक्त हो जाएं और महावीर को अपने से मुक्त कर दें। न उन्हें संप्रदाय में बांधें, न उनके संप्रदाय में खुद बंधें। उनका कोई संप्रदाय नहीं है। अपने मैं को विलीन करें, अपने अहंकार को विलीन करें। और उसके माध्यम से अपनी हिंसा को छोड़ दें, अहिंसा को उपलब्ध हों। मैं की मृत्यु को पाएं। और तब आप पाएंगे, आप महावीर के हो गए। उस धर्म के हो गए, जो महावीर का है; उस धर्म के हो गए, जो सब महावीरों का है। वे महावीर चाहे क्राइस्ट के रूप में कहीं पैदा हुए हों, चाहे कृष्ण के रूप में पैदा हुए हों, चाहे आपके रूप में कल पैदा हो जाएं।
कुछ थोड़ी सी बातें आपके संबंध में कहीं, कुछ थोड़ी सी बातें महावीर के संबंध में कहीं। अंत में एक बात और आपसे कह दूं। जो मैंने कहा कि प्यास नहीं है, उस प्यास को अगर नहीं जगाते हैं, तो अपने जीवन को व्यर्थ खो देंगे। लेकिन प्यास को कैसे जगाएंगे?
प्यास जगती है जीवन के अनुभव से। चारों तरफ आंख खोल कर देखें--क्या हो रहा है? जब रास्ते पर एक आदमी मर जाता है, उसकी अरथी निकलती है, तब आप उस अरथी को देखते हैं, लेकिन सोचते नहीं। जो देख कर रह जाता है, वह अरथी से जो संदेश मिल सकता था, उससे वंचित हो जाता है। जो उसे सोचता है--जो उसे सोचेगा, वह थोड़ी देर में पाएगा, अरथी किसी और की नहीं, मेरी जा रही है। अगर कोई व्यक्ति सोचेगा तो पाएगा, अरथी किसी और की नहीं, मेरी जा रही है--दस दिन बाद सही, लेकिन अरथी मेरी जा रही है। और मैं जिस अरथी में कंधा दिए हूं--कंधा देते वक्त अगर कोई सोचेगा तो पता चलेगा, दूसरे उसकी अरथी को कंधा दे रहे हैं।
अगर हम आंख खोल कर अपने चारों तरफ देखें, तो यह संसार हमको धार्मिक बनाने को प्रतिक्षण तैयार है। अगर हम चारों तरफ व्याप्त दुख को देखें, अपने भीतर व्याप्त दुख को देखें, संसार में भागते हुए प्राणियों को चारों तरफ देखें, तो सब बदल जाएगा।
एक फकीर हुआ, वह फकीर एक गांव के बाहर एक झोपड़े में रहता था। किसी आदमी
ने उस गांव के भीतर प्रवेश करते हुए उस फकीर को पूछा कि मैं बस्ती का रास्ता जानना चाहता हूं। उस फकीर ने कहा, अगर बस्ती का रास्ता जानना चाहते हो तो बाएं तरफ मुड़ जाओ, थोड़ी दूर ही बस्ती मिल जाएगी। वह आदमी बाएं तरफ मुड़ा और थोड़ी दूर जाकर उसने देखा वहां कब्रिस्तान है! वह बहुत गुस्से में वापस आया और उसने लौट कर उस फकीर को कहा, आप पागल मालूम होते हैं। वहां बस्ती नहीं, कब्रिस्तान है। उसने कहा, और अगर कब्रिस्तान जानना चाहते हो तो अब इस तरफ चले जाओ, दाएं तरफ। वहां गया, वहां बस्ती थी। वह सांझ को लौटा और उसने कहा, आप पहेलियां बुझाते हैं! उस फकीर ने कहा, हमने तो जैसा जाना, वैसा कहते हैं। वहां जो बसे हैं कब्रिस्तान में, सदा को बस गए हैं। और यहां

जो बसे मालूम होते हैं, वे सब कब्रिस्तान के रास्ते पर हैं, वे सब कब्रों के भीतर जाने की तैयारी में हैं। इसलिए अगर बस्ती को देखना है तो उधर देखो, अगर कब्रिस्तान को देखना है तो इधर देखो।
और यह सच है। हम हंस रहे हैं, क्योंकि हमें लग रहा है यह फकीर ने किसी
और से कहा था। यह फकीर आपसे ही कह रहा है। जो हंस रहे हैं, उनसे ही कह रहा है। यह किसी और से कही हुई बात नहीं है। यह आपसे कही गई है। और आप देखें, यहां बैठे हुए देखें आप चारों तरफ। अगर आपकी थोड़ी आंख गहरी हो तो आप यहां मुर्दों को इकट्ठा हुआ पाएंगे। यहां सब मुर्दे हैं, तिथियां अलग-अलग हैं। यहां सब मुर्दे हैं। मुर्दे होने के सबके शिड्यूल, टाइम अलग-अलग हैं, बाकी सब मुर्दे हैं।
अगर जीवन को चारों तरफ हम देखें तो मृत्यु दिखाई पड़ेगी; दुख, पीड़ा दिखाई पड़ेगी। कुछ सार नहीं दिखाई पड़ेगा, असार दिखाई पड़ेगा। कुछ अर्थ नहीं दिखाई पड़ेगा, सब अनर्थ दिखाई पड़ेगा, व्यर्थ दिखाई पड़ेगा। उस बोध से प्यास पैदा होगी। उस बोध से लगेगा, अगर यह सब असार है, अगर यह सब व्यर्थ है, तो सार क्या है? अर्थ क्या है? अगर यह सब व्यर्थ है तो सार्थक क्या है? और तब भीतर एक आकांक्षा सरकेगी, एक लपट पैदा होगी, और वह लपट आपको धर्म की तरफ ले जाएगी।
वह लपट प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पैदा हो, यही मेरी कामना है। वह लपट बहुत दुख देगी। वह लपट बहुत चिंता पैदा करेगी। वह लपट आपकी सारी शांति को खंडित कर देगी। वह लपट आपके सारे संतोष को छीन लेगी। वह लपट आपकी नींद को छीन लेगी। वह आपको बेचैन कर देगी।
और ईश्वर करे कि वैसी बेचैनी आपके भीतर पैदा हो जाए। और ईश्वर करे, आपकी सारी झूठी शांति खंडित हो जाए, आप अशांत हो जाएं। और ईश्वर करे, आपके सारे संतोष के ढकोसले समाप्त हो जाएं और आप इतने असंतुष्ट हो जाएं कि आपको कोई कूल-किनारा न दिखाई पड़े।
जिस दिन मनुष्य को इस जगत में कोई कूल-किनारा नहीं दिखाई पड़ता, जिस दिन मनुष्य को इस जगत में कोई सहारा और आधार नहीं दिखाई पड़ता, उस दिन वह पहली दफा भगवान के आधार को उपलब्ध होता है। जिसके जगत में सब आधार और शांतियां छिन जाती हैं, उसे धर्म की शरण पहली दफा उपलब्ध होती है। धर्म की शरण जाना हो, जगत की शरण से मुक्त हो जाना जरूरी है। उससे प्यास... उससे प्यास पैदा होगी।
और आज के इस पुनीत पर्व पर और इससे बेहतर मैं और कुछ नहीं प्रार्थना
कर सकता। और मेरे हृदय में कोई बात उठती नहीं मालूम पड़ती और कोई कामना नहीं मालूम पड़ती, और वह यही है, प्रभु करे, आप सबके हृदय प्यास से भर जाएं। और आप सबके हृदय जगत को देख पाएं, जगत के अर्थ को देख पाएं, जगत की व्यर्थता को देख पाएं, ताकि आपके भीतर वह लपट पैदा हो जो जगत के पार और ऊपर उठाती है। वही लपट धीरे-धीरे व्यक्ति को सत्य तक और ज्ञान तक और मुक्ति तक ले जाने की सीढ़ी है।
आज इस पुनीत पर्व पर यही मेरी प्रार्थना और कामना है। मेरी इन बातों
को इतने प्रेम और शांति से सुना है, इतनी प्यास से सुना है, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं, बहुत ऋणी हूं। उस अनुग्रह के धन्यवाद स्वरूप मेरे प्रणाम स्वीकार करें। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर बैठे हुए परमात्मा को मेरे प्रणाम हैं।

महावीर या महाविनाश
दूसरा प्रवचन

अंतर्दृष्टि की पतवार

अगर हम खाली आकाश को भी थोड़ी देर तक बैठ कर देखते रहें, तो खाली आकाश आपको खाली कर देगा। अगर आप फूलों के पास बैठ कर फूलों को थोड़ी देर देखते रहें, तो थोड़ी देर में फूलों की गंध और फूलों की बास आपके भीतर भर जाएगी। और अगर आप सूरज को थोड़ी देर तक बैठ कर देखते रहें, तो आप पाएंगे, सूरज का प्रकाश आपके भीतर भी प्रविष्ट हो गया है। और अगर आप सागर की लहरों के पास बैठ कर उन्हें बहुत देर तक अनुभव करते रहें, तो आप पाएंगे, सागर आपके भीतर लहरें लेने लगा है।
ऐसे ही जब कोई परम पुरुषों की स्मृति में डूबता है, ऐसे ही जब कोई परम पावन प्रतीक पुरुषों के स्मरण से भरता है, तो उसके भीतर कुछ परिवर्तित होने लगता है, कुछ बदलने लगता है, कुछ नई बात का उसके भीतर प्रारंभ हो जाता है। तो मैं इस आशा में महावीर पर थोड़ी सी चर्चा करूंगा कि इस थोड़ी सी देर के सान्निध्य में, इस थोड़ी सी देर के उनके स्मरण में, आपके भीतर कोई परिवर्तन प्रभावित हो, आपके भीतर कोई आंदोलन उठे, आपके भीतर कोई आकांक्षा सजग हो जाए, आपके भीतर कोई बीज अंकुरित होने लगे और आपके भीतर नए जीवन को, वास्तविक जीवन को पाने की आकांक्षा उत्पन्न हो जाए।
यह हो सकता है। यह प्रत्येक मनुष्य के लिए संभव है। प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर उन्हीं संभावनाओं को लिए हुए है, जो महावीर में हम परिपूर्णता पर पहुंचा हुआ अनुभव करते हैं। जो महावीर के लिए विकसित हो गया है, वह हमारे भीतर बीज की भांति मौजूद है।
इसलिए कोई अपने दुर्भाग्य को न कोसे और कोई यह न समझे कि हम असमर्थ हैं उतनी ऊंचाइयों में उठने में। और कोई यह न सोचे कि हमारा काम एक है कि हम महावीर की पूजा करें। महावीर की पूजा करना किसी का भी काम नहीं है। काम तो यह है कि हर एक महावीर बनने की तरफ विकसित हो। और महावीर की पूजा भी अगर सार्थक है तो इसी अर्थों में कि हम क्रमशः उस पूजा के माध्यम से भी महावीर की तरफ, महावीर की भांति ऊंचे उठने में समर्थ हो जाएं।
इसे स्मरण रखें, कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा नहीं हुआ है। और अगर कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा हो, तो इससे बड़ा मनुष्य का अपमान क्या होगा? हर मनुष्य महावीर बनने को पैदा हुआ है। कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा नहीं हुआ। हर मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि जो एक के जीवन में विकसित हो सका है, वह प्रत्येक के जीवन में विकसित हो जाए।
तो मैं तो ऐसे ही देखता हूं, यहां इतने लोग इकट्ठे हैं, ये सब कभी न कभी महावीर हो जाएंगे। मैं ऐसे ही देखता हूं कि जितने लोग जमीन पर हैं, वे कभी न कभी सब महावीर हो जाएंगे। अगर उनमें से एक भी महावीर बनने से चूक गया--यह कैसे संभव हो सकता है? अनंत काल लग सकते हैं, अनंत समय लग सकता है, लेकिन यह असंभव है कि हममें से कोई भी महावीर बनने से चूक जाए। यह असंभव है कि जो बीज हमारे भीतर है परमात्मा का, वह एक दिन तक परमात्मा न हो जाए। वह एक दिन परमात्मा होगा।
यह हो सकता है कि महावीर में और आपके महावीर बनने में हजारों वर्ष का फासला हो जाए। यह हो सकता है कि महावीर के महावीर बनने में और आपके महावीर बनने में अनंत जन्मों का फासला हो जाए। लेकिन इससे कोई बहुत अंतर नहीं पड़ता है। इससे कोई बहुत भेद नहीं पड़ता है। अनंत यह काल है, इसमें हजारों वर्षों से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। अनंत यह काल है, इसमें अनंत जन्मों से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है।
तो महावीर का स्मरण मुझे इसलिए आनंद से भर देता है कि वह हमारे भीतर
जो महावीर की संभावना है, उसका स्मरण है। महावीर का विचार करना इसीलिए सार्थक है, उपयोगी है कि उसके माध्यम से हम उस संभावना के प्रति सजग होंगे, जो हमारे भीतर सोई हुई है और कभी जाग सकती है। अगर आपके भीतर उनका विचार उनके जैसे बनने का भाव पैदा न करता हो, तो उनका विचार व्यर्थ हो जाता है। तो आज की सुबह मैं आपको यह कहना चाहूंगा, महावीर की पूजा ही न करें, महावीर

बनने की आकांक्षा के बीज अपने भीतर बोएं और यह संकल्प अपने भीतर पैदा करें कि मैं उन जैसा बन सकूं। और इसमें, इस आकांक्षा में, इस संकल्प में जो भी सहयोगी हो, जो भी उसकी भूमिका बनाने में समर्थ हो, उस भूमिका को, उस आचरण को, उस विचार को, उस जीवन-चर्या को अंगीकार करें।
मैं ऐसा ही देखता हूं, दुनिया में दो तरह के महापुरुष हुए हैं। एक महापुरुष वे हैं, जिन्होंने बहुत बड़े-बड़े विचार दिए हैं। दूसरे महापुरुष वे हैं, जिन्होंने बहुत बड़ा आचरण दिया है, बहुत बड़ी चर्या दी है। महावीर पहले तरह के महापुरुष नहीं हैं। महावीर दूसरे तरह के महापुरुष हैं, जिन्होंने एक बहुत महान चर्या दी है। एक बहुत बड़ा आचरण दिया है, एक जीवन दिया है। निश्चित ही, बड़े विचार देना उतना मूल्य का नहीं है, जितना बड़ा जीवन देना है। निश्चय ही, बहुत बड़े चिंतन को जन्म दे देना उतना मूल्य का नहीं है, जितना महान चर्या को जन्म दे देना है। विचार तो स्वप्न की भांति हैं। विचार का कोई मूल्य नहीं है, वे तो पानी पर खींची गई रेखाओं के समान हैं। चर्या का मूल्य है। चर्या पत्थर पर खींची गई रेखा है। महावीर का, जो हमारे स्मरण से विलीन नहीं होते हैं वे, उसका कारण है। हमारे हृदयों पर उनकी चर्या ने एक लकीर खींच दी है--उनके आचरण ने, उनके जीवन ने।
महावीर को विचारक न कहें। महावीर विचारक नहीं हैं। महावीर एक साधक और सिद्ध हैं। साधक और विचारक में यही अंतर है। विचारक सोचता है, सत्य क्या है? साधक जीता है।
विचारक सत्य के संबंध में सोचता है, साधक सत्य को जीता है।
हमने अपने इस देश में विचारकों की बहुत कीमत नहीं मानी। बहुत बड़े-बड़े विचारक हुए हैं, जिन्होंने बड़ी दूर की बातें कही हैं--सृष्टि की, सृष्टि के बनने की, परमात्मा की, स्वर्ग की, नरक की, बड़ी-बड़ी विचार की बातें कही हैं। महावीर इन विचारकों में से नहीं हैं। महावीर बहुत सुदृढ़ भूमि पर खड़े हुए हैं। वे अपनी सारी चर्या को बदल रहे हैं। और यहां इस बात को भी मैं आपसे कह दूं, जो व्यक्ति मात्र विचार करता है, वह सत्य के संबंध में विचार करता है। और जो व्यक्ति जीवन में सत्य को उतारता है और आचरण करता है, वह सत्य के संबंध में विचार नहीं करता, वह आनंद के संबंध में साधना करता है।
महावीर सत्य के खोजी नहीं हैं, महावीर आनंद के खोजी हैं।
सत्य का खोजी एक दार्शनिक होता है, एक तत्व-चिंतक होता है। आनंद का खोजी एक योगी होता है। महावीर आनंद की खोज कर रहे हैं। और इसलिए यह हो सकता है कि कोई विचार कभी गलत हो जाए, यह कभी नहीं हो सकता कि आनंद गलत हो जाए। इस जमीन पर विचार की दृष्टि से हम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, आपका विचार दूसरा हो सकता है, मेरा विचार दूसरा हो सकता है। लेकिन आनंद की तलाश में हम भिन्न-भिन्न नहीं हो सकते। सब की तलाश आनंद की है।
इसलिए महावीर का धर्म सार्वजनीन, सार्वलौकिक धर्म है। इस जगत में जो
भी आनंद को खोजना चाहेगा, उसे महावीर के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। महावीर अगर विचारक होते तो कुछ थोड़े से लोगों के मतलब की उनकी बात होती, जो उनके विचार से सहमत होते। जो उनके विचार के विरोध में होते, उनके लिए कोई मतलब न रह जाता। इसलिए विचारकों के पंथ होते हैं, योगियों का कोई पंथ नहीं होता। विचारकों के संप्रदाय होते हैं, आनंद के खोजियों के कोई संप्रदाय नहीं होते। क्योंकि आनंद के लिए तो सारा जगत खोज कर रहा है। उस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। एक छोटे से कीटाणु से लेकर मनुष्य तक सभी आनंद की तलाश कर रहे हैं। आनंद के संबंध में दो मत नहीं हैं, कोई विरोध नहीं है। इसलिए विचार ऊपरी बात है, आनंद की खोज बहुत गहरी बात है।
अगर मैं आपसे यह कहूं कि आपके सामने दो विकल्प हैं--क्या आप परिपूर्ण आनंद उपलब्ध करना चाहते हैं या कि परिपूर्ण विचार उपलब्ध करना चाहते हैं? अगर आपके सामने दो विकल्प हों, अगर आपके सामने दो विकल्प खड़े हो जाएं कि क्या आप जानना चाहते हैं कि जगत-सत्य क्या है? या कि आप होना चाहते हैं कि परिपूर्ण आनंद क्या है? तो मैं नहीं समझता कि आपके हृदय सत्य को जानने की गवाही देंगे। आपके हृदय कहेंगे, हम पूर्ण आनंद को उपलब्ध होना चाहते हैं। सत्य को भी इसीलिए खोजा जाता है कि पूर्ण आनंद की तलाश में वह सहयोगी
हो जाए। सत्य का अपने में क्या मूल्य है? सत्य का अपने में कोई मूल्य नहीं

है सिवाय इसके कि सत्य की उपलब्धि से हम सोचते हैं कि पूर्ण आनंद के आधार रखे जा सकेंगे।
सत्य भी आनंद की तलाश का साधन मात्र है।
इसलिए महावीर के संबंध में पहली बात जो मुझे आज कहने का मन है, वह यह
है कि उन्हें सत्य के खोजी की तरह न देखें, उन्हें आनंद के खोजी की तरह देखें। वे आनंद की खोज करने वाले साधक हैं। और इसीलिए उनकी सारी चर्या, उनका सारा विचार, उनका सारा जीवन मोक्ष पर केंद्रित है। आनंद और मोक्ष एक ही चीज के दो नाम हैं।
दुख क्या है?
दुख सीमा है, दुख परतंत्रता है, दुख बंधन है।
और आनंद?
आनंद स्वतंत्रता होगी, बंधन-मुक्ति होगी, सीमाओं का टूट जाना होगा।
परिपूर्ण आनंद ही परिपूर्ण मुक्ति की अवस्था होगी। मोक्ष में और पूर्ण आनंद में कोई भेद नहीं होगा। जो पूर्ण आनंद को उपलब्ध है, वह मुक्त होगा। जो मुक्त है, वह पूर्ण आनंद को उपलब्ध होगा।
इसलिए पश्चिम के मुल्क के विचारक सोचते हैं, सत्य क्या है? भारत के साधक सोचते हैं, मुक्ति क्या है? मोक्ष क्या है? मोक्ष का उपाय क्या है? दर्शन और धर्म में यहीं भेद है। दार्शनिक सोचता है, सत्य क्या है? धार्मिक सोचता है, मोक्ष क्या है?
अगर आप पश्चिम के विचारकों को पढ़ेंगे तो आप पाएंगे, मोक्ष का कोई विचार ही नहीं करते हैं, मोक्ष का कोई ख्याल नहीं करते। उनके ग्रंथों में मोक्ष के संबंध में कोई चर्चा नहीं मिलेगी। और अगर आप भारत के ग्रंथों को खोजेंगे और देखेंगे तो पाएंगे कि सिवाय मोक्ष के हम कुछ भी नहीं खोज रहे हैं।
बुद्ध एक गांव से निकलते थे, और एक व्यक्ति वहां गिर पड़ा था। जंगल में
वह जाता था और किसी का तीर उसे लग गया। बुद्ध उसके करीब से निकले और उन्होंने उस आदमी को कहा, इस तीर को निकाल लेने दें। उस व्यक्ति ने कहा, पहले मुझे यह बताएं, तीर किसने मारा है? पहले मुझे यह बताएं कि यह तीर विष-बुझा था या गैर-विष का था? पहले मुझे यह बताएं कि मारने वाला मित्र था, कि शत्रु था, कि अनजान में उसने मार दिया?
बुद्ध ने कहा, ये बातें बाद में पूछ लेना। पहले तीर को निकाल लेने दो। कहीं ऐसा न हो कि हम बातें करते रहें और तुम्हारे प्राण समाप्त हो जाएं! बुद्ध ने कहा, तीर को पहले निकाल लेने दो, फिर बाद में हम विचार कर लेंगे कि तीर किसने मारा। कहीं ऐसा न हो कि हम विचार करते रहें और तुम्हारे प्राण समाप्त हो जाएं!
महावीर, बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट यही कह रहे हैं; हमारे हृदय में जो तीर लगा है दुख का, उसे हम पहले निकाल लें, फिर बाद में हम सत्य के संबंध में विचार करते रहेंगे। कहीं ऐसा न हो कि हम सत्य के संबंध में विचार करते रहें और प्राण समाप्त हो जाएं! इसलिए भारत की पूरी खोज सत्य के लिए नहीं है, मोक्ष के लिए है। भारत की खोज तीर किसने मारा है, इसको जानने के लिए नहीं है; भारत की खोज इसके लिए है कि तीर कैसे निकल जाए।
तो महावीर को आनंद की खोज, मोक्ष की खोज केंद्रीय है। सत्य क्या है, इसकी खोज केंद्रीय नहीं है, गौण है। जो लोग उन्हें एक तत्व-चिंतक की भांति ले लेंगे, वे भूल में पड़ जाएंगे। और हमने महावीर को तत्व-चिंतक की भांति ले लिया है। वह हमने भूल कर ली है। यह बात प्राथमिक रूप से आपसे कहूं। और इसलिए यह बात कहना चाहता हूं, ताकि आपको समझ में आ सके कि महावीर का कोई संप्रदाय नहीं हो सकता है। कोई समाज नहीं हो सकता, कोई पंथ नहीं हो सकता। जो भी आनंद को खोजता है, वह सब महावीर के संप्रदाय में है; सब महावीर के पंथ में है।
अभी मैं एक जगह था। किसी ने मुझसे कहा--एक जैन साधु ने मुझसे कहा--कि जैन धर्म के अतिरिक्त, जैन होने के सिवाय मोक्ष होने का कोई रास्ता नहीं है। मैंने उनसे कहा, ऐसा मत कहें। मैंने उनसे कहा, ऐसा मत कहें कि जैन धर्म के अतिरिक्त मोक्ष जाने का कोई रास्ता नहीं है। बल्कि ऐसा कहें कि जो भी कहीं से भी मोक्ष चला जाए, वह जैन है। मैंने उनसे कहा, ऐसा कहें, जो कहीं से

भी मोक्ष चला जाए, वह जैन है। यह मत कहें कि जो जैन है, वही मोक्ष जा सकता है। यह कहें कि जो भी मोक्ष चला जाता है, वह जैन है।
और अगर दूसरी बात मेरी आपको ठीक लगे तो इस जमीन पर जितने लोग मोक्ष को उपलब्ध हुए हों, वे सब महावीर के पंथ में हैं, महावीर के साथ हैं। और तब महावीर एक विराट पुरुष की तरह दिखाई पड़ेंगे, एक सीमित दायरे के भीतर बंधे हुए नहीं।
एक ही मेरी आकांक्षा है कि महावीर जैनियों से मुक्त हो सकें, ताकि उनका संदेश, और उनका ख्याल, और उनकी जीवन-चर्या सबके काम में आ सके। जिन कुओं पर किन्हीं का कब्जा हो जाता है, उनका जल सबके पीने के मतलब का नहीं रह जाता। और जिन कुओं पर किन्हीं का कब्जा हो जाता है, उन कुओं का पानी सबकी प्यास को बुझा नहीं पाता। कुओं को तोड़ दें और दीवालों को हटा लें और महावीर को बांधें नहीं, तो आप हैरान हो जाएंगे कि उनकी जो अंतर्दृष्टि है, वह सारे मनुष्य के स्वास्थ्य की मूल चिकित्सा बन सकती है। महावीर की जो अंतर्दृष्टि है, बहुत गहरी, बहुत पैनी है। और मनुष्य के जो भी रोग हैं, उनको दूर करने में समर्थ है। उस पैनी अंतर्दृष्टि के क्या बुनियादी आधार हैं, वह मैं आपसे कहूं।
महावीर की जो अंतर्दृष्टि है मनुष्य की समस्त रुग्णता के भीतर, मनुष्य की समस्त विक्षिप्तता के भीतर, मनुष्य के सारे जितने भी जीवन के दुख, पीड़ाएं, संताप हैं, उनके भीतर महावीर की जो अंतर्दृष्टि है, वह एक बात पर खड़ी हुई है। और वह बात यह है कि हम जिन्हें दुख मानते हैं, जिन्हें पीड़ाएं मानते हैं, जिन्हें कष्ट मानते हैं, उन्हें दूर करने का उपाय करते हैं। हर मनुष्य अपने कष्ट को, अपनी पीड़ा को, अपने दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है। हर मनुष्य कर रहा है--चाहे वह धन खोजता हो, यश खोजता हो, पद खोजता हो, प्रतिष्ठा खोजता हो--वह अपने दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है। महावीर की अंतर्दृष्टि यह है कि जो दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है बिना यह जाने कि दुख क्या है, नासमझ है, वह दुख को कभी दूर नहीं कर पाएगा। जो दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है बिना यह समझे कि दुख क्या है और किसे है, वह नासमझ है और दुख को कभी दूर नहीं कर पाएगा। एक दुख को दूर करेगा, दूसरा दुख घेर लेगा, क्योंकि मूल कारण मौजूद रहेगा। मेरे पैर में दर्द हो, मैं उसको दूर करूंगा, पैर ठीक हो जाएगा। फिर कल मेरे सिर में दर्द होगा, उसे दूर करूंगा और सिर ठीक हो जाएगा। दुख तो दूर होते जाएंगे, लेकिन दुख दूर नहीं होगा, दुख पीछे लगा रहेगा। एक दुख दूर होगा, दूसरे दुख मौजूद होंगे, क्योंकि मूल कारण विलीन नहीं होगा।
महावीर यह कहते हैं कि अगर मनुष्य के मूल दुख को हम समझें और दूर करना चाहें तो एक-एक दुख को दूर करने की जरूरत नहीं है, यह बात जानने की जरूरत है कि दुख क्या है और किसे है। जब मेरे पैर में दर्द हो रहा हो या मेरे सिर में दर्द हो रहा हो, तब मुझे यह जानने की जरूरत है कि दुख और पीड़ा क्या है और दुख और पीड़ा किसे हो रही है। अगर मुझे यह दिखाई पड़ सके--जो दुख को, पीड़ा को, संताप को... ।
मनुष्य के जीवन में दुख हैं, बहुत दुख हैं। एक दुख को हम दूर करते हैं, दूसरा दुख घेर लेता है; दूसरे को दूर करते हैं, तीसरा घेर लेता है। जो दुख को दूर करने में इस भांति लगा है, वह गृहस्थ है--जो एक-एक दुख को दूर करने में लगा है। जो समस्त दुखों के मूल कारण को दूर करने में लगा है, वह संन्यासी है। जो फुटकर बीमारियों को दूर करने में लगा है, वह गृहस्थ है। जो बीमारी मात्र को दूर करने में लगा है, वह संन्यासी है।
महावीर की जो अंतर्दृष्टि है मनुष्य की रुग्णता में और दुख में और पीड़ा में, वह यह है कि हमें यह जानना जरूरी है कि जब हमें दुख होता है, तो हमें दुख होता है या हमें दुख होने का भ्रम होता है? क्या मुझे दुख होता है या मेरे आस-पास दुख होता है और मैं समझ लेता हूं कि मुझे दुख हो रहा है? सिकंदर जब भारत से वापस लौटता था, तो उसने चाहा एक साधु को वह अपने साथ यूनान ले जाए। जब वह यूनान से आता था, उसके मित्रों ने कहा था, भारत से कुछ चीजें लाना, एक साधु भी ले आना। साधुओं की चर्चा रही है भारत के बाहर--भारत के साधुओं की। और सिकंदर भारत को जीत कर लौटेगा तो उसके मित्रों ने कहा था, और सब चीजें लाओ, एक साधु भी लाना। साधु देखना चाहेंगे।

सिकंदर जब लौटने लगा तो उसने--भारत की सीमा के पास उसे ख्याल आया--उसने कहा, हम किसी साधु को ले जाना चाहते हैं। उसने किसी विचारशील व्यक्ति से सलाह ली। उस विचारशील व्यक्ति ने कहा, जो चला जाए वह साधु नहीं होगा; और जो साधु है उसका जाना मुश्किल है। सिकंदर ने कहा, क्या बात करते हैं! जिसके सामने पहाड़ हट जाएं और जो पहाड़ों को भी बांध कर यूनान ले जाना चाहे, तो ले जाए। जो चाहे तो पूरे मुल्क को यूनान पहुंचा दे। एक साधु नहीं जा सकेगा! तो सिकंदर की तलवार किस काम आएगी? उस विचारशील आदमी ने कहा, जिसके सामने तलवार बेकार हो, वही तो साधु है। जो तलवार के भय से चला जाए, समझना कि उसे बेकार ले आए हो, वह सामान्य आदमी है, वह साधु नहीं है। फिर भी कोशिश कर लें। सिकंदर बहुत हैरान हुआ और बहुत उत्सुक हो गया। उसने डेरा रोक दिया और उसने कहा, एक साधु को खोज कर ही जाएंगे। यह सच में ही अजीब चीज है, अगर साधु ऐसा आदमी है। एक साधु की खबर लगी, वह वहीं नदी के किनारे, पहाड़ की तलहटी में, एक घाटी के पास रहता था। सिकंदर ने अपने सेनापति वहां भेजे। उन सेनापतियों ने जाकर कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें! बहुत सम्मान हम आपको देंगे, बहुत इज्जत देंगे, यूनान आपको ले चलना चाहते हैं। उस साधु ने कहा, अपने सिकंदर को कहना कि जिसने सिवाय अपने और सबकी आज्ञाएं माननी छोड़ दी हैं, जिसने सिवाय अपने और सबकी आज्ञाएं माननी छोड़ दी हैं, वही साधु है। सिकंदर को कहना, हम सिवाय अपनी आज्ञा के और किसी की आज्ञा से नहीं चलते। उसके सेनापतियों ने कहा, यह आप भूल कर रहे हैं। सिकंदर ने यह भी संदेश कहलवाया है कि यह भी कह देना कि अगर इनकार हुआ तो हम तलवार के बल भी ले जा सकते हैं। उस साधु ने कहा, अपने सिकंदर को कहना कि जिसे तुम तलवार के बल ले जा सकते हो, उसे बहुत समय हुआ हम छोड़ चुके हैं। जिसे तुम तलवार के बल ले जा सकते हो, बहुत समय हुआ हम उसे छोड़ चुके हैं। सिकंदर खुद गया, और वह नंगी तलवार लेकर गया। वह जब नंगी तलवार लेकर गया तो साधु ने कहा, तलवार म्यान के भीतर कर लो। क्योंकि सामने जो है, उसके लिए तलवार बेकार है, और तुम बहुत बच्चे मालूम पड़ रहे हो नंगी तलवार हाथ में लिए हुए! और तुम पर बहुत हंसी आएगी हमको, इसलिए तलवार म्यान के भीतर कर लो। सिकंदर ने कहा, आपको चलना है! अन्यथा हम आपको समाप्त कर देंगे। उस साधु ने कहा, जिसे तुम समाप्त करोगे, उसे हम भी समाप्त होते हुए देखेंगे। उस साधु ने कहा, जिसे तुम समाप्त करोगे, उसे हम भी समाप्त होते हुए देखेंगे। हम भी साक्षी होंगे। समाप्त तुम करो। उसने कहा, जब तुम मुझे काटोगे तो जिस भांति तुम मुझे देखोगे कटता हुआ, उसी भांति मैं भी कटते हुए देखूंगा। क्योंकि जिसको तुम काटोगे, वह मैं नहीं हूं। मैं अलग हूं, मैं पीछे हूं।
जिस पर चोट पड़ती है, हमारा होना उसके पीछे है। जिसको पीड़ा और दुख आता है, हमारा होना उसके पीछे है। जिस शरीर के पीछे हम सारे दुख और पीड़ाओं को दूर करने में लगे रहते हैं, वह शरीर हम नहीं हैं। एक-एक दुख को जो दूर करेगा, वह शरीर से बंधा रहेगा। जो सारे दुखों के मूल में झांकेगा, वह पाएगा, हम शरीर से अलग हैं।
महावीर कहते हैं, समस्त दुख का मूल क्या है? दुख का मूल है तादात्म्य,
यह आइडेंटिटी कि मैं शरीर हूं। सारे दुख का मूल यह है कि मैं शरीर हूं। और सारे आनंद का मूल यह बनेगा कि मैं जान लूं कि मैं शरीर नहीं हूं।
जब तक मैं जानता हूं कि मैं शरीर हूं, तब तक मैं संसार में हूं।
और जिस क्षण मैं जान लूंगा कि मैं शरीर नहीं हूं, मेरा मोक्ष में प्रवेश हो जाएगा।
मोक्ष का अर्थ है यह बोध कि मैं शरीर नहीं हूं।
और संसार का अर्थ है यह बोध कि मैं शरीर हूं।
तो अगर आपको यह लगता हो कि मैं शरीर हूं, तो चाहे आप साधु हों और चाहे
आप गृहस्थ हों, आप संसार में हैं। और अगर आपको लगता हो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो चाहे आप साधु हों, चाहे आप गृहस्थ हों, आप संसार में नहीं हैं।
मैं एक साध्वी से मिलता था। हवा जोर से चलती थी और मेरा कपड़ा उनको छूता था। वह बहुत घबड़ा गईं। कोई मित्र मेरे पास थे, उन्होंने मुझे रोका और कहा कि पुरुष का कपड़ा उनको छू रहा है। मैंने कहा, हैरानी हो गई। कपड़ा भी पुरुष हो सकता है! और अगर कपड़ा पुरुष हो सकता है, तो पुरुष छू लेगा तो क्या हालत होगी?

जिनको कपड़ा पुरुष हो सकता है, वे जानते होंगे कि वे शरीर हैं। उनकी तो
हद शारीरिक दृष्टि है। ये सब भौतिकवादी लोग हैं, ये सब मैटीरियलिस्ट हैं। ये अध्यात्मवादी नहीं हैं। जिनको मेरा कपड़ा छू रहा है और जो घबड़ाए हुए हैं कि पुरुष का कपड़ा छू रहा है, इनसे ज्यादा भौतिकवादी, इनसे ज्यादा देहवादी और कौन होगा?
एक साधु वह है, जो कहता है तुम तलवारें मेरे भीतर डालो तो हम खड़े होकर देखेंगे! उसे शरीर भी स्वयं का हिस्सा नहीं है। इन्हें कपड़ा भी स्वयं का हिस्सा है! तो दुनिया में ऐसे गृहस्थ हैं, जो आध्यात्मिक हो सकते हैं; और ऐसे साधु हैं, जो एकदम भौतिकवादी, एकदम शरीरवादी होते हैं।
महावीर की अंतर्दृष्टि यह है कि आपकी चेतना आपके शरीर से मुक्त हो जाए। लेकिन उनके पीछे चलने वाले लाखों साधु शरीर से इतने ज्यादा बंधे हुए हैं कि वे शरीर से मुक्त कैसे होंगे? महावीर की दृष्टि यह है कि आपकी अंतस-चेतना में यह पता चल जाए कि देह बाहर की खोल है, वस्त्र की भांति है, जिसे हमने पहना है; जिसे हमने पहना है, और हम चाहें तो उसी क्षण उतार सकते हैं। हमारी वासनाओं को जरूरत है कि हम उसे पहनें। जिस दिन हमारी वासनाएं क्षीण हो जाएंगी, हमें कोई जरूरत न होगी कि हम उसे पहनें।
शरीर वस्त्र की भांति है, जो हम अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए पहनते हैं। बार-बार पहनते हैं, बार-बार छोड़ देते हैं। लेकिन जो पहनता है इस शरीर को, वह शरीर से अलग है। जो जन्म के समय इस शरीर में प्रविष्ट होता है, वह शरीर से अलग है। और जो मृत्यु के समय इस शरीर को छोड़ता है, वह शरीर से अलग है। और जो जीवन भर इस शरीर में रहता है, वह शरीर से अलग है।
जिस दिन ऐसा बोध होने लगे कि मैं जिस घर में रह रहा हूं, वह घर मैं ही हूं, उस आदमी के दुख का क्या हिसाब होगा! जब छप्पर उसका टूटेगा, वह चिल्लाने लगेगा कि मैं टूटा। जब उसके मकान की दीवाल का पलस्तर गिरने लगेगा, तो वह कहेगा, मैं मरा, मेरा पलस्तर गिरा जा रहा है। अगर उसके मकान को आग लग जाए, तो वह चिल्लाएगा कि मैं जल गया। लेकिन जो जानते हैं, वे उससे कहेंगे कि पागल! न तुम जल रहे हो, न तुम टूट रहे हो; तुम केवल इस मकान में रहने वाले हो। जो हो रहा है, मकान पर हो रहा है, तुम पर कुछ भी नहीं हो रहा है। जो भी इस जगत में घटना घट रही है, सब मकान पर घट रही है, मकान के भीतर वाले पर कोई घटना नहीं घट रही है। आज तक यह असंभव हुआ है कि वह भीतर जो बैठा है, उस पर कुछ भी घटा हो। सब जो बाहर घिरा है, उस पर घटा है। और दुख का कारण यह है कि हम समझ रहे हैं कि वह हम पर घट रहा है!
जीवन में कुछ भी नहीं है जो आत्मा पर घटित हो सके। जो भी घट रहा है शरीर पर घट रहा है। इस जगत की कोई शक्ति आत्मा को नहीं छूती है, न छू सकती है। जो भी छूता है, शरीर को छूता है। लेकिन एक भ्रांति कि मैं शरीर हूं, पीड़ा और दुख का कारण बन जाती है।
महावीर के धर्म की मूल शिक्षा एक बात में है कि व्यक्ति यह जाने कि वह शरीर नहीं है। इसे जानने का उनका जो मार्ग है, वही तपश्चर्या है। महावीर कहते हैं, प्रति घड़ी--दुख में, सुख में, पीड़ा में, अपीड़ा में--निरंतर यह जानो कि तुम शरीर नहीं हो। उठते-बैठते, सोते-जागते तुम यह जानो कि शरीर नहीं हो। भोजन करते, उपवास करते, कपड़ा पहनते या नग्न होते जानो कि तुम शरीर नहीं हो।
अगर चौबीस घंटे इसका सतत अनुस्मरण चले कि मैं शरीर नहीं हूं। जब रास्ते पर चलें, तो पता हो कि शरीर चलता है, मैं नहीं चलता। जब भोजन करें तो बोध हो कि भोजन शरीर करता है, मैं नहीं करता। जब कोई चोट आप पर करे तो जानें कि चोट शरीर पर की गई है, मुझ पर नहीं की गई। अगर यह सतत अनुस्मरण चले--यही अनुस्मरण और इस अनुस्मरण के साथ वैसी ही जीवन-चर्या का नाम तप है।
बहुत दुख झेलना होगा। अगर मुझे अभी आप यहां मारें, तो मुझे जानना होगा
कि मुझे नहीं मारा गया। और जब मुझे नहीं मारा गया तो मैं आपको उत्तर क्या दूंगा? उत्तर का कोई प्रश्न नहीं है। दूसरे को आप मारें तो हम उत्तर आपको क्या देंगे? दुख आए तो जानना कि दुख जिस पर आया है, वह मेरा घर है, मैं नहीं। ऐसा दुख में जानना, ऐसा सुख में जानना कि जो आया है, वह मेरे घर पर आया है, मुझ पर नहीं। सुख में अनुद्विग्न होना, दुख में अनुद्विग्न होना और दोनों में समता रखनी महावीर की मूल शिक्षा है। इसे वे सम्यकत्व कहते

हैं। इसे वे समता का भाव कहते हैं। यह समता का भाव तभी फलित होगा, जब मैं यह स्मरण रख सकूं--सारी स्थितियों में यह स्मरण रख सकूं।
ऐसा व्यक्ति जो सुबह से सांझ तक, सांझ से सुबह तक सब करते हुए यह जानता रहता हो, इस बात का बोध उससे छूटता न हो, यह स्मृति उससे विलीन न होती हो कि यह सब जो भी घटित हो रहा है यह मेरी अंतस-चेतना पर घटित नहीं हो रहा है, उसे एक अनुभव होगा। क्रमशः इसमें गति करते-करते एक दिन उसे पता चलेगा, वह बिल्कुल अलग है और शरीर बिल्कुल अलग है। यह बोध इतना स्पष्ट होगा, जितना स्पष्ट कोई बोध नहीं होता। आकाश और जमीन के बीच इतनी दूरी नहीं है, जितनी दूरी मेरी आत्मा और मेरे शरीर के बीच है। आकाश और जमीन मिलाए जा सकते हैं, मेरी आत्मा और मेरा शरीर मिलाया नहीं जा सकता। फासला बना ही रहेगा। इतने निकट उपस्थित है मेरा शरीर मेरी आत्मा के, लेकिन अनंत फासला है जो मिटाया नहीं जा सकता।
अगर आत्मा और शरीर का फासला मिट जाए तो फिर मोक्ष असंभव हो जाएगा। इसलिए पापी से पापी और बुरे से बुरे व्यक्ति की आत्मा और शरीर में उतनी ही दूरी है, जितनी पुण्यात्मा और जितनी श्रेष्ठतम व्यक्ति की आत्मा और शरीर में होती है। शरीर और आत्मा की दूरी उतनी ही है, जितनी आपकी है और जितनी महावीर के केवल-ज्ञान के बाद थी। शरीर और आत्मा की दूरी महावीर की कम नहीं होती, आपकी ज्यादा नहीं हो सकती, फर्क केवल बोध का पड़ता है। महावीर को दिखता है कि दूरी है, आपको दिखता नहीं कि दूरी है। जहां महावीर खड़े हैं, वहीं आप खड़े हैं। महावीर को दिख रहा है कहां खड़े हैं, आपको दिख नहीं रहा कि कहां खड़े हैं। इससे ज्यादा अंतर नहीं है।
अज्ञान से ज्यादा और कोई अंतर नहीं है।
और वह अज्ञान एक ही है। बुनियादी अज्ञान एक ही है, यह भ्रम कि मैं शरीर हूं। हम इस भ्रम को पालते हैं और पोसते हैं। हम इस भ्रम को पालते हैं और पोसते हैं, अनेक-अनेक रूपों में इसका हम पोषण करते हैं, इसे सम्हालते हैं।
इस भ्रम को सम्हालते हैं। दुर्जन भी सम्हालता है, सज्जन भी सम्हालता है। गृहस्थ भी सम्हालता है, साधु भी सम्हालता है। दोनों ही इसको सम्हाले रहते हैं! दोनों इस भ्रम को पोषण देते रहते हैं। और तब यह भ्रम घना होता चला जाता है और यही भ्रम जन्म-जन्मांतरों का कारण बन जाता है।
दो दिशाएं हैं मनुष्य के सामने--एक है भ्रम-विसर्जन की और एक है भ्रम-पोषण की। जो महावीर के मार्ग में उत्सुक हों, उन्हें भ्रम-विसर्जन पर ध्यान देना होगा। उन्हें ध्यान रखना होगा कि वे जो भी करें, जो भी बोलें, जो भी सोचें, उसमें यह ध्यान रखना होगाः उनकी क्रिया, उनका विचार, उनकी वाणी इस भ्रम को बढ़ाने में सहयोगी तो नहीं हो रही है! वे जो बोल रहे हैं, जो सोच रहे हैं, जो कर रहे हैं, उससे कहीं उनका यह अज्ञान घना तो नहीं हो रहा है कि मैं शरीर हूं! अगर यह घना हो रहा है, तो उनके कर्म और उनके विचार पाप हैं। अगर यह क्षीण हो रहा है, तो उनके कर्म और उनके विचार पुण्य हैं। पुण्य और पाप की इसके सिवाय और कोई मैं परिभाषा नहीं देखता हूं। जो आपके भीतर इस भ्रम को ता.ेड दे कि मैं शरीर हूं, वैसी क्रिया, वैसा विचार पुण्य है, सदकर्म है। और वैसी क्रिया, वैसा विचार, जो इस भ्रम को घना कर दे कि मैं शरीर हूं, पाप है।
कैसे स्मरण रखेंगे? कैसे यह तप चलेगा? कैसे हम भूलेंगे यह बात कि हम शरीर हैं और जानेंगे यह सत्य कि हम आत्मा हैं? मैंने कहा, सतत अनुस्मरण से। इसे महावीर ने विवेक कहा है। महावीर ने कहा है, साधु को विवेक से चलना चाहिए। तो कोई होंगे जो समझते होंगे कि विवेक का इतना ही अर्थ है कि उसको देख कर चलना चाहिए कि पैर के नीचे कीड़े-मकोड़े तो नहीं आ गए! महावीर ने कहा है, साधु को विवेक से लेटना चाहिए। तो कुछ होंगे जो सोचेंगे कि करवट बदलते वक्त ध्यान रखना चाहिए कि नीचे कोई कीड़ा-मकोड़ा तो नहीं आ गया! महावीर ने कहा है, साधु को विवेक से भोजन करना चाहिए। तो कुछ होंगे जो सोचेंगे कि पानी छना हुआ है या गैर-छना हुआ है! ये विवेक के अत्यंत क्षुद्र अर्थ हैं। विवेक का गहरा और महत्वपूर्ण अर्थ दूसरा है, वास्तविक सारभूत अर्थ दूसरा है।
विवेक का अर्थ है, चलते वक्त साधु को जानना चाहिए, मैं नहीं चल रहा हूं। क्षण भर को भी स्खलन न हो इस वृत्ति में, क्षण भर को भी यह भ्रम न आ जाए

कि मैं चल रहा हूं। स्मरण होना चाहिए, देह चलती है, मैं देखता हूं। वासना चलती है, मैं देखता हूं। मैं साक्षी हूं। मन चलता है, मैं द्रष्टा हूं। शरीर चलता है, मन चलता है, मैं नहीं चलता, मैं थिर हूं। सारे चलन के बीच, सारे परिवर्तन के बीच, सारी गति के बीच, वह जो थिर बिंदु है हमारे भीतर, वह जिसे गीता में कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा, वह जो प्रज्ञा है हमारे भीतर ठहरी हुई, उसका बोध रहना चाहिए कि मैं रुका हूं। चलते समय जिसे पता होगा कि मैं रुका हूं, भोजन करते वक्त जिसे पता होगा कि मैंने कभी भोजन नहीं लिया, वस्त्र पहनते वक्त जिसे पता है कि मुझे कोई वस्त्र ढांक नहीं सकते, जब दुख उस पर आएगा, उसे पता होगा, ये दुख मुझ पर नहीं आए। जब सुख उस पर आएगा, उसे पता होगा, ये सुख मुझ पर नहीं आए। जब मृत्यु उसके द्वार-दरवाजा खटखटाएगी, तब वह जानेगा, यह मृत्यु मेरी नहीं है, यह बुलावा मेरा नहीं है।
ऐसे विवेक को जीवन की प्रत्येक क्रिया में पिरो देना, जीवन की प्रत्येक क्रिया में, छोटी और बड़ी क्रिया में विवेक को गूंथ देना, इसे महावीर ने साधक का आधारभूत कर्तव्य कहा है। जो इसे करता हो, वह पहली सीढ़ी पर कदम रखता है।
और स्मरण रखें, एक बार में एक ही सीढ़ी चढ़नी होती है, बहुत सीढ़ियां कोई नहीं चढ़ता। एक सीढ़ी आप चढ़ जाएं, दूसरी सीढ़ी आपके सामने आ जाती है। अगर विवेक की सीढ़ी कोई चढ़ जाए, तो अपने आप दूसरी सीढ़ियां उसके सामने उदघाटित होती चली जाती हैं। मनुष्य को सीखने जैसा विवेक है, और कुछ भी सीखने जैसा नहीं है।
लेकिन हम विवेक नहीं सीखते, हम विचार सीख लेते हैं! विवेक और विचार में भेद है। हम विवेक तो नहीं सीखते महावीर से, महावीर के विचार सीख लेते हैं! महावीर के विचार पर खड़े हुए शास्त्र हैं, उनको सीख लेते हैं! महावीर के विचार पर चलते हुए प्रवचन और पांडित्य की बातें हैं, उनको सीख लेते हैं! मैं आपको कहूं, महावीर के विचार को न सीखें, महावीर के विवेक को सीखें। अगर महावीर को पाना है तो महावीर के विवेक को सीखें। और अगर महावीर की बातें सीख लीं, तो महावीर को तो नहीं पा सकेंगे। उन बातों से महावीर को नहीं पा सकेंगे। महावीर के विचार का संग्रह न करें, महावीर के विवेक का जागरण करें अपने भीतर।
और दुनिया के समस्त सदपुरुषों के दो ही जीवन के हिस्से हैं--उनका विचार और उनका विवेक। जो लोग उनके विचार को पकड़ते हैं, वे पंडित होकर समाप्त हो जाते हैं। जो उनके विवेक को पकड़ते हैं, वे प्रज्ञा और मोक्ष को उपलब्ध होते हैं।
तो आज की सुबह, महावीर के विवेक को, महावीर के विचार को नहीं। महावीर
जो भी कहते हैं, वह महत्वपूर्ण नहीं है। महावीर जिस स्थान से कहते हैं, उस स्थान पर कैसे पहुंचें, यह महत्वपूर्ण है।
एक साधु हुआ। उससे किसी व्यक्ति ने जाकर पूछा। कोई उसकी उलझन थी। उसने कहा, यह उलझन मेरी हल कर दें। साधु ने कहा, यह मैं तुम्हारी उलझन हल कर दूंगा, तो क्या तुम सोचते हो कि कल तुम्हारी दूसरी उलझन खड़ी नहीं हो जाएगी? वह बोला कि कैसे सोच सकता हूं कि नहीं खड़ी हो जाएगी! जीवन तो उलझन है। साधु ने कहा, कल तुम फिर आओगे, फिर मैंने तुम्हारी उलझन ठीक कर दी। फिर तीसरे दिन क्या हो? फिर आज मैं हूं, कल मैं समाप्त हो जाऊंगा, तो तुम्हारी उलझन कौन समाप्त करेगा? तो उस साधु ने कहा, अच्छा हो कि तुम उलझन का समाधान मुझसे मत मांगो। तुम मुझसे वह अंतर्दृष्टि मांगो, जिससे सारी उलझनें सुलझाने की स्वयं क्षमता मिल जाती है। उस साधु ने कहा, अच्छा हो तुम मुझसे समाधान मत मांगो, तुम मुझसे वह रास्ता पूछो, जिससे कि स्वयं समाधान मिल जाता है और वह अंतर्दृष्टि मिल जाती है, जिससे सारी उलझनें सुलझ जाती हैं। एक अंधा आदमी आकर मुझसे पूछे कि दरवाजा कहां है इस हाल के बाहर निकलने का? मैं उसे बता दूंगा। फिर कल यहां आएगा, फिर पूछेगा कि दरवाजा कहां है? दूसरे मकान में जाएगा, फिर पूछेगा कि दरवाजा कहां है? जिस मकान में भी जाएगा, वहीं पूछेगा कि दरवाजा कहां है?
अगर मेरी अनुकंपा उस पर पूरी हो तो मुझे उसे दरवाजा नहीं बताना चाहिए, मुझे उसे आंख ठीक करने का उपाय बताना चाहिए। दरवाजा बताने से क्या फायदा होगा? दरवाजा बताना विचार देना है और आंख ठीक करना विवेक देना है। दरवाजा

बताना एक विचार दे दिया, उससे एक हल हो जाएगा। लेकिन उससे सब हल नहीं हो जाएगा। असली हल तो तब होता है, जब भीतर अंतर्दृष्टि जागती है और भीतर एक बोध, एक विवेक जाग्रत होता है।
तो महावीर ने विचार नहीं सिखाया, महावीर ने विवेक सिखाया। और जो आपसे कहता हो कि महावीर ने विचार सिखाया, वह शत-प्रतिशत असत्य बात कहता होगा। महावीर ने अहिंसा का विचार नहीं सिखाया, अपरिग्रह का विचार नहीं सिखाया, वह अंतर्दृष्टि सिखाई, जिसके आने पर अहिंसा आ जाती है, अपरिग्रह आ जाता है।
जिस व्यक्ति को यह दिखने लगे कि मैं शरीर नहीं हूं, वह परिग्रही कैसे होगा? जिस व्यक्ति को यह दिखने लगे कि मैं शरीर नहीं हूं, वह परिग्रही कैसे होगा?
लेकिन मैं आपको कहूं कि वह तथाकथित अपरिग्रही भी नहीं होगा, जो आपको दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि जिसको यह दिखाई पड़ने लगे कि मैं शरीर नहीं हूं, वह चीजें इकट्ठी करने का मोह भी उसमें नहीं रह जाएगा, चीजें छोड़ कर भाग जाने का प्रश्न भी उसे नहीं उठता। वह अस्पर्श को उपलब्ध हो जाएगा। चीजों के बीच हो तो उसे चीजें छुएंगी नहीं। चीजें उसके पास न हों तो चीजों का स्मरण उसे नहीं होगा। वह अस्पर्श को उपलब्ध हो जाएगा।
एक साधु हुआ। एक बादशाह ने उसे बहुत प्रेम किया और अपने घर मेहमान बना लिया। वह साधु उसके घर मेहमान हो गया। मेहमान होने के पहले एक दरख्त के नीचे पड़ा था, नंगा फकीर था। मेहमान होने के बाद महल की सारी राज्य-सुविधा उसे उपलब्ध हुई। उस रात वह बहुमूल्य पलंग पर सोया।
राजा को अपने बिस्तर पर सोते वक्त संदेह मन में हुआ कि यह तो अजीब बात
है, यह आदमी साधु नहीं मालूम होता। भीख मांगता था दरवाजे पर, दरख्त के नीचे नंगा पड़ा रहता था; हम इसे आदर दिए, हमने कहा, महल चलो, इसने एक दफे इनकार भी नहीं किया कि नहीं चलते! अगर साधु होता तो इनकार करता, ऐसा उस राजा ने सोचा। साधु होता वह कहता, हमको क्या मतलब राजमहलों से! लेकिन जो कहे कि हमको क्या मतलब राजमहलों से, उसका अभी बहुत मतलब बाकी है। राजा ने कहा, यह बोला नहीं कुछ भी! हमने कहा चलो, यह चला आया! जरूर यह साधु-वाधु नहीं है, यह धोखा है। इसका कोई अपरिग्रह नहीं है। बिस्तर पर सुलाया, सो गया! अच्छा खाना खिलाया, खा लिया!
सुबह होते ही राजा ने कहा, मुझे एक संदेह होता है। वह साधु हंसने लगा। उसने कहा कि तुम्हें अब होता है, हमें तभी हो गया था, जब तुमने कहा था, ऊपर चलो। राजा बोला, मतलब? वह बोला कि हम उसी वक्त देख लिए थे, तुम्हारी श्रद्धा विलीन हो गई, सब खतम हो गया। हम तुमसे कहते कि हम फकीर हैं, हम कहां राजमहल में जाएंगे, हमने लात मार दी, तो तुम खुश होते और हमारे पैर पकड़ते और हमारे चरणों में सिर रखते। क्यों? क्योंकि तुम्हारी जो वासना है, उसे जो छोड़ता हुआ मालूम पड़े, वह तुम्हें आदर योग्य मालूम होता है।
स्मरण रखना, जब भी आप किसी का आदर करते हो, वह उसका आदर कम है, आपकी वासना का सबूत ज्यादा है। अगर मैं सारा धन छोड़ कर चला जाऊं और आप मेरे पैर पड़ो, तो मैं समझूंगा धन-लोलुप हो। क्योंकि मेरे पैर क्यों पड़ोगे? धन-लोलुपता आपकी मेरे पैर पड़ने को कहेगी, इसने सारा धन छोड़ दिया और आप धन-लोलुप हो! हद्द त्याग किया है, इसके पैर पड़ो। अगर मैं वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाऊं, तो आप मुझे नमस्कार करोगे, क्योंकि आपकी वस्त्र छोड़ने की हिम्मत नहीं है।
तो जब आप किसी को आदर देते हो, वह आदर कम है, वह आपका अपमान ज्यादा है
और आपके भीतर की असलियत का सबूत ज्यादा है। जो कामी है, वह ब्रह्मचर्य वाले को बहुत आदर देगा। जो भोगी है, वह त्यागी को आदर देगा। जो परिग्रही है, वह अपरिग्रही को आदर देगा। और इसलिए जो धोखेबाज हैं, वे अपरिग्रह साध लेंगे और आदर ले लेंगे। जो धोखेबाज हैं, वे ब्रह्मचर्य साध लेंगे, और आदर ले लेंगे, और अहंकार की तृप्ति कर लेंगे।
उस साधु ने कहा, मैं उसी वक्त समझ गया था मामला खतम हो गया। लेकिन हमने सोचा तुम्हीं कहो, तब बात करेंगे। उस राजा ने कहा, मुझे तो रात नींद नहीं आई। मैं तो बहुत सोचता रहा, यह कैसा साधु है! और रात मुझे यह ख्याल आता रहा कि अब मुझमें और आपमें क्या फर्क है! आप भी सोए हैं वहीं, मैं भी वहीं। वही

सुविधा मुझे है, वही सुविधा आपको है। वह फकीर बोला, मेरे साथ गांव के बाहर चलो, उत्तर रास्ते में देंगे।
वे गांव के बाहर गए। और जहां नदी पड़ती थी, गांव समाप्त होता था, राजा
ने कहा, अब बताएं। वह फकीर बोला, थोड़ा और आगे। वह जब भी पूछता, बताएं। वह कहता, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गई, राजा ने कहा, क्या पागलपन है! उत्तर देना हो दें--और आगे से क्या मतलब है? वह फकीर बोला, और आगे ही मेरा उत्तर है। अब हम लौटेंगे नहीं। तुम भी मेरे साथ चलते हो? वह राजा बोला, मैं कैसे जा सकता हूं! मेरा पीछे महल, मेरी रानी, मेरे बच्चे, मेरा राज्य! वह फकीर बोला, अगर फर्क दिखे तो देख लेना। फर्क है--हम जाते हैं, तुम नहीं जा सकते। हम जाते हैं, हमारा पीछे कुछ भी नहीं है। हम उस बिस्तर पर सोए थे, सो लिए! बिस्तर हमारा पीछे नहीं रह गया है कि जिस पर हमें फिर सोना है। कल जब दरख्त के नीचे सोएंगे तो फिर सो लेंगे। और दरख्त से कुछ मोह नहीं बंध जाएगा।
यह है अस्पर्श योग। चीजें छुएं न, बस यही जीवन-साधना है।
चीजें छू लें, तो परिग्रह हो जाता है। चीजें न छुएं तो अपरिग्रह हो जाता है। असली अपरिग्रह, चीजें न छुएं, यह बोध साध लेना है। चीजें छोड़ कर भाग जाना, न भाग जाना गौण बात है। उसका कोई मूल्य नहीं है।
उनके विवेक को जो अपने भीतर स्थापित करेगा, वह धीरे-धीरे इस जीवन-स्थिति को उपलब्ध हो जाता है। तब वह जल में--जल में कमल के पत्तों की भांति जीता है।
ईश्वर करे, वैसी स्थिति आपको उपलब्ध हो। और अगर आकांक्षा हो वैसी स्थिति की, तो महावीर ने जिसे विवेक कहा, उसे साधें। आकांक्षा हो, तो सतत इस बात का अनुस्मरण साधें कि मैं देह नहीं हूं। तो धीरे-धीरे, जैसे एक-एक बूंद गिर कर सागर भर जाता है, जैसे एक-एक बूंद गिर कर सागर भर जाता है और एक-एक किरण गिर कर सारे जगत को आलोक से भर देती है, वैसे ही एक-एक क्षण अनुस्मृति का साधते-साधते एक दिन विवेक के सूर्य का जन्म होता है और मनुष्य परम सत्य को, परम शांति को, आनंद को उपलब्ध होता है।
प्रभु करे, वैसी आकांक्षा आपमें उत्पन्न हो, वैसा संकल्प उत्पन्न हो, वैसा श्रम करने का साहस उत्पन्न हो। और जो जीवन, जिसको पाने के लिए है, वह पाना आपको संभव हो जाए।
इस कामना के साथ अपनी बात को पूरा करता हूं। मेरी बातों को इतने प्रेम
से सुना है, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। आप सबके भीतर जो संभावी महावीर है, उसके लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

महावीर या महाविनाश
तीसरा प्रवचन

आत्म-दर्शन की साधना

मेरे प्रिय आत्मन्,
भगवान महावीर के इस स्मृति दिवस पर थोड़ी सी बातें उनके जीवन के संबंध में कहूं, उससे मुझे आनंद होगा।
भगवान महावीर, जैसा हम उन्हें समझते हैं और जानते हैं, जो चित्र हमारी आंखों में और हमारे हृदय में उनका बन गया है, जिस भांति हम उनकी पूजा करते और आराधना करते हैं, जिस भांति हमने उन्हें भगवान के पद पर प्रतिष्ठित कर लिया है, उस चित्र में मुझे थोड़ी भूल दिखाई पड़ती है और महावीर के प्रति थोड़ा अन्याय दिखाई पड़ता है।
महावीर का पूरा उदघोष, उनके जीवन का संदेश एक बात में निहित है कि इस जगत में कोई भगवान नहीं है। उनका उदघोष इस बात में निहित है कि किसी की पूजा और किसी की प्रार्थना आनंद का और मुक्ति का मार्ग नहीं है। कोई आराधना, कोई प्रार्थना, कोई पूजा सत्य तक और आत्मा तक नहीं ले जाती है। महावीर को समझना है तो प्रार्थना को, आराधना को नहीं, ध्यान को और समाधि को समझना होगा। प्रार्थना और आराधना भगवान से की जाती है, किसी ईश्वर से। ध्यान किसी ईश्वर से नहीं किया जाता। प्रार्थना, आराधना किसी भगवान के लिए हैं। ध्यान, जो भीतर सोया हुआ है, उसे जगाने के लिए है। महावीर किसी भगवान के आराधक नहीं हैं; किसी भगवान के, जो आकाश में हो, उसके पूजक नहीं हैं; किसी भगवान के लिए उनकी प्रार्थना-उपासना नहीं है। उनका मानना है कि कुछ हमारे भीतर प्रसुप्त है, सोया हुआ है, उसको जगाना है। ईश्वर कहीं और दूसरी जगह विराजमान नहीं, प्रत्येक चैतन्य के भीतर सोई हुई शक्ति का नाम है। उसे उठाना, उसे आविर्भाव करना, उसे उत्तिष्ठित और जाग्रत करना है। इसलिए किसी की प्रार्थना नहीं करनी, क्योंकि प्रार्थना कौन करेगा? भगवान अगर भीतर मौजूद है, तो प्रार्थना कौन करेगा और किसकी करेगा? जो प्रार्थना कर रहा है, वही अगर भगवान है, तो प्रार्थना किसकी होगी? प्रार्थना नहीं हो सकती। लेकिन जो भीतर है, उसे जगाने और उठाने और उसे उत्तिष्ठित करने के प्रयास हो सकते हैं।
महावीर का मार्ग भक्ति का मार्ग न होकर, ज्ञान का मार्ग है। उनका मार्ग भगवान के लिए प्रार्थना का न होकर, वह जो परमात्म-शक्ति प्रत्येक के भीतर प्रसुप्त है, उसे जगाने, उसे जाग्रत करने का मार्ग है।
इस सत्य को प्राथमिक रूप से मैं इसलिए कह रहा हूं कि उसे समझे बिना महावीर की परिपूर्ण, उनके व्यक्तित्व का पूरा रूप, उनका पूरा जीवन स्पष्ट नहीं होता है।
हमने उन्हें भी ईश्वर में परिणत कर दिया है। हमने उनके भी मंदिर बनाए, उनकी भी मूर्तियां बनाईं और हमने उनकी पूजा और प्रार्थना प्रारंभ कर दी है! और हम इस भ्रांति में हैं, और अनेक लोग इस भ्रांति के समर्थक हैं, कि उनकी पूजा और प्रार्थना से, उनकी आराधना से कल्याण होगा! अनेक-अनेक लोग इस समर्थन में प्रतीत होंगे कि उनकी पूजा और प्रार्थना से कल्याण होगा! जब कि महावीर की उदघोषणा यह है कि किसी की पूजा और किसी की प्रार्थना कल्याण नहीं ला सकती है। कल्याण तो आत्म-जागरण से होगा, किसी के नाम-स्मरण से नहीं। महावीर-महावीर या अरिहंत-अरिहंत कहने से नहीं, बल्कि उस स्थिति में उतरने से, जहां सब कहना बंद हो जाता है। किसी नाम के उदघोष से नहीं, बल्कि उस चैतन्य में प्रवेश करने से, जहां सब नाम छूट जाते हैं। किसी विचार का बार-बार आवर्तन करने से नहीं, बल्कि उस निर्विचार दशा में, जहां समस्त विचार विसर्जित हो जाते हैं, वहां उसका दर्शन होगा, उसकी अनुभूति होगी, उसका जागरण होगा, जो प्रभु है।
तो महावीर को भगवान मान कर जो हम चल पड़ते हैं, उसमें महावीर की प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं, उसमें हमारा अज्ञान और नासमझी है। उसमें उनका सम्मान नहीं, हमारा अज्ञान और हमारी कमजोरी और हमारी असहाय, अपनी हीनता की धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति इतना हीन अनुभव करता है कि बिना किसी के

कल्याण किए मेरा कल्याण कैसे होगा! सारे जगत में, सारे लोगों में ईश्वर की जो सहायक की तरह धारणा विकसित हुई, उसके पीछे मनुष्य के मन में छिपी हुई हीनता और दुर्बलता है। हमें लगता है, हम इतने कमजोर! हम इतने हीन! हम अपने से कैसे आनंद को, मोक्ष को, ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं! कोई सहारा चाहिए, कोई पथ-द्रष्टा चाहिए, कोई हाथ चाहिए जो हमें आगे बढ़ाए।
महावीर की क्रांति इसी बात में है कि वे कहते हैं कोई हाथ ऐसा नहीं है
जो तुम्हें आगे बढ़ाए। और किसी काल्पनिक हाथ की प्रतीक्षा में जीवन को व्यय मत कर देना। कोई सहारा नहीं है सिवाय उसके, जो तुम्हारे भीतर है और तुम हो। कोई और सुरक्षा नहीं है, कोई और हाथ नहीं है जो तुम्हें उठा लेगा, सिवाय उस शक्ति के जो तुम्हारे भीतर है, अगर तुम उसे उठा लो। महावीर ने समस्त सहारे तोड़ दिए। महावीर ने समस्त सहारों की धारणा तोड़ दी। और व्यक्ति को पहली दफा उसकी परम गरिमा में और महिमा में स्थापित किया है। और यह मान लिया है कि व्यक्ति अपने ही भीतर इतना समर्थ है, इतना शक्तिवान है कि यदि अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को इकट्ठा करे और अपने समस्त सोए हुए चैतन्य को जगाए, तो अपनी परिपूर्ण चेतन और जागरण की अवस्था में वह स्वयं परमात्मा हो जाता है।
व्यक्ति के भीतर हीनता, असहाय अवस्था के बोध का विसर्जन महावीर को समझने का पहला चरण है। वे कोई सहारा, कोई काल्पनिक सहारा नहीं देना चाहते हैं।
मुझे स्मरण आता है, उनका निकटतम शिष्य था गौतम। गौतम के पीछे जो लोग आए, वे मुक्ति को, समाधि को उपलब्ध हो गए, लेकिन गौतम नहीं हुआ। महावीर ने बार-बार गौतम को कहा कि तुझे बहुत देर हुई, बहुत ज्ञान को सुनते-विचारते समय बीता, अब तक तुझे स्वयं प्रज्ञा उत्पन्न क्यों नहीं हो रही। तू थोड़ा समझ!
गौतम कहता है, मैं सब समझने की चेष्टा कर रहा हूं। न मालूम कौन सी बाधा
है जो मुझे रोकती है।
और फिर महावीर का महापरिनिर्वाण भी हो गया। गौतम अमुक्त था, अमुक्त
ही रहा। जिस दिन महावीर ने देह त्यागी, गौतम पास के गांव में गया था। वह जब लौटता था, राहगीरों ने खबर दी कि महावीर देह को त्याग दिए हैं।
गौतम वहीं रोने लगा। और उसने कहा, मेरा क्या होगा? उन भगवान के रहते भी मैं समाधि को और सत्य को उपलब्ध नहीं हुआ। उन भगवान की छाया में रह कर भी मैंने उस अंतः-शक्ति के जागरण को अभी अनुभव नहीं किया। उन भगवान की मौजूदगी में भी मैं अभी आत्म-साक्षात नहीं कर सका हूं। मेरा क्या होगा! मैं तो डूब गया! मुझे भी क्या उन भगवान ने अंतिम समय में स्मरण किया था? मेरे लिए भी कोई स्वर्ण-सूत्र छोड़ा है?
राहगीरों ने कहा, महावीर ने कहा है गौतम को कह देना--और वह बात मैं आज समस्त उन लोगों से कह देना चाहता हूं जो महावीर को प्रेम करते, आदर करते, भगवान की तरह पूजते हैं--महावीर ने कहा है कि गौतम को कह देना, तू पूरी नदी पार कर गया अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुका है? तू सब कुछ पा चुका अब महावीर को पकड़ कर क्यों रुका हुआ है? इनको भी छोड़ दे!
यह अदभुत क्रांति की बात है। यह अदभुत क्रांति की बात है कि महावीर कहते हैं, मुझे भी पकड़ो मत, मैं भी तुमसे बाहर हूं, मैं भी तुमसे अन्य हूं, मैं भी तुम्हारी आत्मा नहीं हूं। संसार भी बाहर है, तीर्थंकर भी बाहर हैं। पकड़ो मत बाहर कुछ। बाहर सारी पकड़ छोड़ दो। जब बाहर की कोई भी पकड़ न होगी तो भीतर उसका जागरण होगा, उसका दर्शन होगा, जो बाहर चीजों के पकड़ लेने के कारण दिखाई नहीं पड़ता है। जो बाहर की चीजों से छिप जाता, आवृत हो जाता है, उसकी अनुभूति होगी।
यह अदभुत क्रांति की बात है कि कोई शास्ता, कोई गुरु यह कहे, मुझे भी छोड़ दो!
आमतौर से गुरु कहेगा, मुझे पकड़ो! मेरा अनुसरण करो! मैं हूं मार्ग! मेरी शरण में आओ, मैं हूं सब कुछ! मैं तुम्हें पार कर दूंगा! मैं तुम्हें द्वार दिखा दूंगा सत्य का! मैं तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा दूंगा! आमतौर से गुरु कहेगा, मैं सब कुछ हूं, मुझे स्वीकार करो। तुम नहीं स्वीकार करते हो, वही कमजोरी है। पूरी तरह स्वीकार करो।

महावीर बड़े उलटे व्यक्ति मालूम होते हैं। वे कहते हैं, मुझे भी छोड़ दो! दुनिया में वैसा गुरु खोजना कठिन है, जो कहे मुझे भी छोड़ दो। मेरा अनुकरण मत करो, क्योंकि मैं भी बाहर हूं। अपनी ही आत्मा का अनुसरण करो। जो फर्क मैं समझाना चाह रहा हूं... अगर मैं आपसे कहूं, मेरा अनुगमन करो,
तो मेरे पीछे आप चलेंगे। यह चलना बाहर चलना है। क्योंकि किसी अन्य का अनुगमन कर रहे हैं। महावीर कहते हैं, बाहर किसी का अनुगमन नहीं करना है। बाहर के सब रास्ते संसार में ले जाते हैं। किसी का अनुगमन नहीं करना, अपनी ही आत्मा का अनुसरण करना है। किसी की शरण में नहीं जाना, आत्म-शरण बनना है। महावीर की साधना अ-शरण की साधना है। किसी की शरण नहीं जाना, अपनी ही शरण में आना है। इस मौलिक क्रांतिकारी बिंदु को समझ लेना जरूरी है। इसको समझ कर, फिर महावीर की साधना की क्रांति समझ में आ सकती है।
तो मैं पहली बात आपसे कहूं, महावीर को भगवान के रूप में स्थापित करके
हम महावीर के साथ अन्याय कर रहे हैं। महावीर नहीं चाहते कि उन्हें भगवान की तरह स्थापित करो। महावीर चाहते हैं कि तुम अनुभव करो कि तुम भगवान हो। महावीर चाहते हैं, उन्हें परमात्मा की तरह नहीं, तुम अनुभव करो कि तुम्हारे भीतर परमात्मा मौजूद है। मनुष्य की अंतरात्मा ही परिशुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है, यह उनका संदेश है।
और इस बात को... यदि ठीक से दिखाई पड़े कि हमारे भीतर कौन है जिसे हम परमात्मा कह सकें? जिस देह को हम जानते हैं, उस देह में तो कोई परमात्मा जैसा नहीं है। जिस मन को हम जानते हैं, उसमें तो कोई परमात्मा जैसा नहीं है। देह तो बिल्कुल पशु है। देह में क्या है जो परमात्मा हो? देह में तो सब कुछ है जो पशु है। एक मनुष्य की देह में और पशु की देह में कोई भेद नहीं है। देह के नियम वही हैं, जो पशु की देह के नियम हैं। देह की दृष्टि से आप पशु से या कोई भी पशु से भिन्न नहीं है। अगर हम अकेले देह ही मात्र हैं, अगर शरीर मात्र हैं, तो पशु ही हैं। तो देह में तो कोई परमात्मा नहीं हो सकता। मन में शायद परमात्मा हो!
मन को थोड़ा झांकें तो वहां भी पाएंगे, वहां तो पशु से भी बदतर कोई मौजूद है। अगर मन को देखेंगे तो पाएंगे, वहां तो पशु से भी बदतर कोई मौजूद है। इस जगत में कोई पशु इतना बदतर नहीं है, जितना मनुष्य का मन है। कितना पाप, कितनी घृणा, कितना द्वेष, कितनी हिंसा उसके मन में परिव्याप्त है! एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने कहा, अगर प्रत्येक व्यक्ति के मन का सारा लेखा- जोखा इकट्ठा किया जा सके, तो ऐसा आदमी पाना कठिन होगा, जो अपनी जिंदगी में अनेक लोगों की हत्या के विचार नहीं करता है। ऐसा आदमी पाना कठिन होगा, जो बड़े-बड़े डाके अपने मन में नहीं डालता है। ऐसा व्यक्ति पाना कठिन होगा, जो अनेक-अनेक रूपों में व्यभिचार की कल्पना और योजना नहीं करता है। वहां मन में एक-दो पापी नहीं, अनेक पापी जैसे इकट्ठा हैं। मन भी परमात्मा नहीं हो सकता।
यह महावीर कहते हैं कि तुम्हारे भीतर परमात्मा है। वह कहां होगा? यह देह तो पशु है। इसके भीतर जो मन है, वह और भी पशु से बदतर है। इस देह और मन, दोनों में परमात्मा नहीं हो सकता।
लेकिन हमारा जानना, हमारा पहचानना, हमारा बोध हमारे शरीर और मन के बाहर नहीं है। हम अपने शरीर को जानते हैं और अपने मन को जानते हैं। इनके पीछे तुम्हें किसी का कोई अंतर्दर्शन नहीं होता है। उस अंतर्दर्शन को उपलब्ध हुए बिना, जो शरीर और मन के पीछे है, कोई व्यक्ति इस सत्य को नहीं समझ सकेगा कि हमारे भीतर परमात्मा है। मैं किसी से कहूं, तुम्हारे भीतर परमात्मा है, तो बड़ी हैरानी भर होती है। ऐसा हमारा जानना नहीं है।
जोड ने, पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक ने लिखा है, मैं सुनता हूं कि पूरब के लोग कहते हैं, प्रत्येक के भीतर परमात्मा है! मैं अपने भीतर झांकता हूं तो सिवाय पशु के किसी को भी नहीं पाता हूं।
फ्रायड ने भी वही अनुभव लिए हैं, वही निष्कर्ष लिए हैं कि मनुष्य के भीतर पशु के सिवाय और कोई भी नहीं है। अभी जितना काम हो रहा है मन के ऊपर, उसका अनुभव यह है कि आप बहुत धोखे में हैं, मन में कोई परमात्मा जैसी चीज नहीं है। वहां परमात्मा की झलक भी नहीं है। अगर आप आधा घंटा अपने चित्त में चलते हुए चेतन-अचेतन विचारों की पर्तों को निरखें, उनका निरीक्षण

करें, उनका आब्जर्वेशन करें, तो बहुत घबड़ा जाएंगे, बहुत तिलमिला जाएंगे, बहुत डर मालूम पड़ेगा, बहुत नरक मालूम पड़ेगा कि यह मेरे भीतर क्या है! यही मैं हूं! यही मेरा होना है! यही मेरी सत्ता है! बहुत घबड़ाहट मालूम होगी और उसी घबड़ाहट के कारण हममें से कोई भीतर जाना नहीं चाहता है।
लाख कोई कहे, अपने को जानो! अपने को हम जानना नहीं चाहते, हम अपने को जानने से बचना चाहते हैं। हम चौबीस घंटे ऐसे उपाय कर रहे हैं कि अपने से कहीं मिलना न हो जाए, कहीं एनकाउंटर न हो जाए, मुलाकात न हो जाए। हम उसको भुलाने के हर उपाय कर रहे हैं। हमारे मनोरंजन, हमारी हंसी-खुशी, हमारे आमोद-प्रमोद उसको भुलाने के हैं। हमारे नशे उसको भुलाने के हैं। संगीत में, सेक्स में, शराब में हम उसको भुलाने की कोशिश कर रहे हैं, कि कहीं उस भीतर में देखना न पड़े कि वहां कौन है। जब तक जागते हैं, भुलाए रखते हैं। फिर सो जाते हैं, फिर उठते हैं, फिर लग जाते हैं! खाली अगर आपको छोड़ दें, आप बहुत तिलमिलाएंगे, बहुत घबड़ाएंगे। यह बड़ी अजीब सी बात है। अगर एक महीने आपको कोई पलायन का, एस्केप का अपने से मौका न दिया जाए, आप पागल हो जाएंगे। एक ऐसी घटना हुई। इजिप्त में एक बादशाह हुआ। एक फकीर ने उस बादशाह से कहा कि तुम सोचते हो कि तुम बहुत समझदार हो! तुम बड़े अज्ञानी हो। तुम सोचते हो कि आत्म-ज्ञान की बातें करते हो! तुम अपने भीतर जाने से डरते हो। उस फकीर ने कहा, अगर एक महीना हम तुम्हें बंद कर दें--जो मैंने आपसे कहा--आप एक महीने में पागल हो जाओगे। अगर आपको मौका न दें अपने से बाहर भागने का, किन्हीं कामों में अपने को आक्यूपाइड कर लेने का, व्यस्त कर लेने का, उलझा लेने का, और आपको बार-बार अपने ही अपने को देखना पड़े, आप विक्षिप्त हो जाओगे।
बादशाह बोला, अजीब सी बात है। मैं प्रयोग करके देखूंगा।
एक भला-चंगा आदमी, जो उसके द्वार से रोज निकलता था खुश सांझ को काम करके। भरा-पूरा परिवार था, पत्नी थी, बच्चे थे, खुश नजर आता था। सुबह दफ्तर जाना, सांझ लौट आना। तो उसने एक सांझ को उस खुश लौटते आदमी को मार्ग से पकड़वा कर बुलवा लिया। उससे कहा कि तुम्हें महीने भर हम बंद करते हैं। कोई कसूर नहीं है, एक प्रयोग के लिए बंद करते हैं। उसके घर खबर पहुंचा दी कि हमने आपके पति को--उसकी पत्नी को कहलाया--बंद कर दिया है; घबड़ाना मत, सब खर्च मिलेगा राज्य से और महीने भर बाद उसे छोड़ देंगे। उस आदमी को महीने भर बंद रखा।
वह एक-दो दिन चिल्लाता रहा कि मुझे क्यों बंद कर रहे हैं? मतलब क्या
है आपका? मैंने कौन सा कसूर किया? कोई उत्तर उसे दिए नहीं गए। उसे खाना दिया गया, उसने खाना फेंक दिया। उसे पानी दिया गया, उसने पानी नहीं लिया। वह चिल्लाता रहा, दो दिन, ढाई दिन, फिर थक गया, फिर पानी पी लिया। फिर और थक गया, फिर खाना खा लिया। फिर और थक गया, फिर चिल्लाना भी बंद कर दिया। फिर वह बैठा रहता था उस कमरे में और उसका निरीक्षण वह बादशाह करता था खिड़की से। दिन पर दिन बीतते चले गए। वह फिर अकेले बैठे-बैठे अपने से बातें करने लगा, जोर से बातें करने लगा! तो वह बातें करने लगा, अपनी पत्नी से भी बातें करने लगा, अपने बच्चों से खेलने लगा वहां! उस कमरे में न पत्नी है, न बच्चे हैं। महीना पूरा हुआ, उसकी जांच की गई, वह आदमी पागल हो चुका था।
उसे अच्छा खाना दिया जाता था, कपड़े दिए जाते थे, पहनने को दिया जाता था, पानी दिया जाता था, सब सुविधा थी, असुविधा कोई भी न थी, लेकिन अपने से भागने का कोई उपाय नहीं दिया गया। नंगी दीवारें थीं, न कोई किताब थी, न कोई अखबार था; न कोई रेडियो, न कोई सिनेमा, न कोई मित्र; न कोई और रास्ते जहां वह अपने को भुलाए रखे। चौबीस घंटे उसे अपने को देखना था। वहां सिवाय पशु के और कोई भी नहीं था। वहां सिवाय गलत, व्यर्थ के विचारों के और कोई भी नहीं था। वह विक्षिप्त हो गया।
अगर आप अपने मन को देखें, तो सिवाय पागल होने के और कुछ भी नहीं होंगे, वहां पागल मौजूद है।
तो महावीर कहते हैं, वहां परमात्मा है। तो फिर कहां होगा? शरीर में परमात्मा हो नहीं सकता। यह मन है, इसमें परमात्मा नहीं है। महावीर कहते हैं, वह परमात्मा जरूर है। लेकिन शरीर को भी, उस तक पहुंचने के लिए, पार करना होता है। और मन को भी, उस तक पहुंचने के लिए, पार करना होता है। शरीर

की पर्त के पीछे हटो, मन है; मन की पर्त के पीछे भी हट जाओ तो वह है, जिसे परमात्मा उन्होंने कहा है।
हम अपने मकान के, जिसके तीन खंड हैं--मेरी आत्मा, मेरा मन, मेरा शरीर--
हम दो ही खंडों में जीवन गुजार देते हैं, तीसरे खंड से अपरिचित रह जाते हैं! हम उसकी दहलान में ही घूम-घूम कर जीवन व्यतीत कर देते हैं, उस आंतरिक कक्ष से अपरिचित रह जाते हैं, जहां हमारा वास्तविक होना है! और उससे अपरिचित व्यक्ति निश्चित दुख में पड़ा रह जाता है, निश्चित पीड़ा में पड़ा रह जाता है, निश्चित सारे जीवन दुख को मिटाने की कोशिश करता है, लेकिन दुख को नहीं मिटा सकता। जीवन भर सुख को पाने की चेष्टा करता है, लेकिन सुख को नहीं पा सकता। क्योंकि दुख एक ही बात के कारण है और वह यह कि वह अपने केंद्र से च्युत है। अपने केंद्र पर नहीं है, यही उसका दुख है। वह सोचता है कि वस्तुओं के न होने से वह जो दुख है। वह दुख नहीं है, क्योंकि कितनी ही वस्तुएं मिल जाएं, सुख नहीं आता।
इस जमीन पर ऐसे लोग हुए हैं, जिनके पास सब था। खुद महावीर के पास सब था, लेकिन उस सब ने उन्हें सुख नहीं दिया। आज तक एक भी आदमी मनुष्य के इतिहास में नहीं हुआ, जिसने यह कहा हो कि मैंने सब पा लिया और मुझे सुख मिल गया हो। सब पा लिया, तब भी दुख उतना ही था, जब कि सब नहीं पाया था। दुख में अंतर नहीं पड़ता है। जो पा लिया, उससे दुख में अंतर नहीं पड़ता है। तो फिर कुछ बुनियादी बात दूसरी होगी। दुख का संबंध कुछ पाने से नहीं है। दुख का संबंध, वह आंतरिक केंद्र, वह सेंटर खो देने से है।
हम अपने केंद्र पर नहीं हैं, यह हमारी पीड़ा है। हम अपने केंद्र पर आ जाएं, यह हमारा आनंद हो जाएगा। महावीर की समस्त साधना केंद्र-च्युत मनुष्य को वापस केंद्र कैसे दिया जाए, इसकी साधना है।
हमारा दुख और पाप और कुछ नहीं है--एक ही दुख, एक ही पाप, एक ही पीड़ा है
कि हम अपने केंद्र पर नहीं हैं। जो हमारा वास्तविक होना है, जो हमारा आथेंटिक बीइंग है, जो हमारी प्रामाणिक सत्ता है, उससे हम संबंधित नहीं हैं। हम बाहर कहीं घूम रहे हैं। हम अपने बाहर कहीं चक्कर काट रहे हैं। हम अपने से अजनबी और स्ट्रेंजर हो गए हैं। मनुष्य के जीवन में एक ही पीड़ा है, वह अपने से अजनबी हो सकता है। यह अजनबीपन, यह अपने को न जानना, यह अपने से परिचित न होना--समस्त धर्म इस परिचय की ओर ले जाने के मार्ग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। कभी इस पर विचार करें, कभी इसको अनुभव करें, कभी इस सत्य को निरीक्षण करें--इस सत्य को निरीक्षण करें कि मैं अपने को जानता हूं? महावीर को वही पीड़ा पकड़ी। सब उनके पास है। सब उनके पास था--सारी सुविधा, सारी व्यवस्था, सारी समृद्धि। एक ही पीड़ा थी--खुद अपने पास नहीं थे। सब उनके पास था, स्वयं अपने पास नहीं थे। सब उन्हें उपलब्ध था, स्वयं की सत्ता अनुपलब्ध थी। सब उनकी जीत हो गई थी, लेकिन स्वयं अनजीता था। सब उन्होंने जान लिया था, एक केंद्र अनजाना और अपरिचित था। जब सबको जान कर भी सुख न मिला, जब सबको पाकर भी सुख न मिला, जब सबको जीत कर भी शांति न मिली, तो स्वाभाविक था कि यह विचार उठे कि वह जो अनजीता एक बिंदु है, शायद आनंद और शांति का केंद्र वही हो।
अगर मैं इस घर में सारे कोने-कोने को तलाश लूं और मुझे प्रकाश न मिले,
तो शायद मैं सोचूं कि जो कोना अनजाना, अपरिचित रह गया, उसे और खोज लें। जो सब पा लिया, उसे अनुभव हुआ कि सब पाने में आनंद नहीं मिला। शायद जो मैं स्वयं अपने को अनपाया छोड़ दिया, उसे पाने में आनंद हो! और जिन लोगों ने उस स्वयं को जानने की कोशिश की, उन्हें अनुभव हुआ, आनंद वहां था। आनंद पाना नहीं था, आनंद वहां मौजूद था, केवल उदघाटन करना था। आनंद खोजना नहीं था, आनंद स्वभाव था। केवल वस्त्र, आवरण अलग करने थे।
मैं एक कुएं को खुदते देखता था। मिट्टी की पर्तें अलग की गईं और नीचे
से पानी के झरने आ गए। पानी वहां मौजूद था। मिट्टी से आवृत था। पानी लाया नहीं गया, केवल ऊपर के आवरण अलग किए गए, नीचे झरने फूट पड़े। वे झरने फूट पड़ने को बहुत उत्सुक थे। मिट्टी हटी नहीं कि उन्होंने फूटना शुरू कर दिया। वे बह पड़ने को बड़ी आकांक्षा से भरे थे। मिट्टी हटी नहीं और वे बहने लगे। वैसा ही हमारे भीतर आनंद उपस्थित है। केवल आवृत मिट्टी के थोड़े से अलग करने हैं। थोड़े से ऊपर जो आवरण हैं, उनको अलग करने हैं।

और यह जो मैं कहता हूं--या यह जो महावीर ने कहा, बुद्ध ने कहा, क्राइस्ट ने, कृष्ण ने कहा--यह जो कहा कि भीतर वहां ज्ञान, अनंत ज्ञान, अनंत शक्ति, अनंत आनंद मौजूद है; सच्चिदानंद वहां मौजूद है, केवल आवरण अलग करने हैं। यह कोई सिद्धांत नहीं है, यह कोई विचार मात्र नहीं है, यह अनुभूति है। इसे करोड़-करोड़ लोगों ने जाना है। इस भांति अपने आवरण उघाड़ कर उस सच्चिदानंद को अनुभव किया है। उसकी अनुभूति को दूसरे लोग न भी देख सके हों, तो भी अनुभूति से फैली हुई सुगंध को दूसरे लोगों ने भी अनुभव किया है।
महावीर को देख कर लाखों लोगों को अनुभव होता हैः कुछ हो गया है इस आदमी में, जो हममें नहीं हुआ है। कोई आनंद इसमें प्रकीर्ण हो गया है, कोई शांति इसमें घनीभूत हो गई है। यह किसी दूसरे तल पर, किसी दूसरे डायमेंशन में, किसी दूसरे आयाम में, किसी दूसरे आकाश का प्राणी हो गया है। उसकी सुगंध, उसका संगीत, उसके जीवन से फैलती हुई किरणें अनेक को अनुभव हुई हैं। उसके सत्य को तो नहीं अनुभव किया जा सकता, लेकिन उसकी सुगंध को अनुभव किया गया है।
इस जमीन पर अब तक जब भी किसी ने आनंद पाया है, अपने से बाहर नहीं, भीतर पाया है। मैं एक छोटी सी कहानी पढ़ता था, एक बड़ी मीठी कहानी पढ़ता था।
एक सूफी फकीर स्त्री हुई। वह अपने घर के भीतर कपड़े सीती थी। उसकी सुई गिर गई। सांझ थी, अंधेरा घना हो गया, घर में प्रकाश न था, गरीब थी। वह सुई को खोजती हुई बाहर दहलान में आ गई। वहां थोड़ा-थोड़ा प्रकाश पड़ता था। सूरज आखिरी डूब रहा था। वहां खोजा, लेकिन तब तक सूरज डूब गया। तो वह बाहर सड़क पर आ गई। वहां अब भी थोड़ी रोशनी थी। करीब के पड़ोसियों ने पूछा, क्या गुम गया है? उसने कहा, मेरी सुई गुम गई है। उन्होंने पूछा, यह पता चले कि वह कहां गुम गई है, तो हम उसे ढूंढें।
तो उस बूढ़ी स्त्री ने कहा, यह मत पूछो, मेरे दुख को मत छेड़ो, मेरे घाव
को मत छुओ। यह मत पूछो कहां गुमी है। खोजो, मिल जाए तो ठीक। वे लोग बोले, यह बड़ा कठिन है; सुई है छोटी, और यह पता न हो कि कहां गुमी है तो कहां खोजा जा सकता है? उस स्त्री ने कहा, बड़ी तकलीफ है। सुई जहां गुमी है, वहां प्रकाश नहीं है, और जहां प्रकाश है, वहां सुई नहीं गुमी है। मेरी सुई भीतर गुमी है, लेकिन वहां प्रकाश नहीं है। यहां प्रकाश है, इसलिए यहां खोजती हूं, क्योंकि प्रकाश में खोजा जा सकता है।
मनुष्य के साथ भी वही घटना है, वही दुर्घटना है। हमारी आंखें बाहर खुलती हैं। हमारे हाथ बाहर फैलते हैं। हमारे कान बाहर सुनते हैं। हमारी समस्त इंद्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है। इसलिए हम बाहर खोज रहे हैं। लेकिन कभी यह पूछा कि गुमा कहां है? किसको खोज रहे हैं? उनको अज्ञानी नहीं कहेंगे अगर वे खोज रहे हैं बिना पूछे कि गुमा कहां है!
हम सारे लोग आनंद को खोज रहे हैं बिना यह पूछे कि गुमा कहां है! हम सारे लोग आनंद को खोज रहे हैं! इस जगत में और कोई कुछ भी नहीं खोज रहा है। कोई कुछ भी खोज रहा हो, मूलतः आनंद को खोज रहा है। लेकिन बिना यह पूछे कि यह आनंद गुमा कहां है? जिसकी तलाश है उसे खोया कहां है? निश्चित ही, अगर उसे खोया न हो तो तलाश नहीं हो सकती, क्योंकि उससे परिचय ही नहीं हो सकता।
मैं आपको कहूं, हम आनंद की तलाश कर रहे हैं, यह इस बात की सूचना है कि
हम आनंद को खोए हैं। क्योंकि जिसको खोया न हो, उसकी तलाश नहीं हो सकती। जिससे परिचय न हो, जिसकी कहीं स्मृति न हो, उसको खोजा नहीं जा सकता। सारे लोग आनंद को खोज रहे हैं बिना इस बात को पूछे कि खोया कहां है! और जब तक हम यह न पूछें कि खोया कहां है, तब तक खोज सार्थक नहीं हो सकती है, मिलना नहीं हो सकता है।
यह पूछ लें कि खोया कहां है। और इसके पहले कि दूसरे के घर में खोजने जाइए, बेहतर है अपने घर में खोज लें। इसके पहले कि दूसरे से पूछने जाइए, इसके पहले कि इस विस्तृत जमीन पर खोजने निकलिए, क्या यह योग्य और उचित नहीं है कि अपने घर में पहले तलाश कर लें! वहां न मिले तो फिर दुनिया में खोजने जाएं।
हम अजीब लोग हैं, हम दुनिया में खोजेंगे, और जब दुनिया में नहीं मिलेगा तो अपने में खोजेंगे! दुनिया बहुत बड़ी है और जीवन बहुत छोटा है। अनंत-अनंत जीवन भी बाहर खोज कर, दुनिया का अंत नहीं होगा। हमारे अनंत जीवन

नष्ट हो जाएंगे। क्या यह बात सीधी सी गणित की नहीं है कि इसके पहले कि मैं इस विराट दुनिया में खोजने जाऊं, इस छोटे से अपने घर में खोज लूं! अगर वहां न मिले, तो फिर खोजने निकल जाऊंगा।
महावीर इसी चिंतन से अपने भीतर खोजने गए। नहीं दुनिया में खोजा। सोचा पहले अपने भीतर जान लें, अगर वहां हो तो ठीक, नहीं तो फिर और कहीं चले जाएंगे। और जिन लोगों ने भी इस चिंतन का उपयोग किया और अपने भीतर खोजा, उनमें से कोई फिर बाहर खोजने नहीं गया। आज तक ऐसा नहीं हुआ, किसी ने भीतर खोजा हो और फिर बाहर खोजने गया हो। ऐसा आज तक हमेशा हुआ कि जिन्होंने बाहर खोजा, वे एक न एक दिन भीतर खोजने गए। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि जिसने भीतर खोजा हो, वह फिर बाहर भी खोजने गया हो। मैं फिर से कहूं, ऐसा हमेशा हुआ है कि जिन्होंने बाहर बहुत खोजा, एक दिन उन्हें भीतर खोजने जाना पड़ा। ऐसा आज तक नहीं हुआ कि जिन्होंने भीतर खोजा हो, वे फिर कभी बाहर खोजने गए हों। निरपवाद रूप से जिन्होंने भीतर झांका, उन्होंने पा लिया।
भीतर कुछ है। भीतर कुछ अदभुत विराजमान है। भीतर कुछ हमारा स्वरूप है।
और मैं आपको कहूं, सच तो यह है, सच यह है कि कभी अपने जीवन को भी विचार करें, तो सत्य के प्रति अंतर-झलकें मिलनी शुरू हो जाएंगी।
मैं आपसे पूछूं, आप दुख चाहते क्यों नहीं हैं? आप आनंद क्यों चाहते हैं? एक सीधा प्रश्न पूछूं, आप दुख क्यों नहीं चाहते हैं? इस जमीन पर कोई भी दुख क्यों नहीं चाहता है? महावीर ने कहा है, कोई भी दुख नहीं चाहता। क्यों नहीं चाहता लेकिन, कभी यह पूछा? हम भी दुख नहीं चाहते, मैं भी दुख नहीं चाहता, लेकिन क्यों दुख नहीं चाहता? बड़ी अजीब बात है, हम जीवन भर दुख नहीं चाहते, लेकिन यह नहीं पूछते कि हम क्यों दुख नहीं चाहते? अगर यह पूछें तो एक अदभुत उत्तर आपको ज्ञात होगा।
अगर आप दुख नहीं चाहते हैं तो इसका अर्थ हुआ कि दुख विजातीय है, दुख फारेन है। आपके स्वरूप के विपरीत है, इसलिए नहीं चाहते हैं। यानी स्वरूप कहीं न कहीं आनंद होगा, इसलिए दुख को नहीं चाहते हैं। अन्यथा दुख को "न-चाह" पैदा नहीं होती। दुख को न चाहने का अर्थ है भीतर कहीं आपका स्वरूप आनंद है, इसलिए दुख को नहीं चाहते हैं। सच तो यह है, अगर आपका स्वरूप दुख होता, तो दुख का आपको पता भी नहीं चल सकता था। अगर मेरा स्वरूप दुख होता तो मुझे दुख का पता नहीं चल सकता था। बल्कि जब दुख आता, तो मैं तो और प्रेम से उसे ग्रहण कर लेता। वह तो मेरे स्वरूप को और समृद्ध करता। लेकिन कोई दुख को ग्रहण नहीं करता है। यह इस बात की सूचना है कि दुख स्वरूप को समृद्ध नहीं करता है, दुख स्वरूप को बढ़ाता नहीं है, दुख स्वरूप के विपरीत है, अनुकूल नहीं है।
अगर दुख स्वरूप के विपरीत है, तो स्वरूप आनंद होगा। हम आनंद को चाहते हैं, क्योंकि हमारा स्वरूप आनंद है। हममें से कोई मृत्यु को नहीं चाहता, क्योंकि हमारा स्वरूप अमृत है। हममें से कोई अंधेरे को नहीं चाहता, क्योंकि हमारा स्वरूप प्रकाश है। हममें से कोई भय को नहीं चाहता, क्योंकि हमारा स्वरूप अभय है। हममें से कोई दीन-हीन नहीं होना चाहता, क्योंकि हमारा स्वरूप प्रभु है। अगर इस बात को समझें तो जो-जो हम नहीं चाहते हैं, वह हमारे स्वरूप की ओर संकेत है, वह हमारे स्वरूप की ओर इशारा है। जो-जो हम नहीं चाहते, उससे भिन्न हमारा स्वरूप होगा। यह चिंतन जिसमें जन्म पाए, जिसका अंतस्तल इस मंथन, इस आंदोलन से ग्रसित हो जाए, यह पीड़ा और व्यथा पकड़ ले, यह सोच-विचार पकड़ ले, यह एक-एक जीवन के सत्य को पकड़ कर चिंतना शुरू हो जाए, मैं दुख क्यों नहीं चाहता! यह चिंतन हो जाए, मैं आनंद को खोज रहा हूं, लेकिन मैंने आनंद को खोया कहां है!
यह चिंतन शुरू हो जाए, तो व्यक्ति के जीवन में इस सारे चिंतन के परिणाम से एक अदभुत प्यास पैदा होनी शुरू हो जाएगी। उसकी जो वृत्ति बिना पूछे बाहर खोजती थी, पूछने की वजह से छिटक जाएगी, बाहर खोजने में रुकावट आ जाएगी और आंतरिक की तरफ, भीतर की तरफ झुकाव प्रारंभ हो जाएगा। चिंतन, इस सत्य का चिंतन कि जो जीवन हमें मिला है, वह क्या है? जिस जीवन की हमारी जो अनुभूतियां हैं, वे क्यों हैं? हम क्यों खोज रहे हैं आनंद को? क्या खोज रहे हैं? कहां खोज रहे हैं?

ये प्रश्न अगर जीवंत होकर, अगर ये प्रज्वलित होकर आपके सामने खड़े हो जाएं तो आपमें पहली दफा धर्म के प्रति जिज्ञासा शुरू होगी।
धर्म की जिज्ञासा का संबंध, परमात्मा है या नहीं, इससे नहीं है। धर्म
की जिज्ञासा का संबंध, जगत को किसने बनाया या नहीं बनाया, इससे भी नहीं है। धर्म की जिज्ञासा का संबंध, आत्मा एक है या अनेक, इससे भी नहीं है। धर्म की मूल जिज्ञासा का संबंध इस सत्य से है कि जो दुख है, उसे मैं क्यों नहीं चाहता हूं? मैं दुख से सहमत क्यों नहीं हूं? और मेरी प्यास आनंद के लिए क्यों है? ये बाकी जो बातें हैं, ग्रंथ में होंगी, किताब में होंगी, जिंदगी से इनका कोई संबंध नहीं है। धर्म की जिज्ञासा जीवन के विश्लेषण और निरीक्षण से शुरू होती है।
महावीर के जीवन-दर्शन और साधना में सबसे महत्वपूर्ण जो मुझे बात प्रतीत होती है, वह यह है कि महावीर का चिंतन ग्रंथों से शुरू नहीं हो रहा, जीवन से शुरू हो रहा है। हमारा चिंतन ग्रंथों से शुरू होता है, जीवन से शुरू नहीं होता।
इस सत्य को बहुत विचार कर लेना जरूरी है।
मेरे पास लोग आते हैं। मुझ से कोई ईसाई आता है तो वह पूछता है, क्या वह मरियम, जिनसे ईसा का जन्म हुआ, कुंआरी थी? मैं उससे पूछता हूं, इससे क्या फर्क पड़ेगा जानने से? यद्यपि ईसाई के सिवाय यह प्रश्न मुझसे कोई दूसरा नहीं पूछता है। कोई जैन नहीं पूछता। जैन मुझसे पूछते हैं, निगोद क्या है? कोई ईसाई नहीं पूछेगा यह, क्योंकि उसको निगोद का पता ही नहीं है। एक मुसलमान मुझसे पूछता है, कुरान उतरी मोहम्मद के ऊपर, तो वह किताब की किताब उतरी या किस तरह उतरी? यह कोई दूसरा हिंदू या बौद्ध नहीं पूछता! क्यों? ये प्रश्न जिंदगी के नहीं, किताबों के हैं। जो जिंदगी का प्रश्न है,
वह हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का, जैन का एक ही होगा। क्योंकि जिंदगी तो एक ही प्रश्न उठाती है, किताबें अलग-अलग प्रश्न उठाती हैं। और जो किताबों से प्रश्न पूछेंगे, वे पंडित भले हो जाएं, प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं होंगे। वे बहुत सी बातें, इनफर्मेशन इकट्ठी कर लें, किताबें लिख डालें, भाषण करें, दूसरों को समझाने के योग्य अपने में दंभ पैदा कर लें, तो उससे कोई हल नहीं होगा। जो प्रश्न किताबों से उठते हैं, वे मुर्दा हैं। जो प्रश्न जिंदगी से उठते हैं, वे जीवित हैं। और जो प्रश्न जिंदगी से उठते हैं, वे ही जिंदगी को बदलने में समर्थ हो पाते हैं, ग्रंथों से उठे हुए प्रश्न जिंदगी को नहीं बदलते हैं।
महावीर के लिए प्रश्न जिंदगी से उठे। और जिंदगी से उठे, यह पहली बात।
और दूसरी बात, उन्होंने किसी के उत्तर स्वीकार नहीं किए, खुद उत्तर पाने की चेष्टा शुरू की। पहली बात प्रश्न जिंदगी से उठे, और दूसरी बात अपने ही जीवन में तलाश शुरू की, कहीं किसी से जाकर शिक्षा लेने का उपाय नहीं किया। जो प्रश्न किताब से उठेंगे, उनके उत्तर किताबों में मिल जाएंगे। जो प्रश्न जिंदगी से उठेंगे, उनके उत्तर साधना में मिलेंगे। यह समझ लेना जरूरी है।
महावीर को जिंदगी से प्रश्न उठे। दुख, अमुक्ति, बंधन, एकमात्र प्रश्न
है जो महावीर के चित्त में है। एकमात्र प्रश्न है कि दुख क्यों है? दुख का बंधन क्यों है? और जब यह प्रश्न है, तो एक ही साधना है कि क्या दुख के बाहर हुआ जा सकता है? क्या दुख के बंधन के ऊपर उठा जा सकता है? इसका कोई किताब उत्तर नहीं दे सकती। कोई रेडीमेड, किसी के उत्तर काम के नहीं हो सकते। इसे तो अनुभूति से जानना होगा।
जीवन से प्रश्न उठे, महावीर साधना में गए। किस साधना में गए?
लोग देखते हैं, उन्होंने घर-बार छोड़ दिया, राज्य-संपत्ति छोड़ दी। तो लोग सोचते हैं, यही साधना थी। यह साधना नहीं है। जो बाहर दिखता है, उससे साधना का कोई संबंध नहीं है। साधना तो आंतरिक है। मकान बाहर से छोड़ कर निकल जाना आसान है। सवाल मकान से निकल जाने का नहीं है, सवाल मेरी खोपड़ी से मकान निकल जाए उसका है।
एक साधु के बाबत मैं पढ़ता था। एक बादशाह उसे इतना प्रेम करने लगा कि अपने महल में उस साधु को रख लिया। इतना प्रेम करने लगा कि बाद में एक महल उसके लिए बना दिया। वर्ष पर वर्ष बीते। बारह वर्ष बीते। एक दिन उस बादशाह

को हुआ, अब इस साधु में और मुझमें अंतर क्या है? यह तो फिजूल में ही साधु कहलाता है। हम भी बादशाह हैं और यह भी अब बादशाह की तरह रहता है। हमारी तो कुछ मुसीबतें हैं, इसकी वे मुसीबतें भी नहीं हैं। यह तो मजे से, मौज से रहता है।
उसने सुबह बगीचे में टहलते हुए उस साधु को कहा कि मित्र, एक प्रश्न रात्रि से मेरे मन में है। मैं पूछना चाहता हूं, मुझमें और आपमें अब अंतर क्या है? वह फकीर सुन कर हंसने लगा और बोला, सच में जानना चाहते हो? तो थोड़े दूर मेरे साथ गांव के बाहर चलो। जरा एकांत आ जाएगा तो उत्तर दूंगा। बादशाह बोला, ठीक है। वे दोनों गांव के बाहर निकले, नदी जो सीमा थी, पार हो गई। बादशाह ने कहा, अब उत्तर तो दो। उसने कहा, थोड़ा आगे चलो। धूप तेज होने लगी। बादशाह ने कहा, उत्तर दे दो। अब तो एकांत जंगल भी आ गया, अब तो कोई सुनने वाला भी नहीं है। वह फकीर बोला, सुनो! उस फकीर ने कहा, अब मेरा लौटने का मन नहीं है, मैं जाता हूं। बादशाह बोला, कहां जाते हैं? तो वह फकीर बोला, अब मैं जाता हूं। तुम भी मेरे साथ चलते हो? बादशाह बोला, कैसी आप बात करते हैं! मेरा महल पीछे है। मुझे वहां लौटना है। और वह फकीर बोला, मेरा कोई महल पीछे नहीं है, मेरा कोई लौटना नहीं है। हम वहां महल में थे, महल हममें नहीं था। फर्क अगर दिखे तो दिख सकता है।
महावीर ने महल छोड़ा, यह मूल्यवान नहीं है। महावीर के भीतर से महल छूट गया, यह सवाल है। महावीर ने धन छोड़ा, यह मूल्यवान नहीं है। महावीर के भीतर से धन छूट गया, यह मूल्यवान है। महावीर जो छोड़ कर गए, वह मूल्यवान नहीं है। जो उनके भीतर से विसर्जित हो गया, वह मूल्यवान है।
संसार बाहर नहीं है। संसार बिल्कुल बाहर नहीं है। संसार बड़ी मानसिक घटना है, बड़ी मेंटल चीज है। ये जो दीवालें और मकान और रास्ते दिखाई पड़ रहे हैं, ये संसार नहीं हैं, क्योंकि महावीर मुक्त होकर भी इन्हीं दीवालों और सड़कों पर से निकलेंगे। ये संसार नहीं हैं, क्योंकि जब महावीर ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे, तब भी रास्तों पर से निकलेंगे, तब भी संसार में होंगे, लेकिन आप उनको फिर सांसारिक नहीं कहते हैं! संसार में होंगे, लेकिन सांसारिक क्यों नहीं कहते? ये संसार नहीं हैं। संसार कुछ और है।
संसार मानसिक है, संसार भौतिक नहीं है। वह जो हमारे भीतर एक संसार बन गया है, वह जो मैंने अपनी चेतना के इर्द-गिर्द एक दुनिया चित्रों की और विचारों की आबाद कर ली है। वह जो इमेजेज और कल्पनाएं और स्वप्न वहां इकट्ठे हो गए हैं, वह मेरा संसार है।
संसार मेरे स्वप्नों का है, वस्तुओं का नहीं है।
इसलिए जो वस्तुओं को छोड़ने में लगा है, नासमझ है। जो स्वप्नों को छोड़ने में लगा है, समझदार है। वस्तुएं नहीं बांधती हैं, वस्तुओं के प्रति देखे गए स्वप्न बांधते हैं। वस्तुएं नहीं बांधती हैं, वस्तुओं के प्रति की गई कामनाएं बांधती हैं। वस्तुएं नहीं बांधती हैं, वस्तुओं के प्रति जगाई गई आसक्ति बांधती है। वह सब मानसिक है।
क्रांति संसार को छोड़ने की नहीं, क्रांति मन को परिवर्तित करने की है।
अन्यथा घर-द्वार छोड़ कर भाग जाएं, पाएंगे कि घर-द्वार पीछे चले आ रहे हैं। स्त्री को छोड़ कर पुरुष भाग जाए, पुरुष को छोड़ कर स्त्री भाग जाए, तो लौट कर पाएंगे कि जिनको छोड़ कर आए हैं, वे साथ ही चले आए हैं। वे पीछे छूटे नहीं हैं। वे जरूर छूट गए होंगे--जो भौतिक पुरुष था, वह छूट गया होगा। लेकिन वह जो कल्पना का पुरुष और स्त्री है, साथ चली आई है। पीड़ा, वह जो शरीर है स्त्री या पुरुष का, वह थोड़े ही दे रहा है। पीड़ा तो वह जो कल्पना, वह स्वप्न जो है भीतर, वह दे रहा है। बांध तो उसका है, बंधन तो उसका है, पकड़ तो उसकी है। वह जो भीतर विराजमान है, पकड़ उसकी है। उसे विसर्जित करना संसार को विसर्जित करना है। उससे मुक्त हो जाना संन्यस्त हो जाना है।
मैं एक स्मरण करता हूं, एक कथा कोरिया में घटी। वह चित्र महावीर को समझाएगा। वह एक अंतर्दृष्टि देगा और एक बहुत सड़ी-गली जो धारणा महावीर की साधना के पीछे बन गई है परंपरा में, उससे मुक्त होने में सहयोगी होगा।
एक युवक भिक्षु और एक वृद्ध भिक्षु एक नदी के किनारे से निकलते थे, नदी पार करते थे। एक युवती भी नदी पार करने को ठहरी थी। लेकिन पहाड़ी नाला

और तेज धार और उसका साहस नहीं था कि नदी को पार करे। उस वृद्ध भिक्षु ने सोचा, हाथ का सहारा दे दूं और नदी पार करा दूं।
लेकिन जैसे ही ख्याल आया, हाथ का सहारा दे दूं, भीतर की सोई हुई स्त्री
के प्रति जो वासना और कामना है, वह जग गई। हाथ के स्पर्श की कल्पना से भीतर के सोए बहुत से स्वप्न सजग हो गए। बहुत सा दमित, बहुत सा सप्रेस्ड जो था स्त्री के प्रति, वह सब फिर से साकार होकर उठ आया। वह घबड़ाया बहुत। वर्षों से स्त्री के प्रति विचार नहीं उठा था। अपने को झिड़का कि मैंने भी कहां की नासमझी की बात सोची! मुझे प्रयोजन? लोग नदी पार होंगे, होते रहेंगे, मुझे क्या करना है? मैं क्यों अपना जीवन इसको नदी पार कराने के कारण बिगाडूं? वह आंख झुका कर नदी पार करने लगा। उसने उस लड़की को सहारा नहीं दिया। लड़की को सहारा इसलिए नहीं दिया, इसलिए नहीं कि लड़की कोई सहारा देने में दिक्कत देती। सहारा इसलिए नहीं दिया कि सहारे की कल्पना ने ही, भीतर जो स्त्री का रूप था, उसे सजग कर दिया। वह आंख झुका ली उसने।
लेकिन आंख झुकाने से कोई रूप समाप्त होते हैं? आंख झुकाने से तो वे और रम्य, और सुंदर हो जाते हैं। आंख बंद कर लेने से कोई रूप नष्ट होते हैं? आंख बंद कर लेने से तो वे और स्वर्णिम, और स्वर्गीय हो जाते हैं। वह आंख बंद करके घबड़ाया, और भगवान का स्मरण करता हुआ नदी पार होने लगा।
पीछे उसका एक युवक भिक्षु भी आता था। नदी पार करके उसे ख्याल हुआ, कहीं वह पागल लड़का, वह भी इसी सेवा और सहायता की भूल में न पड़ जाए। तो उसने लौट कर देखा, वह लड़का उसको कंधे पर बिठा कर नदी पार कर रहा है! उसको तो सारे बदन में आग लग गई। वह तो कल्पना भी नहीं कर सका कि मैं वृद्ध हुआ हूं, और यह तो युवा है और युवती को कंधे पर बिठा कर पार कर रहा है! उसे कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करे और क्या न करे। गुस्से में बहुत देर तक बोला नहीं। जब दोनों आश्रम में प्रवेश करते थे, सीढ़ियों पर रुक कर उसने उस युवक से कहा कि सुनो, जाकर गुरु को कहूंगा, और उसका तुम्हें प्रायश्चित्त और दंड भोगना पड़ेगा। वह लड़का बोला, कौन सी भूल हुई? उसने कहा, उस लड़की को तुमने कंधे पर क्यों उठाया? उस युवक ने कहा, मैं उसे नदी के किनारे ही कंधे से उतार दिया था, आप तो उसे अभी भी लिए हुए हैं!
यह जो आदमी उसे कंधे पर लिए हुए है, यह किस कंधे पर लिए हुए है? और क्या
हम अपने संसार को कंधे पर नहीं लिए हुए हैं? क्या संसार कहीं बाहर है? क्या उन मकानों में और उन बच्चों में और उन वृत्तियों में संसार है जो बाहर हैं? या कि संसार को हम कहीं किसी काल्पनिक कंधे पर लिए हुए हैं?
संसार को छोड़ कर नहीं भागना, संसार को कंधे से उतारना है।
तो महावीर जो छोड़े बाहर, वह मूल्यवान नहीं है। जो भीतर छोड़ा, जो कंधे
से उतारा, वह मूल्यवान है। वह कैसे कंधे से उतारा, वही उनकी साधना, वही बारह वर्ष की तपश्चर्या में वे कर रहे हैं। मैं सुनता हूं उनकी तपश्चर्या के बाबत प्रवचन, ग्रंथ देखता हूं, तो मुझे बड़ी हैरानी होती है। उस तपश्चर्या में लोग वर्णन करते हैं, उन्होंने कितने धूप-ताप सहे, उन्होंने कितने दिन भूखे रहे, उन्होंने किस-किस तरह वस्त्र त्याग कर नग्न रहे। उनको किस-किस तरह की पीड़ा और परेशानी आई! किस-किस तरह लोगों ने सताया और वे कुछ नहीं बोले, इसका लोग वर्णन करते हैं! इसका साधना से कोई संबंध नहीं है। यह नहीं है असली बात।
असली बात यह नहीं कि महावीर के बाहर क्या नाटक घटित हो रहा है, असली बात यह है कि महावीर के भीतर क्या हो रहा है। इन बारह वर्षों में--महावीर धूप में खड़े हैं या सर्दी में, यह तो शरीर खड़ा है। यह सवाल नहीं है, सवाल यह है कि महावीर का चित्त कहां है! महावीर जब धूप में खड़े हैं या भूखे खड़े हैं या उपवासे खड़े हैं, यह सवाल नहीं है--महावीर का चित्त कहां है! अगर महावीर उपवासे खड़े हैं और चित्त भोजन में हो, तो सब उपवास तो व्यर्थ हो जाएगा। अगर महावीर धूप में खड़े हैं और चित्त छाया में कहीं हो, तो धूप में खड़ा होना तो व्यर्थ हो जाएगा। महावीर कहां खड़े हैं, यह सवाल नहीं है--महावीर का चित्त कहां है! महावीर क्या कर रहे हैं, यह सवाल नहीं है--महावीर का चित्त क्या कर रहा है!
हमारा चित्त कुछ न कुछ कर रहा है, कुछ न कुछ कर रहा है! महावीर की साधना
इस बात की है कि चित्त ऐसी स्थिति में पहुंचे, जहां वह कुछ भी नहीं कर रहा

है। क्योंकि चित्त कुछ भी करेगा, सब करना संसार को खड़ा करना होगा। क्योंकि चित्त कुछ भी करेगा, तो सिवाय चित्रों के बनाने के और कुछ भी नहीं कर सकता है। चित्त का एक ही काम है। चित्त जो है, चित्रकार है। मेरी समझ जो है, चित्त चित्रकार है। उसका एक ही काम है कि वह चित्र बना सकता है। और कोई काम नहीं कर सकता। और उन्हीं चित्रों के संसार में उलझा सकता है और कोई काम नहीं कर सकता। चित्र और स्वप्न खड़ा करना, स्वप्न को सृजन करना, चित्त का काम है। तो चित्त जब तक काम करेगा, तब तक वह स्वप्न और चित्र खड़े करेगा और उनमें उलझ जाएगा। संसार को बनाएगा।
संसार को भगवान नहीं बनाता, संसार को चित्त बनाता है।
स्मरण रखें, संसार को भगवान नहीं बनाता, संसार को चित्त बनाता है।
तो चित्त जब तक सक्रिय है, तब तक संसार है। चित्त निष्क्रिय हो गया, संसार के आप बाहर हो गए। चित्त सक्रिय है तो बंधन है; चित्त निष्क्रिय हो गया तो मोक्ष में हो गए।
तो महावीर चित्त को ऐसी स्थिति में ले जा रहे हैं, जहां उसकी सक्रियता क्षीण से क्षीण होकर विलीन हो जाए, जहां सक्रियता शिथिल होते-होते, होते- होते शून्य हो जाए।
साधना है चित्त को शिथिल करने की और सिद्धि है चित्त के शून्य हो जाने की। ध्यान है चित्त को शिथिल करना, निष्क्रिय करना। और समाधि है चित्त का निष्क्रिय और शून्य हो जाना। महावीर की साधना चित्त को शिथिल करने की और उपलब्धि चित्त को शून्य करने की है।
चित्त सक्रिय है, तो मैंने कहा, संसार बनता है। और उसी संसार, उन्हीं प्रतिबिंबों में हम खोए-खोए उसे भूल जाते हैं, जो हम हैं। वह जो भीतर है, उसका विस्मरण हो जाता है।
सच, आप कभी चित्र देखते हों, कभी फिल्म देखते हों, कभी नाटक देखते हों,
एक अदभुत बात अनुभव होगीः फिल्म देखते-देखते आप इतने तल्लीन हो जाएंगे कि आपको यह पता नहीं रहेगा कि आप भी हैं! जब पर्दा वहां खाली होगा, तब अचानक आपको चौंक कर पता पड़ेगा, दो घंटे बीत गए; हम भी थे, इसका पता न रहा! एक चित्र में, एक कथा में हम भी एक पात्र हो गए थे! क्या कई दफा अनुभव नहीं हुआ कि उन पात्रों के साथ आप रोने लगे हैं और उन पात्रों के साथ आप हंसने लगे हैं? क्या पर्दा जब खाली हो गया और लोग उठने लगे तो आपने अनेक बार अपने आंसू नहीं छिपा लिए हैं कि पड़ोस का आदमी न देख ले कि चित्र देख कर रोते थे? लेकिन चित्र को देख कर आप रोते थे, बड़ी हैरानी की बात है! चित्र इतने प्रभावी हैं कि उनसे आप रोते हैं और हंसते हैं? और जानते हैं भलीभांति कि वहां पर्दे के सिवाय कुछ भी नहीं है! भलीभांति जानते हैं, खुद ही पैसे दिए हैं, भलीभांति पता है कि वहां सफेद पर्दे के सिवाय कुछ भी नहीं है। और पीछे से केवल विद्युत की किरणें फेंक कर चित्रों का भ्रम हो रहा है, चित्र भी वहां नहीं हैं। लेकिन फिर भी रोते हैं और हंस लेते हैं! चित्र का बड़ा प्रभाव है।
चित्र का प्रभाव ही अज्ञान है। चित्र के प्रभाव से मुक्त होना ज्ञान है।
वह रोज-रोज आप फिल्म देखने न जाते हों, लेकिन चौबीस घंटे मन के पर्दे
पर फिल्में चल रही हैं। आप अपने ही बनाए हुए सिनेमा-गृह में रोज-रोज बैठे हुए हैं--चौबीस घंटे! मजा यह है कि वहां आप ही तो पात्र हैं, आप ही देखने वाले, आप ही नाटक खड़ा करने वाले, आप ही प्रोजेक्टर, आप ही पर्दा, वहां आपके सिवाय कोई भी नहीं है! इसलिए महावीर ने कहा, आत्मा ही बंधन है, आत्मा ही मोक्ष है। वह सारा बंधन आपका ही बनाया हुआ है। आपकी ही कल्पना-प्रसूत, आपकी ही इमेजिनेशन का खेल है। वह आप सारा बनाए हुए हैं।
महावीर उस पूरी साधना में उन चित्रों को पोंछ कर पर्दे को सफेद करने में लगे हैं कि ऐसी घड़ी आ जाए कि पर्दा सफेद हो जाए। पर्दे के सफेद होते ही एकदम याद आएगा, अरे! मैं भी हूं। और मैं चित्रों में भूल गया था। एक दफा चित्त शून्य हो जाए, आत्म-ज्ञान शुरू हो जाएगा। वहां चित्त शून्य हुआ, यहां आत्म-ज्ञान का उदभावन, जागरण शुरू हुआ।
महावीर की साधना चित्त को शून्य करके, चित्रों से मुक्त होकर, उसको जानने की है, जिसका नाम चैतन्य है। जो चित्रों को जानेगा, वह चैतन्य को

नहीं जानेगा। जो चित्रों को विलीन कर देगा, वह चैतन्य का अनुभव करता है। उसका ज्ञाता बनता है। उस ज्ञान का उसे बोध होता है। इस बोध का, इस आत्म-दर्शन का महावीर की संपूर्ण साधना में केंद्रीय स्थल है।
लोग समझते हैं, महावीर की साधना अहिंसा की है। नहीं! लोग समझते हैं, महावीर की साधना ब्रह्मचर्य की है। नहीं! लोग समझते हैं, महावीर की साधना सत्य की है। नहीं! महावीर की साधना आत्मा की है। और आत्म-अनुभव के परिणाम में सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा उपलब्ध होते हैं। यह आत्म-अनुभूति के फूल हैं। जो आत्म को जानता है, वह असत्य से उसी क्षण मुक्त हो जाता है। जो आत्म को जानता है, अब्रह्मचर्य से मुक्त हो जाता है। जो आत्म को जानता है, वह हिंसा से मुक्त हो जाता है। आत्म-ज्ञान का परिणाम, उसके कांसीक्वेंसेस अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य में फलित होते हैं। लोग सोचते हैं, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य साधन हैं, जिनसे आत्मा उपलब्ध होगी! मैं विपरीत सोचता हूं। वे साधन नहीं हैं, साधन तो चित्त-विसर्जन है। साधन तो ध्यान है, साधन तो समाधि है, साधन तो योग है। साधन वे नहीं हैं, वे तो साधना के परिणाम हैं। वे तो जब आत्म-अनुभव होगा, तो उस अनुभूति के फूल हैं। उनसे पहचाना जाएगा कि ज्ञान उपलब्ध हुआ या नहीं। उनसे ज्ञान पाया नहीं जाता है।
महावीर ने कहा है, अहिंसा ज्ञान का फल है। इस वाक्य को कोई विचार नहीं करता! महावीर कहते, अहिंसा ज्ञान का फल है। अगर ज्ञान का फल है तो ज्ञान पहले होगा कि अहिंसा पहले होगी? आगम कहते, पढमं नाणं तओ दया। पहले ज्ञान है, फिर दया, फिर अहिंसा है। महावीर कहते हैं, जो ज्ञान को उपलब्ध हो, वह आचरण को उपलब्ध है। जो ज्ञान को नहीं उपलब्ध है, उसका सब आचरण मिथ्या है। ये स्पष्ट सूत्र हैं। जो अगर थोड़े विचार किए जाएं तो यह दिखाई पड़ेगा कि महावीर की साधना नैतिक साधना नहीं है, आत्मिक साधना है। अहिंसा को, सत्य को, ब्रह्मचर्य को साधना नीति है।
आज दुनिया में जो भ्रम पैदा हुआ है, वह यही भ्रम पैदा हुआ है कि नीति
को साधो, तो धर्म मिल जाएगा। मैं ऐसा नहीं मानता। मैं मानता हूं, धर्म को साधो तो नीति मिल जाएगी। जो नीति को साधेगा, वह धर्म को तो नहीं पा सकता। वह नीति को साध कर केवल एक अहंकार को भर उपलब्ध हो सकता है। मैं सत्यवादी हूं, मैं ब्रह्मचारी हूं, मैं त्यागी हूं, मैं साधु हूं, मैं मुनि हूं, ऐसे किसी दंभ को भला उपलब्ध हो जाए, लेकिन उस परम शांति को उपलब्ध नहीं होगा जहां दंभ का कोई निशान भी नहीं पाया जाता है।
नैतिक साधना अहंकार को परिपुष्ट करती है, आत्मिक साधना अहंकार को विसर्जित करती है। इसीलिए नैतिक लोगों में एक छिपे हुए अहंकार का बोध आपको निरंतर होगा। उस तरह के साधु में एक प्रसुप्त दंभ का बोध आपको निरंतर होगा। उस तरह के साधु में एक छिपे हुए क्रोध का आपको निरंतर बोध होगा। उन ऋषियों को हम जानते हैं, जो क्रोध से लोगों को अभिशाप दे दें। वह क्रोध उनमें कहां से है? क्योंकि जो अभिशाप दे सकता है, उसमें अत्यंत प्रज्वलित क्रोध होना चाहिए। वह क्रोध उनमें इसीलिए है कि उनकी साधना आत्मिक नहीं, केवल नैतिक है। नैतिक साधना के परिणाम में धर्म नहीं आता, यद्यपि धार्मिक साधना के परिणाम में नीति अवश्य आ जाती है।
नैतिक साधना पुण्य की साधना है। धर्म की साधना पुण्य की साधना नहीं है, शुद्धि की साधना है। शुद्धि--पुण्य और पाप से पृथक है। न तो पुण्य पकड़ता है, न पाप जहां पकड़ता है, जहां पुण्य और पाप दोनों पृथक और मैं अनुभव करता हूं कि मैं दोनों से मुक्त और शुद्ध हूं, उस अनुभूति में धर्म का जन्म होता है।
धर्म की साधना शुद्धि की साधना है। नीति की साधना पुण्य की साधना है। नीति की साधना केवल नैतिकता तक ले जा सकती है। धर्म की साधना मुक्ति तक ले जाती है। नैतिक धार्मिक नहीं हो पाता, लेकिन धार्मिक तो अनजाने, अनायास नैतिक हो जाता है।
महावीर कोई नैतिक पुरुष नहीं हैं। बड़े से बड़े लोगों को मैं देखता हूं,
वे लिखते हैं कि महावीर बड़े नैतिक पुरुष हैं! महावीर नैतिक पुरुष नहीं हैं, महावीर आत्मज्ञ हैं। महावीर आत्मा को उपलब्ध पुरुष हैं। नीति तो उसका परिणाम है सहज, अपने आप आ जाती है, उसे लाना नहीं पड़ता।

अगर हम महावीर के इस केंद्रीय विचार को समझें--आत्म-उपलब्धि को--इस पर थोड़ा चिंतन करें, इस पर थोड़ा मनन करें और इस बात को समझें कि चित्त हमारा संसार है। और चित्त को धीरे-धीरे विसर्जित करें, चित्त को धीरे-धीरे विलीन करें, चित्त को धीरे-धीरे शून्य की तरफ ले चलें। एक घड़ी आएगी, चित्त शून्य हो सकता है।
अगर उसके साथ असहयोग करें--जैसा मैंने सुबह कहा, नॉन-कोआपरेशन--अगर चित्त के विचारों के साथ नॉन-कोआपरेशन करें, उसके साथ सहयोग न करें। विचार आते हों, आने दें, आप सहयोग न दें। अपने को दूर खड़ा कर लें, जैसे आप केवल तटस्थ द्रष्टा मात्र हैं। विचार को चलने दें, आप चुपचाप देखते रहें, कोई सहयोग न दें। आपका सहयोग ही विचार की शक्ति है।
वह जो फिल्म पर चित्र चलते हैं, उन्हें देख कर जो आप रोते हैं, चित्र आपको नहीं रुला रहे हैं। आप ही चित्रों से जो अपने को संयुक्त कर रहे हैं, उससे रुदन आ रहा है। अगर आप होश में भरे हों और जानें कि पर्दे पर केवल चित्र हैं, आपका तादात्म्य उनसे न हो, आप तटस्थ द्रष्टा मात्र हों, भोक्ता न हो जाएं, आप उस नाटक के हिस्से न हो जाएं, केवल साक्षी मात्र हों, केवल विटनेस मात्र हों, तो आप हैरान होंगे, चित्र चले जाएंगे पर्दे पर आकर, आप वैसे के वैसे बैठे हैं जैसे बैठे थे। आप में कोई राग, कोई द्वेष उदय नहीं हुआ। आपको कोई रुदन और हास्य नहीं पकड़ा। आप मौन, तटस्थ, द्रष्टा मात्र हैं। जो इस भांति विचार को देखेगा, असहयोग से, तटस्थ द्रष्टा मात्र होकर, वह क्रमशः विचार-मुक्ति को उपलब्ध होता है। जो विचार-मुक्ति को उपलब्ध होता है, वह आत्म-दर्शन कर सकता है।
महावीर एक ही शब्द हैं, एक ही शब्द में उनकी समस्त साधना है, और वह शब्द है--आत्म-दर्शन। उस एक शब्द को जो उपलब्ध हो जाए, वह उसको अनुभव कर पाएगा, किस महत्वपूर्ण, किस वैज्ञानिक सत्य को उन्होंने हमें दिया है। और हम इतना कर रहे हैं कि उनकी रख कर पूजा कर रहे हैं! और उनके ग्रंथों को रख कर सिर पर चल रहे हैं! और उनके शास्त्र-वचनों को दीवालों पर लिख रहे हैं! आश्चर्यजनक है कि हम अपने सदपुरुषों के साथ कैसा अन्याय करते हैं! हम सोचते हैं, हम उनका सम्मान कर रहे हैं! हमारा सब सम्मान उनका अपमान है। क्योंकि मूलतः वे जो कह रहे हैं, हम सब उसके विपरीत कर रहे हैं।
महावीर का सम्मान एक ही बात में है कि आत्म-ज्ञानी बनो। महावीर का स्मरण नहीं। मत करो स्मरण, उससे कोई संबंध नहीं है। अगर आत्म-ज्ञानी बनते हो, तो स्मरण करो या न करो, तुम महावीर के हो गए। और तुम महावीर का लाख स्मरण करो और आत्म-ज्ञानी नहीं बनते, तो तुम महावीर के नहीं हो। जिसको महावीर का होना है, उसे महावीर की फिकर छोड़ देनी चाहिए और उसकी फिकर करनी चाहिए, जो भीतर बैठा है। और जिसने उसकी फिकर छोड़ी, वह महावीर को कितना ही लिए फिरे, वह महावीर का नहीं हो सकता है। इस एक सत्य को हम स्मरण रखें। जगत में जो लोग भी जाग्रत हुए हैं, जिन्होंने अपने को जाना है, उनकी शिक्षा एक छोटी सी बात में है, और वह यही हैः आनंद भीतर है, भीतर लौटें। भीतर लौटने का उपायः चित्त को विसर्जित करें, चित्त के प्रति तटस्थ द्रष्टा बनें, दर्शक बनें।
चित्त लीन, विलीन होगा--आप अपने को जानेंगे, अपना साक्षात करेंगे। और कैसे आनंद की ज्योति वहां अनुभव होगी, कैसे प्रकाश से वहां भर जाएंगे, कैसी घनीभूत शांति में वहां उतर जाएंगे, उसे शब्द में कहने का कोई उपाय नहीं है।
महावीर ने कहा है, उस अनुभूति को कहने के पूर्व शब्द निवृत हो जाते हैं। महावीर ने कहा है, उसे कहने को कोई शब्द नहीं हैं। जिसे निःशब्द में पाया जाता हो, उसे कहने के शक्य कोई शब्द नहीं होते। जिसे चित्त को खोकर पाया जाता हो, उसे कहने का चित्त के द्वारा कोई मार्ग नहीं होता है। मैं उस संबंध में कुछ नहीं कहूं, आज तक कभी किसी ने कोई कुछ कहा नहीं है। लेकिन उस तरफ इशारे किए गए हैं, उस तरफ इंगित किए गए हैं। और महावीर इस जमीन पर, इतिहास में जो बड़े से बड़े इशारे किए गए हैं, उनमें से एक इशारे हैं। उनकी अंगुली उठी है उस सत्य की तरफ। लेकिन हम नासमझ होंगे अगर उस अंगुली की पूजा करने लगें और उस तरफ न देखें जहां के लिए अंगुली उठी है। लोग महावीर

की पूजा कर रहे हैं! महावीर केवल एक इशारे हैं उस आत्म-सत्ता की ओर, जो सबके भीतर विराजमान है।
वहां जापान में एक मंदिर है, उसकी बात कह कर अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।
वहां जापान में एक मंदिर है, उसमें बुद्ध की प्रतिमा नहीं है। उस मंदिर में केवल अंदर एक अंगुली बनी हुई है बुद्ध की, ऊपर एक चांद बना हुआ है। लोग जाकर हैरान होते हैं और लोग जाकर पूछते हैं, यह क्या है? नीचे बुद्ध का एक वचन खुदा हुआ है। बुद्ध ने कहा है, मैंने अंगुली दिखाई है चांद की तरफ, लेकिन मैं जानता हूं कि तुम नासमझ हो, चांद को न देखोगे और मेरी अंगुली की पूजा करोगे।
महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट और कृष्ण इशारे हैं। उनकी पूजा नहीं करनी, उस तरफ देखना है, जिस तरफ वे इशारे हैं। और उस तरफ कोई और नहीं, आप हो। उस तरफ कोई और नहीं, मैं हूं। वह इशारा किसी और की तरफ नहीं, हमारी अंतरात्मा की ओर है।
अगर महावीर जयंती के इस पवित्र स्मरण दिवस पर एक बात आपके विचार में पैदा हो जाए कि भीतर की तरफ देखना है, तो सारा जीवन सार्थक हो सकता है। उसके पूर्व न कोई सार्थकता है, न कोई आनंद है, न कोई शांति है, न कोई जीवन है। उसके पाने के बाद सारा जीवन अमृत में, सच्चिदानंद में परिणत हो जाता है।
मेरी बातों को इतनी प्रीति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, और आशा करता हूं कि आज नहीं कल, वह जो प्रसुप्त है, जागेगा और हम आनंद के, परम जीवन के अनुभव को उपलब्ध हो सकेंगे। पुनः-पुनः आपका आभार।

महावीर या महाविनाश
चौथा प्रवचन

स्वरूप में प्रतिष्ठा

मेरे प्रिय आत्मन्,
मैं देश के कोने-कोने में गया हूं। हजारों आंखों, लाखों आंखों में देखने का मौका मिला है। जैसे मनुष्य को देखता हूं--ऊपर हंसने की, आनंद की, सुख की एक झलक दिखाई पड़ती है, पर पीछे घना दुख, बहुत दुख दिखाई पड़ता है। और इस दुख का परिणाम यह हुआ है, इस दुख का फलित यह हुआ है कि सारी पृथ्वी धीरे- धीरे दुख से भर गई है। यदि एक भी व्यक्ति दुखी है, परिणाम में अपने बाहर दुख को फेंकता है। व्यक्ति का दुख ही फैल कर सारे जगत का दुख हो जाता है। एक व्यक्ति के भीतर से जो दुख का धुआं उठता है, वह सारी समष्टि को दुख और पीड़ा से भर देता है। आज जो सारे जगत में दुख, पीड़ा और हिंसा मालूम होती है, वह जो विनाश के प्रति इतनी आकांक्षा मालूम होती है, जो विनाश के प्रति इतनी आकांक्षा मालूम होती है, उसके पीछे एक ही कारण है, व्यक्ति की अंतरात्मा दुखी है।
मैं यदि दुखी हूं, तो मैं किसी को भी दुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे सकता। मेरे भीतर जो है, वही मेरे बाहर, मेरे आचरण में, मेरे व्यवहार में फैल जाता है। मेरे भीतर केंद्र पर जो है, वही मेरी परिधि पर आ जाता है। ढाई अरब लोग अगर भीतर दुख और पीड़ा से भरे हों, तो परिणाम में स्वाभाविक है कि सारा जगत दुख और पीड़ा से भर जाए। परिणाम में स्वाभाविक है कि सारे जगत में हिंसा और विनाश दिखाई पड़े।
पिछले पचास वर्षों में दो महायुद्ध हमने लड़े। दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हत्या हुई। इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता और न मैं इससे बहुत हैरान हूं कि दस करोड़ लोग मरे। इस जगत में जो पैदा होता है, मर जाता है। हैरानी इस बात की है कि हम दस करोड़ लोगों को शांति से समाप्त कर सके। उनके मरने का प्रश्न नहीं है। वे दिन, दो दिन बाद मर जाने को थे। कोई भी जीएगा नहीं, लेकिन हम ये सभी दस करोड़ लोगों की हत्या शांति से कर सके, यह बहुत विचारणीय है। हमारे भीतर पशु इतना जाग्रत कैसे हो गया? हमारे भीतर निकृष्टतम, हमारे भीतर अंधेरा इतना मुखर क्यों हो गया? मनुष्य को क्या हो गया है, यह विचारणीय हो गया है। और अब, जब कि हम तीसरे विनाश की तैयारी में हों, जो कि संभवतः अंतिम विनाश होगा।
आइंस्टीन ने मरने के पहले कहा था--किसी ने पूछा था, तीसरे महायुद्ध में किन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होगा? आइंस्टीन ने कहा, तीसरे का तो मुझे पता नहीं, लेकिन चौथे के बाबत मुझे मालूम है। पूछने वाला हैरान हुआ होगा। तीसरे के बाबत ज्ञात नहीं है, चौथे के बाबत क्या ज्ञात है! उसने पूछा, क्या ज्ञात है? आइंस्टीन ने कहा, अगर चौथा महायुद्ध हुआ, जिसकी कोई संभावना नहीं है, तो आदमी पत्थर के औजारों से लड़ेगा। क्योंकि तीसरा उसके सारे विकास को, उसकी सारी समृद्धि को समाप्त कर देगा। संभावना तो इसकी है कि उसको परिपूर्णतया नष्ट कर दे।
जो हिंसा और जिस हिंसा के प्रति महावीर और बुद्ध ने और ईसा ने चेताया था--हिंसा की अंतिम परिणति महामृत्यु हो सकती है, और कुछ नहीं। वह हिंसा धीमी थी, अल्प थी, चलती गई। उस हिंसा के कारण जीवन नहीं चल रहा था, हिंसा टोटल नहीं थी, हिंसा आंशिक थी, शेष अहिंसा थी जीवन में। इसलिए हिंसा के साथ भी मनुष्य चलता रहा।
पहली बार हम ऐसे स्थान पर आए हैं, जहां हिंसा टोटल हो सकती है, जहां हिंसा समग्र हो सकती है। समग्र हिंसा के बाद जीवन की कोई संभावना नहीं है। हिंसा पूर्ण हो जाए, स्वयं अपना आत्मघात कर लेती है। वे हिंसक प्रवृत्तियां, जिनका सारे धर्मों ने विरोध किया है, विशेषतया श्रमण धर्मों ने जिस हिंसा के लिए पच्चीस सौ वर्ष पहले आवाज उठाई थी, वह भविष्यवाणी पूरे होने के करीब पहुंच रही है। जो आने वाला संभावी युद्ध होगा, वह किसी तरह के प्राण को जमीन पर नहीं बचने देगा।

मैं पढ़ता था, मैंने सुना, पानी को हम गर्म करते हैं, सौ डिग्री पर पानी भाप हो जाता है। लोहे को अगर गरम करें, पंद्रह सौ डिग्री पर लोहा पिघल कर पानी हो जाता है। पच्चीस सौ डिग्री पर लोहे का जो पानी तरल रूप है, वह भाप बन कर उड़ जाता है। एक हाइड्रोजन बम कितनी गर्मी पैदा करेगा, आपको ज्ञात है? दस करोड़ डिग्री! पच्चीस सौ डिग्री पर लोहा भाप होकर उड़ जाता है। एक हाइड्रोजन बम दस करोड़ डिग्री गर्मी पैदा करेगा! क्या बचेगा उस उष्णता में? उस उत्तप्त में ऐसा प्रतीत होगा, जैसे सूरज जमीन पर उतर आया हो। किसी तरह के जीवन की कोई संभावना न रह जाएगी।
एक हाइड्रोजन बम पैंतालीस हजार वर्गमील क्षेत्र को प्रभावित करता है। इंग्लैंड, फ्रांस या पश्चिमी जर्मनी जैसे देश को नष्ट करने को केवल पंद्रह हाइड्रोजन बम पर्याप्त हैं। और आपको ज्ञात है, सारी दुनिया में इस समय तैयार हाइड्रोजन बम की संख्या पचास हजार है। ये पचास हजार हाइड्रोजन बम इस तरह की तीन जमीनों को नष्ट करने को पर्याप्त हैं।
और प्रति घंटा--मैं घंटे भर बोलूंगा--प्रति घंटा पचास करोड़ रुपया इस तरह के विनाशक अस्त्रों को तैयार करने में सारी दुनिया में खर्च हो रहा है! प्रति घंटा! दो घंटे में एक अरब रुपया! चौबीस घंटे में बारह अरब रुपया! जब कि हर तीन आदमियों में दो आदमी भूखे हैं! जब कि हर तीन आदमियों में पूरी जमीन पर दो आदमी नंगे हैं! तो हम जरूर कुछ पागल हो गए हैं। हम जरूर विक्षिप्त हो गए हैं। ये सभी होश में नहीं हैं। हम कुछ नशे में हैं और जैसे हमें कुछ पता नहीं हम क्या कर रहे हैं! हमारे हाथ हमारी मौत का आयोजन कर रहे हैं, इसमें हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है!
एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं--एक बिल्कुल काल्पनिक कहानी, कहीं सुना था, फिर बहुत प्रीतिकर लगी।
ईश्वर ने यह देख कर कि मनुष्य को यह क्या हुआ जा रहा है, यह मनुष्य अपने हाथ से अपनी मृत्यु के आयोजन में इतना उत्सुक क्यों हो गया है, दुनिया के तीन बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को अपने पास बुलाया। मैंने कहा, कहानी काल्पनिक है, झूठी; कहीं कोई ईश्वर ऐसा बुलाने को नहीं है, पर कहानी में एक सत्य बहुत उभर कर जाहिर हुआ है। उसमें अमरीका को, ब्रिटेन को, रूस को बुलाया था। इन मुल्कों के प्रतिनिधि उससे मिलने गए थे। ईश्वर ने कहा, मेरे मित्र! बहुत सदियां देखीं। मनुष्य का लंबा इतिहास देखा। इतना विक्षिप्त--इतनी समृद्धि के बीच, इतनी शक्ति के बीच, अपने को ही आत्मघात करने वाला कोई जमाना मैंने नहीं देखा है! मैं हैरान हूं, तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारे किए का अंतिम परिणति और परिणाम क्या होगा? अगर मैं कुछ सहायक हो सकूं और मनुष्य बच सके, तो मुझसे वरदान मांग लो। मैं अगर मनुष्य के भविष्य के लिए कुछ कर सकूं, तो वरदान देने को तैयार हूं। तुम तीनों मांग लो तीन वरदान। मनुष्य बच जाए, यही मेरी आकांक्षा है।
अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, मेरे मालिक! इससे सुखद और क्या होगा, एक वरदान दे दें। और हमें कुछ भी नहीं चाहिए, एक ही आकांक्षा है हमारीः जमीन तो हो, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाए। ईश्वर ने वरदान दिए होंगे बहुत, बहुत मांगें पूरी की होंगी, ऐसी मांग कभी उसके सामने आई नहीं थी। उसने उदास घूम कर रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा। वह बोला, महानुभाव! एक तो हमें आप पर कोई विश्वास नहीं है। एक तो हम नहीं मानते कि कहीं कोई ईश्वर है। लेकिन मान लेंगे तुम्हें भी और उन चर्चों में जहां से तुम्हारे सब निशान मिटा दिए गए हैं, वापस तुम्हें प्रतिष्ठित कर देंगे, एक बात, एक आकांक्षा पूरी हो जाए। ईश्वर ने पूछा, कौन सी आकांक्षा? रूस के प्रतिनिधि ने कहा, नक्शे तो हों जमीन पर, नक्शे तो हों दुनिया के, अमरीका के लिए कोई रंग-रेखा न रह जाए। ईश्वर ने घूम कर ब्रिटेन को देखा। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने कहा, मेरे प्रभु! हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं, इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी हो जाएं, हमारी आकांक्षा पूरी हो जाएगी।
ऐसी सदी को होश में कहिएगा? ऐसे मनुष्य को जागा हुआ कहिएगा? ऐसे युग
को स्वस्थ कहिएगा? विक्षिप्त है यह युग। और इस सत्य को हम जितना शीघ्र समझ लें, उतना उचित है, अन्यथा अपने ही विक्षिप्त आयोजन हमारी मृत्यु बन जा सकते हैं। यह विक्षिप्तता कैसे पैदा हो गई है? यह पागलपन कैसे आ गया? और क्या ऊपर का कोई उपचार और अहिंसा पर दिए गए प्रवचन और अहिंसा पर लिखा गया

साहित्य और अहिंसा के पक्ष में बोली गई बातें इस विक्षिप्तता को तोड़ सकेंगी?
यह विक्षिप्तता टूट जानी इतनी आसान नहीं है। यह विक्षिप्तता ऊपर से आरोपित नहीं है, यह विक्षिप्तता कहीं भीतर से विकसित हुई है। इस विक्षिप्तता की कहीं मनुष्य के मन में, बुनियाद में जड़ें हैं। मनुष्य की प्रकृति में कुछ है, जहां से यह विक्षिप्तता फैलती और विकसित होती है। जब तक उसकी प्रकृति में परिवर्तन करने का विचार, विवेक, जागृति पैदा न हो, जब तक उसकी प्रकृति में जो पशु है, उसके विनाश का कोई आयोजन न हो, तब तक मनुष्य के भीतर प्रकाश को और प्रभु को पैदा नहीं किया जा सकता। मनुष्य यूं ही हिंसक नहीं है। उसके पीछे हिंसा में उसके चित्त में जड़ें हैं, उन जड़ों को अलग कर देना जरूरी है, तो हम एक अहिंसक मनुष्य का निर्माण कर सकते हैं। अहिंसक मनुष्य का निर्माण ही इस जगत के लिए एकमात्र त्राण हो सकता है। महावीर ने कहा था, अहिंसा एकमात्र त्राण है। यह बात इतनी सच कभी भी नहीं थी। यह बात पहली बार परिपूर्ण सत्य हुई है। अहिंसा के अतिरिक्त आज कोई मार्ग नहीं है। मैं अभी कहा एक जगहः महावीर या महाविनाश, दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।
पहली बार इतिहास ने हमें ऐसी जगह लाकर खड़ा कर दिया, जहां महावीर और उनकी अहिंसा एकमात्र जीवन का पर्याय बन गई है। हिंसा को चुनना अब मृत्यु को चुनना है। अब हिंसा और मृत्यु में कोई फासला और फर्क नहीं है। अब अहिंसा को चुनना जीवन को चुनना है। वे लोग जो जीवन चाहते हैं, वे लोग जो जीवन का भविष्य चाहते हैं, उन्हें अहिंसा को अपने में जन्माए बिना कोई चारा नहीं है।
इस अहिंसा पर क्या हम करें? कैसे यह पैदा हो जाए? कहां है मनुष्य में हिंसा की जड़? कहां है मनुष्य में वह प्यास और वह सुख, जो दूसरे को पीड़ा और दूसरे के विनाश से तृप्त होता है? कौन है मनुष्य के भीतर ऐसा भूखा, जो दूसरे के विनाश में रस लेता है? उसे पहचानना, उस भूख को पकड़ लेना जरूरी है। मनुष्य पूर्ण इकाई नहीं है। मनुष्य परिपूर्ण विकसित प्राणी नहीं है। मनुष्य केवल संक्रमण है। मनुष्य केवल बीच की एक कड़ी है--पशु और प्रभु के बीच। मनुष्य के भीतर दोनों संभावनाएं हैं--नीचे गिर कर पशु हो सकता है, ऊपर उठ कर प्रभु हो सकता है। और इसे मैं मनुष्य की गरिमा और गौरव मानता हूं। मैं अभी कहा एक जगह, मैंने लोगों से कहा कि तुम पाप कर सकते हो, यह तुम्हारी गरिमा है, यह तुम्हारा गौरव है। तुम पाप कर सकते हो, इसलिए तुम पवित्र भी हो सकते हो। जो पाप नहीं कर सकता, पवित्र भी नहीं हो सकता। तुम आत्मघात कर सकते हो... । दुनिया में कोई पशु मनुष्य के सिवाय आत्मघात नहीं कर सकता। कहीं स्युसाइड नहीं हो सकती मनुष्य को छोड़ कर। अकेला मनुष्य आत्महत्या कर सकता है।
मैं मानता हूं कि गौरवशील हो कि आत्महत्या कर सकते हो, क्योंकि जो आत्महत्या कर सकता है, वह परिपूर्ण जीवन पा सकता है। जो नीचे गिर सकता है गहराइयों में, अंधेरे की गर्तों में, और पाप की और नरक की सड़ांध में, वही केवल पवित्रता के धवल शिखरों को छू सकता है। नीचे गिरने की हमारी क्षमता हमारे स्वातंष्य की महिमा का प्रतीक है।
इसलिए मैं यह नहीं कहता कि नीचे गिर जाने की क्षमता बुरी है। वह केवल स्वातंष्य है, चुनाव की बात है। मनुष्य अकेला प्राणी है सारी जमीन पर, जो अपने जीवन के निर्माण के लिए स्वतंत्र है। इतना स्वतंत्र है कि निम्नतम हो सकता है, इतना स्वतंत्र है कि श्रेष्ठतम हो सकता है। मनुष्य केवल एक संक्रमण है, सारे पशु पूर्ण इकाइयां हैं। किसी पशु में पशुता के ऊपर उठने की क्षमता नहीं है, किसी पशु में पशुता के नीचे गिरने की क्षमता भी नहीं है। वह थिर इकाई है, रुकी हुई। प्रवाहमान नहीं, तरल नहीं। मनुष्य तरल इकाई है। मनुष्य तरलता है, लिक्विडिटी है। उसके भीतर प्रवाह की, नीचे-ऊपर उठने की क्षमता है।
और यह हमारे हाथ में है, यह हमारे संकल्प पर निर्भर है कि यह प्रवाह क्या दिशा ले।
पिछली कुछ सदियों ने मनुष्य की श्रेष्ठतम दिशा को खंडित कर दिया है।
सारे पुराने प्रतिमान, सारी पुरानी प्रतिमाएं खंडित हो गई हैं। हम बहुत

मूर्ति-भंजक हैं। मंदिरों की मूर्तियां टूट जाएं, कुछ नुकसान नहीं होगा। मनुष्य के जीवन की वह प्रतिमा, जिसे उसे पाना है, टूट जाए तो जीवन नष्ट हो जाएगा। हम इस अर्थ में मूर्ति-भंजक हैं। हमने सारी पुरानी प्रतिमाएं तोड़ दीं, जो हम होने की आकांक्षा करते थे। महावीर और बुद्ध और राम, वे सारी प्रतिमाएं हमारी आंखों से हट गई हैं। हम जो हैं, उस पर तृप्त हो गए हैं। जो तृप्त हो जाएगा, मर जाएगा। जो तृप्त हो जाएगा और समझ लेगा हम जो हैं, काफी हैं, और ऊपर उठने की आकांक्षा और प्यास जहां विलीन हो गई, वहीं मृत्यु है। पिछले दो-तीन सौ वर्षों में हम निरंतर मरते चले गए हैं। मनुष्य मनुष्य होने से तृप्त हो गया है। मनुष्य का मनुष्य से तृप्त हो जाना ही उसकी भूल और भ्रांति है। इस सदी का सारा दुख यह है, इस सदी की सारी विकृति इससे पैदा हुई है, मनुष्य मनुष्य होने से तृप्त हो गया है।
मैं आपको तृप्त हुआ नहीं देखना चाहता। मैं किसी को नहीं कहता, तृप्त
हो जाओ, संतुष्ट हो जाओ। मैं कहता हूं, जलने दो अतृप्ति की आग। मनुष्य से तृप्त मत होना। और बड़े आश्चर्य का नियम यह है, इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है। जो आगे बढ़ने से रुक जाएगा, वह रुका नहीं रहेगा, प्रवाह उसे पीछे फेंक देता है। जो आगे नहीं बढ़ रहा है, वह पीछे सरकता चला जाएगा। इस जगत में थिर कुछ नहीं है। जेम्स जीन्स ने एक बात कही थी, कि मैंने सारे शब्दकोश के अध्ययन के बाद अनुभव कियाः रेस्ट, टिकाव, ठहराव, थिरता, इस शब्द की वास्तविकता जगत में कहीं भी नहीं है। कहीं कोई चीज थिर नहीं है। जो विकासमान नहीं है, ह्नासमान हो जाएगा। जो आगे नहीं बढ़ रहा है, पीछे हट जाएगा। ठहर नहीं सकते हैं।
जिस दिन हमने मनुष्य के ऊपर भावी प्रतिमाओं को अलग कर दिया, जिस दिन मनुष्य के भीतर आदर्श को विसर्जित कर दिया, जिस दिन हमारे भीतर वह आकांक्षा, जो प्रत्येक को महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट बनाना चाहती थी, विलीन हो गई, धूमिल हो गई, उसी दिन हम पशु की तरफ पीछे हटने शुरू हो गए। प्रभु की प्रतिमा हटेगी आंख से, अनिवार्यतया पशु की प्रतिमा उसकी जगह प्रतिष्ठित हो जाती है। ईश्वर को छोड़ने से कुछ हर्ज न था, लेकिन मंदिर रिक्त नहीं रहता। जिस सिंहासन पर से ईश्वर को उतार लिया, वहां कब रात के अंधेरे में पशु बैठ गया, इसका पता नहीं पड़ता है।
मैं इससे दुखी नहीं हूं कि हम ईश्वर को अस्वीकार कर दें--कर दें, लेकिन
यह तो स्मरण रखें कि सिंहासन पर फिर कौन विराजमान हो गया है। और हमारे पूजा करने वाले हाथ, जो बहुत पुराने आदी हैं, अंधे की तरह पशु की पूजा में संलग्न हो गए हैं!
ईश्वर को अस्वीकार केवल वही कर सकता है, जो ईश्वर के जैसा हो, उसके पहले नहीं। धर्म को अस्वीकार वही कर सकता है, जो धर्म को उपलब्ध हो जाए, उसके पहले नहीं। अन्यथा विपरीत प्रतिष्ठित हो जाता है। मनुष्य के भीतर दोनों हैं--मनुष्य के भीतर दोनों हैं।
एक कहानी कहूं। पढ़ता था एक चित्रकार के बाबत। एक चित्र उसने बनाना चाहा था मनुष्य के भीतर दिव्य का, डिवाइन का। गया था खोज में। खोज लिया था एक व्यक्ति को, जिसकी आंखों में आकाश के जैसी नीली शांति थी। जिसके नक्श में, जिसकी रेखा-रेखा में कुछ था अलौकिक, संवेदित, जिसको देख कर लगता था कि मनुष्य के ऊपर का कुछ प्रकट हुआ। उसने उसके चित्र को बनाया। चित्र बना, पूरा हुआ, लाखों प्रतिलिपियां बिकीं। गांव-गांव, उसके देश के गांव-गांव में पहुंच गया, प्रतिष्ठित हुआ, आदृत हुआ। बहुत हुई थी प्रशंसा।
बीस वर्ष बाद उस चित्रकार ने दूसरा चित्र बनाना चाहा था, मनुष्य के भीतर जो पशु है उसका। सोचा था, यूं मनुष्य की तस्वीर पूरी हो जाएगी इन दो चित्रों में। गया था खोजने वेश्यालयों में, कारागृहों में, पागलखानों में। और खोज लिया था आखिर एक कारागृह में एक व्यक्ति को, जिसकी आंख तो आदमी की थी, लेकिन जो झांकता था भीतर से, वह पशु था। जिसका चेहरा तो आदमी का था, लेकिन पारदर्शी था चेहरा और पीछे कोई खूंखार बैठा हुआ था। चित्र को बनाया। दूसरा चित्र भी बन कर जिस दिन पूरा हुआ था, एक घटना घटी बहुमूल्य, स्मरणीय।
अपने पुराने चित्र को लेकर गया था कारागृह में, दोनों को रख कर करीब
यह देखने, कौन सी कृति श्रेष्ठ बनी है! मंत्रमुग्ध होकर देख रहा था, तय

करना मुश्किल था, कौन सा चित्र ठीक बना! तभी पीछे कैदी रोने लगा था, जिसका चित्र उसने दूसरा बनाया था। लौट कर देखा था। कहा, मित्र! मेरे चित्रों से तुम्हें दुख का कारण? तुम्हारे आंसू का कारण? तुम क्यों रोते हो? उस कैदी ने कहा, इतने दिन कितनी मुश्किल से अपने भाव को छिपाया, आज मुश्किल हो गया। पहला चित्र भी मेरा ही चित्र है। बीस वर्ष पहले मेरे ही चेहरे और आंखों को देख कर पहला चित्र बनाया था। दोनों चित्र मेरे हैं, इसलिए रोता हूं। कहानी बहुत काल्पनिक सी लगती है, काल्पनिक नहीं है। और काल्पनिक भी
हो तो भी प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में सत्य है। ये चित्र उस आदमी के ही नहीं थे दोनों, ये हमारे भी दोनों हैं। ये प्रत्येक के दोनों हैं। जो भी आदमी इस जमीन पर है, उसके भीतर दोनों छिपे हैं। उसके भीतर दोनों विराजमान हैं। उसके भीतर दोनों के बीच निरंतर संघर्ष, निरंतर दोनों किनारों के बीच आदमी टकराता रहता है।
कभी देखना, कभी विचार करना, कभी होश से भरना, घड़ी भर पहले तुम्हारे भीतर हो सकता है प्रभु रहा हो, घड़ी भर बाद हो सकता है कि पशु विराजमान है। कितनी तीव्रता से हम इन दोनों तटों के बीच घूमते रहते हैं! और अगर प्रभु की धारणा ही विलीन हो जाए, अगर आत्मिक जीवन में बैठने की, उठने की आकांक्षा विलीन हो जाए, तो फिर हम पशु के तट पर लगे रह जाते हैं। हमारी नौका वहीं लगी रह जाती है। फिर स्वाभाविक है, जब कि एक-एक आदमी के भीतर का पशु ही केवल प्रवृत्तिमान होता हो, जब कि पशु को तृप्त करना ही जीवन रह गया हो, तो स्वाभाविक है कि ढाई अरब पशुओं का इकट्ठा संघर्षण, ढाई अरब पशुओं की इकट्ठी विकृत आकांक्षाएं सारी संस्कृति की मृत्यु बन जाएं।
कहां हम स्वप्न देखे थे मनुष्य के भीतर परम शक्ति के जागरण का और कहां निकृष्ट को उपलब्ध करके बैठ गए हैं! कहां बुद्ध, कहां महावीर, कहां क्राइस्ट, जो कहते हैं, तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है! और कहां हम, जो भीतर झांक कर देखते हैं तो सिवाय पशु की आहट के, उसके चलने के कुछ भी वहां नहीं पाते!
मेरा मानना है, अहिंसा ऊपर से शिक्षित नहीं की जा सकती। हिंसा हमारे पशु की प्रकृति का सहज परिणाम है। जब तक हम पशु के तट से बंधे हैं, तब तक सहज परिणाम हिंसा होगी। लाख चेष्टा ऊपर से आरोपित करने की व्यर्थ है। अहिंसा का अभिनय हो सकेगा, अहिंसक नहीं हुआ जा सकता। अहिंसक होना हो, क्रियाएं नहीं बदलनी हैं, भीतर चैतन्य का तट बदलना होगा। लाख उपाय करें, उसी तट पर बंधे हुए कहीं पहुंचना न होगा।
सुनता था, एक साधु नदी पर नहाने उतरा था। सुबह भोर होने के करीब थी और थोड़ा-थोड़ा प्रकाश हो गया था। सूरज निकलने के करीब था, प्राची लाल हो गई थी। देखा उस पार उसने, चार व्यक्ति एक नाव में बैठ कर जोर से डांड चला रहे हैं। नाव वहीं की वहीं खड़ी है, डांड चलाए जा रहे हैं। वह तैर कर पास गया, देखा, नाव की जंजीर तट से बंधी थी!
उसने पूछा, मित्र कहां जा रहे हो? वे चारों नशे में थे और रात नशे में आकर नाव चलाना शुरू कर दिए थे। रात भर इस ख्याल में रहे कि बहुत यात्रा हो रही है। उस साधु ने उनसे कहा, पागल हो! यह तो देख लेते पहले कि नाव तट से छोड़ी भी या नहीं? जंजीर तो वहीं बंधी है, तो डांड खेने से कुछ भी न होगा! ऊपर सारे कर्म अहिंसक होने के, उन नशेखोर नाविकों जैसे हैं। भीतर उस
तट से जंजीर छूटी या नहीं? और जंजीर छूट जाए, भीतर तट परिवर्तित हो जाए, भीतर चैतन्य का केंद्र परिवर्तित हो जाए, तो जैसा पशु के तट से बंधे हुए हिंसा सहज बाहर निकलती है, आचरण हिंसक हो जाता है, वैसे ही तट-परिवर्तन से, चेतना के परिवर्तन से अहिंसा सहज निकलती है।
महावीर ने कहा है--अदभुत परिभाषा की है अहिंसा की--कहा है, स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना अहिंसा है।
अहिंसा का कोई संबंध ही दूसरे से नहीं है। जो कहते हैं, दूसरे को दुख न देना अहिंसा है, नासमझ हैं। दूसरे से कोई वास्ता अहिंसा का नहीं। स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना अहिंसा है, स्वरूप के बाहर होना हिंसा है। जो स्वरूप के बाहर है, कुछ भी करे--कुछ भी करे, सबमें हिंसा प्रवाहित होगी। जो स्वरूप में प्रतिष्ठित है, कुछ भी करे, सबमें अहिंसा प्रवाहित होगी। अहिंसा क्रिया का परिवर्तन नहीं, डूइंग का परिवर्तन नहीं, बीइंग का, सत्ता

का, होने का परिवर्तन है। जिसकी सत्ता परिवर्तित होगी और तट बदल जाएगा, उसके जीवन में सहज, सहज अहिंसा प्रतिफलित हो जाती है।
अहिंसा साधना नहीं है। कोई अहिंसा को साध नहीं सकता। साधना आत्म-ज्ञान को पड़ता है। अहिंसा अपने आप चली आती है, जैसे पौधों में फूल चले आते हैं। अहिंसा सहज परिणाम है, कांसीक्वेंस है, साधना नहीं है। अहिंसा परम धर्म का अर्थ यही है कि जब जीवन में आत्म-ज्ञान उपलब्ध होता है अंतिम परिणति में, परम धर्म की तरह, परम विकास, विकसित फूल की तरह अहिंसा आ जाती है। अहिंसा को लाना नहीं होता, अहिंसा आती है। लाना होता है स्व-स्थिति को, लाना होता है स्व-स्थिति को।
अहिंसा के संबंध में सबसे भ्रांत जो धारणा व्यापक है, वह यह है कि हम अहिंसा को एक नैतिक उपकरण, एक नैतिक साधना समझते हैं। अहिंसा नैतिक साधना नहीं है। और नैतिक साधक की अहिंसा में और महावीर की अहिंसा में जमीन-आसमान का अंतर है। नैतिक साधक यह सोच-सोच कर कि दूसरे को दुख देना बुरा है, अहिंसक होने की चेष्टा करता है। इस तरह जो चेष्टित, कल्टीवेटेड अहिंसा है, वह कृत्रिम है, थोथी है, बाह्य है।
महावीर की अहिंसा नैतिक अहिंसा नहीं है। महावीर की अहिंसा यौगिक अहिंसा है। महावीर का मानना है, स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाओ, स्वयं ज्ञान को उपलब्ध। तुम पाओगे, बाहर दूसरे को दुख देना असंभव हो गया। क्योंकि जिसके भीतर दुख नहीं है, वह दूसरे को दुख नहीं दे सकता है। जिसके भीतर आत्म-ज्ञान का प्रकाश और आनंद उपलब्ध हो गया, अनायास उससे आनंद ही बहेगा, प्रकाश ही बहेगा। कोई रास्ता न रहा कि उसके भीतर से आनंद के विपरीत कुछ बह जाए।
सच, अगर विचार करें, हम दूसरे को इसलिए दुख दे पाते हैं कि हम दुखी हैं। हम दूसरे के प्रति इसलिए हिंसक हो पाते हैं कि हम अपने प्रति हिंसक हैं और भीतर हिंसा से भरे हैं। दूसरे का प्रश्न नहीं है, अंततः अहिंसा का प्रश्न वैयक्तिक जागरण का प्रश्न है। मनुष्य अपने भीतर जाग जाए और उसे अनुभव कर ले, जो वहां बैठा है, हिंसा विसर्जित हो जाती है।
वहां पश्चिम ने पदार्थ के विश्लेषण, पदार्थ के खंडन, पदार्थ के आंतरिक रहस्य की खोज के द्वारा अणु को उपलब्ध किया है। अणु को उपलब्ध करके पाया कि विराट शक्ति हाथ में आ गई। विनाश की अदभुत शक्ति पर नियंत्रण हो गया है। पूरब ने भी प्रयोग किए। पश्चिम ने पदार्थ की सत्ता पर प्रयोग किए, पूरब ने मनुष्य की चेतना की सत्ता पर प्रयोग किए। महावीर का प्रयोग मनुष्य की चेतन सत्ता के विश्लेषण का प्रयोग है।
पदार्थ के विश्लेषण से उपलब्ध हुआ है अणु, मनुष्य की चेतना के विश्लेषण से उपलब्ध हुई है आत्मा।
पदार्थ के विश्लेषण से जो अणु उपलब्ध हुआ, वह विनाशक साबित हुआ। पदार्थ की सब शक्तियां अंधी हैं। और अंधों के हाथ में आ जाएं, तो परिणाम बुरे होने स्वाभाविक हैं। चैतन्य के विश्लेषण से, चैतन्य के जागरण से, चैतन्य में उतरने से जो उपलब्ध हुई आत्मा, वह सारे जीवन को, सारे दृष्टिकोण को बदल देती है।
महावीर ने कहा है, केवल वही अहिंसक हो सकता है, जो अभय को उपलब्ध हो।
अभय को कौन उपलब्ध होगा? जो आत्म-ज्ञानी नहीं है वह अभय को उपलब्ध हो सकता है? कोई भय को जबरदस्ती निकाल कर अभय को पा सकता है?
असंभव है, असंभव है। कोई भय को निकाल नहीं सकता। भय है मृत्यु का। अंतिम भय के पीछे मृत्यु बैठी हुई है। प्रतिक्षण चारों तरफ से जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है। जब तक अमृत न दिख जाए, जब तक यह न दिख जाए कि मेरे भीतर कोई है जो नहीं मरेगा, नहीं मर सकता है, तब तक व्यक्ति अभय को उपलब्ध नहीं होता है। जब तक हम मर्त्य से घिरे हैं, जब तक हम जानते हैं कि जो भी हमारे आस-पास है, सब मृत्यु में समा जाएगा... ।
और मैं तो कहने लगा, जीवन हमारे पास है ही नहीं, हम तो प्रतिक्षण मर ही रहे हैं। मृत्यु अनायास थोड़े ही एक दिन घटित हो जाती है। जीवन में सब विकास होता है। जिस दिन हम जन्मे, उसी दिन मृत्यु शुरू हो गई। जिस दिन जन्म हुआ, उसी दिन मरना शुरू हो गया। जिसको हम मृत्यु कहते हैं, वह उसी मरण की शुरुआत की अंतिम पूर्णाहुति है। कोई अचानक थोड़े ही मर जाता है। अचानक इस

जगत में कुछ भी नहीं होता है। हम प्रतिक्षण मर रहे हैं। हम प्रतिक्षण मरते जा रहे हैं, हमारा सब मरता चला जा रहा है, हम प्रतिक्षण अंधेरे में और मृत्यु में दबे जा रहे हैं। इस मृत्यु में और अंधेरे में दबता हुआ व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो सकता है? कोई तलवार अभय न देगी। और जो हाथ में तलवार लिए खड़े हैं, वे भयभीत हैं, तलवार केवल इसकी ही सूचना देती है। किसी दिन शायद वक्त आए कि जिनकी तलवार हाथ में लिए हम तस्वीरें और मूर्तियां बना रहे हैं, लोग हंसें और समझें कि बहुत कमजोर, बहुत भयभीत रहे होंगे। जो भयभीत नहीं है, उसके हाथ में तलवार होने का कोई कारण नहीं है। जिनको हम बहादुर कहते हैं, वह केवल भय की ही एक परिणति है, भय का ही एक रूप है। मर्त्य के बोध के भीतर अभय असंभव है। जो मरने से डरा हो, जिसे मृत्यु दिख रही हो... और मैंने कहा कि हमारा सब तो मरण के करीब पहुंच रहा है। हमारे पास कुछ भी तो नहीं है, जो न मर जाएगा।
नानक एक गांव में ठहरे हुए थे, लाहौर में। एक व्यक्ति उनके पास बहुत बार आया, वर्षों आया। उसने अनेक बार नानक से कहा, मेरे सेवा योग्य कुछ मिल जाए, मैं कुछ आपकी सेवा कर सकूं। नानक टालते गए कि मुझे तो कोई जरूरत नहीं, तुम्हारा प्रेम है, पर्याप्त है। प्रभु ने सब दिया है। एक दिन नानक ने कहा, तुम बहुत बार कहे, आज तुम्हारे लिए काम खोज लिया है। अपने कपड़े में छिपा रखी थी एक सुई कपड़े को सीने की, उस व्यक्ति को दी, इसे रख लो, मृत्यु के बाद मुझे वापस कर देना। काम खोजा ऐसा खोजा!
वह आदमी घबड़ाया, एक क्षण सोचा, मृत्यु के बाद वापस कर देना? जब मृत्यु होगी तो मुट्ठी तो बंधी रह जाएगी सुई पर, लेकिन सुई साथ नहीं जा सकती है। रात भर चिंतित रहा, सुबह आकर नानक के पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि क्षमा कर दें। मेरी कोई समृद्धि, मेरी कोई सामर्थ्य, मेरी कोई शक्ति मृत्यु के पार इस सुई को नहीं ले जा सकती। नानक ने पूछा, फिर तुम्हारे पास क्या है जिसे मृत्यु के पार ले जा सकते हो?
और क्या यही प्रश्न मैं आपसे न पूछूं? और क्या यही प्रश्न प्रत्येक को सारे जगत में अपने से नहीं पूछ लेना है? एक न एक दिन क्या यह प्रश्न मृत्यु के वक्त खड़ा न हो जाएगा कि क्या है मेरे पास जो मैं ले जा सकता हूं? जिसके पास मृत्यु के पार ले जाने को कुछ भी नहीं है, वह अभय को कैसे उपलब्ध होगा? जिसे यह भी पक्का नहीं कि मैं भी बचूंगा उन लपटों के पार या नहीं, वह कैसे अभय को उपलब्ध होगा? जिसके पैर के नीचे सारी जमीन खिसकी जाती हो, जिसकी सारी मुट्ठियों की पकड़ किसी चीज को पकड़ाए न रखेगी, जिसके सब सहारे डूब जाएंगे, और मझधार में जिसकी नौका डूबनी ही है और कोई तट और किनारा जिसे न दिखता हो, वह कैसे अभय को उपलब्ध हो?
आत्म-ज्ञान के बिना अभय असंभव है।
महावीर ने कहा, जो अभय को उपलब्ध है, वही केवल अहिंसक हो सकता है। और अदभुत शर्त लगा दी, और उस शर्त में सारा भय इकट्ठा कर दिया। आत्म-ज्ञानी ही अभय को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि जो अपने को जानता है वह जानता है कि मृत्यु नहीं है। सब मरेगा, मैं नहीं मर सकता हूं। सब विसर्जित हो जाएगा, सब मिट जाएगा, भीतर जो चैतन्य सत्ता बैठी हुई है, उसकी मृत्यु नहीं है। जिस क्षण यह दर्शन होता है, जिस क्षण इस अमृत का दर्शन होता है, उसी क्षण जीवन से भय विलीन हो जाता है। जिसका स्वयं का भय विलीन हो गया, वह अहिंसक हो जाता है, वह हिंसक नहीं रह जाता है। अहिंसक होने की सीढ़ी, अहिंसक होने का मार्ग आत्म-ज्ञान का मार्ग है।
अपने को जानना होगा, अपने से परिचित होना होगा। सारे जगत को जानें और अपने से अपरिचित, दो कौड़ी का है ज्ञान फिर। उसका कोई मूल्य नहीं है। मैं सारी दुनिया को जान लूं और मेरे भीतर अंधेरा घना हो--इस जानने का क्या होगा? क्या है प्रयोजन? क्या हुआ अर्थ? क्या पाया? धोखा है, प्रवंचना है, अपने को समझा लेना है। यह पांडित्य और यह ज्ञान किसी काम का नहीं। महावीर के बाबत सब कुछ जान लूं, राम के बाबत सब कुछ जान लूं, कृष्ण के बाबत सब कुछ जान लूं, और यह जो भीतर बैठा है, अपरिचित रह जाऊं, दो कौड़ी की है यह सब जानकारी। यह नाहक का मनोरंजन है, अपने समय को खराब कर लेना है। सारे शास्त्र पढ़ डालूं और भीतर जो शास्त्रों का पढ़ने वाला बैठा है, अनपढ़ा रह जाए, कुछ नहीं किया मानना होगा, कुछ नहीं पाया मानना होगा।

महावीर कहते हैं, एक को जान लेने से सब जान लिया जाता है।
उस एक को जानना जरूरी है, उसके जानने का परिणाम अहिंसा होगी। कैसे जानें?
जानते तो हैं अपने को। नाम परिचित है। कितना धन है, बैंक बैलेंस कितना है, वह भी परिचित है। किसका लड़का हूं, वह भी परिचित है। किसका भाई हूं, किसका पति हूं, वह भी सब परिचित है। लेकिन यह सारा परिचय शरीर का परिचय है। यह शरीर किसी का लड़का होगा, यह शरीर किसी का पति होगा, यह शरीर जवान होगा या बूढ़ा होगा। इस शरीर का कुछ नाम होगा, लेकिन इस शरीर के पीछे जो बैठा है, वह किसी से संबंधित नहीं है। जो भी किसी से संबंधित है, वह मैं नहीं हूं। भीतर एक चेतना है असंग और असंबंधित, जिसका न कोई जन्म है, न मृत्यु है। उसको जानना होगा। उसका परिचय ही आत्म-ज्ञान बनेगा।
हम शरीर पर ठहर जाते हैं! जीवन शरीर पर केंद्रित होकर घूम लेता है और समाप्त हो जाता है! शरीर की वासनाएं, शरीर की दौड़, शरीर की आकांक्षा, शरीर की प्यास, उसी में व्यय हो जाता है! और उसको देख ही नहीं पाते हैं जो शरीर की इस कारा के पीछे खड़ा है। जो शरीर का मालिक था, जो शरीर में बसा था, निवासी था, उस अदेही को, जो देह में बैठा हुआ है, हम नहीं जान पाते हैं! देह की दौड़ ही सब रिक्त कर देती है!
महाराष्ट्र में एक साधु हुआ, एकनाथ। एक व्यक्ति ने एकनाथ से एक सुबह पूछा था, नाथजी, आपको देखते हैं, एक प्रश्न मन में बार-बार उठता है। क्या आपके मन में पाप पैदा नहीं होता? वासना नहीं उठती? विकार नहीं जगते? विषाक्त पशु आपके भीतर गति नहीं करते? नाथजी ने कहा, उत्तर अभी दूं? एक मिनट ठहर जाओ, एक बहुत जरूरी बात कह दूं। फिर उत्तर दे दूंगा, कहीं भूल न जाऊं। कल अचानक तुम्हारे हाथ पर नजर पड़ी, देखा मृत्यु की रेखा टूट गई है। सात दिन और, और तुम समाप्त हो जाओगे। सात दिन बाद सूरज डूबा, तुम्हारा भी डूबना है। यह बता दूं, कि कहीं भूल न जाए इसलिए। अब पूछो, क्या पूछते हो? उस आदमी के हाथ-पैर कंप गए। सात दिन और! केवल सात दिन! उसके भीतर तो अचानक उदासी, अवसाद घना हो गया। वह बोला, फिर मैं आऊंगा प्रश्न पूछने, अभी कोई प्रश्न नहीं पूछना। नाथजी ने बहुत कहा, रुको, बड़ा कीमती प्रश्न था, अच्छी चर्चा होती। वह बोला, फिर आऊंगा। अभी चर्चा करने का कोई रस न रहा। मृत्यु ने सारा रस विरस कर दिया है।
उठा, राह पर चलता था, पैर कंपने लगे! मृत्यु का भाव घना हो गया! द्वार पहुंचा, गिर पड़ा! चेहरा काला पड़ गया, इतने से मार्ग में! लोगों ने उठा कर घर बिठाया, पूछा, क्या हुआ? बताया कि सात दिन और--आवाज ऐसी आती थी, जैसे दूर गड्ढे से आती हो! डूब गई आवाज। लेट गया बिस्तर पर। दूसरे दिन सबसे क्षमा मांग आया किसी तरह चल कर! पैर छू आया, जिनसे कभी भूल-चूक हुई थी, दो कडुवे शब्द कहे थे। बिस्तर पर लग गया! रोज घड़ी-घड़ी मौत करीब आने लगी। एक-एक क्षण लंबा हो गया, बीतना कठिन हो गया! एक ही प्रतीक्षा रह गई! कमरे में आसन्न मृत्यु की छाया घनी होने लगी! मृत्यु करीब से करीब उसकी खाट के चली आती थी! मृत्यु ही रह गई थी, और कुछ न था। सारी वासनाएं, सारे विकार, सबकी जगह मृत्यु खड़ी हो गई थी! मृत्यु ही ठंसी थी! हाथ हिलाता था तो मृत्यु लगती थी, अनुभव होती थी! आंख खोलता था तो मृत्यु दिखती थी! श्वास लेता था तो मृत्यु ही श्वास में भीतर-बाहर हो रही थी! सब मृत्युमय हो गया था!
सातवें दिन सूरज डूबने के घड़ी भर पहले एकनाथ उसके घर गए। भीतर गए, घर
के लोग रोने लगे थे। उसकी आंख से आंसू टपक रहे थे। करीब आ गई थी घड़ी, और थोड़ी देर थी। और क्षण कुछ सरकेंगे, और सब समाप्त हो जाएगा। सब बनाया हुआ, सब इकट्ठा किया हुआ, सब जिसे जाना कि अपना है, सब जो मेरे मैं को भरता था, सब विसर्जित हो जाएगा। सारी दौड़-धूप स्वप्न हुई जाती थी। नाथजी ने जाकर पूछा, मित्र! एक बात पूछने आया हूं। उसने आंख खोली। मरणासन्न व्यक्ति, आंखें डूब गई थीं, जीवन की ज्योति बुझ गई थी। नाथजी ने पूछा, एक प्रश्न पूछने आया हूं, सात दिन में कोई पाप, कोई विकार, कोई वासना मन में उठी? उस आदमी ने कहा, क्यों मजाक करते हैं नाथजी! मृत्यु इतने करीब थी कि मेरे और उसके बीच किसी पाप को उठने की गुंजाइश नहीं थी। मृत्यु इतने करीब थी कि विकार उठ आए, इसके लायक भी फासला मेरे और उसके बीच नहीं था।

नाथजी ने कहा, तेरी मृत्यु अभी आई नहीं, केवल तेरे प्रश्न का उत्तर दिया है।
सात दिन बाद मृत्यु हो या सत्तर वर्ष बाद, क्या अंतर पड़ता है? सात दिन बाद समाप्त हो जाता हो या सत्तर वर्ष बाद यह शरीर, तो क्या अंतर पड़ता है? सच ही सात दिन में और सत्तर वर्ष में कोई अंतर है? एक स्वप्न सात दिन का देखा या सत्तर वर्ष का, कोई भेद पड़ेगा?
नाथजी ने कहा था, तू अभी मरने को नहीं, उत्तर दिया है! मुझे मृत्यु दिखती है। यह शरीर मरेगा। जिस दिन से यह दिखा कि यह शरीर मरेगा, उसी दिन से शरीर से सारी आसक्ति विलीन हो गई है।
मृत्यु के प्रति कोई आसक्त नहीं हो सकता है। मृत्यु के प्रति आसक्त होना असंभव है। केवल हम जीवन के प्रति आसक्त हो सकते हैं। हम शरीर को जीवन मानते हैं, इसलिए आसक्त हैं। लेकिन अगर हम दोहराएं, समझाएं अपने को कि हम शरीर नहीं हैं; यह शरीर तो मरेगा, हम तो अमृत हैं, हम तो नित्य आत्मा हैं, अगर हम ऐसा समझाएं, विचार करें, चिंतन करें, तो क्या कुछ उपलब्ध हो जाएगा? इस चिंतन से कुछ भी न होगा, यह तो भ्रम है। इस तरह का चिंतन कोई धोखा न
दे पाएगा आपको। किसी को उसने कभी धोखा न दे पाया। वरन जब मैं यह कह रहा हूं और अपने को समझा रहा हूं, कि अरे यह शरीर तो मरेगा, इसको छोड़ो, छोड़ो, तब जानना चाहिए कि मैं जान नहीं रहा कि शरीर मरेगा। जो जानेगा कि शरीर मरेगा, एक क्षण भी जान लेना, समझाने का प्रश्न बाकी नहीं रह जाता। अज्ञान में केवल समझाना है। ज्ञान खोल जाता है आंख, भेद स्पष्ट हो जाता है; समझाना नहीं होता। मैं आपको नहीं कहता कि अपने मन में इसका चिंतन करें कि मैं देह नहीं हूं। वही इस चिंतन को करेगा, जो जानता है कि देह है। मैं चिंतन को नहीं कहता। यह चिंतन व्यर्थ है। मैं जानने को कहता हूं।
महावीर का मार्ग चिंतना का मार्ग नहीं, महावीर का मार्ग विचार का मार्ग नहीं, जानने का, आंख खोल कर देख लेने का मार्ग है। महावीर का मार्ग श्रद्धा का मार्ग नहीं, अंधी श्रद्धा का मार्ग नहीं, बहुत वैज्ञानिक है। जिसे जान लेना, देख लेना, उसे मान लेना। उसके पहले कोई मान्यता किसी काम की नहीं है। वे सब डूबते हुए आदमी की थोथी अपनी धारणाएं हैं आलंबन की, झूठे आसरों की, झूठे सहारों की। कोई झूठा सहारा काम न देगा। कोई इस तरह की झूठी शरण काम नहीं देगी, जानना होगा।
और जाना जा सकता है। इसी जानने की प्रक्रिया को हम दर्शन कहते हैं। भारत ने जो पैदा किया है, वह फिलासफी नहीं है। और नासमझ हैं वे, जो फिलासफी और दर्शन को पर्यायवाची समझते हैं! फिलासफी है चिंतना, सोचना, विचारना--जो अज्ञात है उसके संबंध में सोच-विचार करना।
लेकिन जो अज्ञात है, उसके संबंध में सोचिएगा क्या? जिसको देखा नहीं, जाना नहीं, जिससे परिचित नहीं, उसके संबंध में चिंतन क्या करिएगा? सब चिंतन गलत होगा।
भारत सोच-विचार को नहीं, देखने को, आंख खोल लेने को कहता है।
भारत कहता है, सत्य देखा जाता है, विचारा नहीं।
महावीर की पूरी धारणा दर्शन की है, चिंतन की नहीं। दर्शन हो सकता है। उसका दर्शन हो सकता है, जो भीतर बैठा है। उसकी, दर्शन उसकी शक्ति है, उसकी क्षमता है, उसका स्वरूप है। वह सारे जगत को कौन देख रहा है? मैं आपको देख रहा हूं, मैं सारे जगत को देख रहा हूं। देखना मेरी क्षमता है, सिर्फ जिस देखने की क्षमता से मैं सबको देख रहा हूं, उसका उपयोग मैं अपने पर करना नहीं जानता हूं! जो देखना सारे जगत पर प्रतिफलित हो रहा है, वह मैं अपने पर प्रतिफलित करना नहीं जानता हूं! जो आंख सब पर खुली है, वह अपने पर खोलना नहीं जानता हूं--इतनी ही दिक्कत, इतनी ही परेशानी है।
रास्ता है! महावीर कहते हैं, जो दृश्य को देख रहा है, वह द्रष्टा को देख सकता है। और उस द्रष्टा को देखते ही जीवन का सारा दुख, सारी पीड़ा, सारा अज्ञान गिर जाएगा।
मैं देख रहा हूं, इतना तो तय है। स्वप्न ही सही, देख रहा हूं, इतना तो
तय है। रात मैंने स्वप्न देखा, सुबह उठा, पाया, स्वप्न झूठा था। होगा स्वप्न झूठा, लेकिन मैंने देखा इतना तो सही है। होगा यह जगत माया, होगा यह संसार व्यर्थ, होगा यह असार, लेकिन मैंने देखा। देखना तो सत्य है। दृश्य

हो सकता है असत्य, द्रष्टा असत्य नहीं हो सकता है। दृश्य हो सकता है भ्रामक, हो सकता है मृग-मरीचिका, देखने वाला मृग-मरीचिका नहीं हो सकता है। द्रष्टा एकमात्र सत्य है जीवन के केंद्र पर खड़ा हुआ, जो देख रहा है। लेकिन उस देखने की क्षमता पर से घिरी हुई है। उस देखने के सामने पर खड़ा हुआ है, विजातीय खड़ा हुआ है। अगर मैं पर को अलग कर दूं देखने की क्षमता के सामने से, अगर द्रष्टा के सामने से पर को अलग कर दूं, तो देखने की क्षमता जो पर को देखती थी, पर को न पाकर, पर के आलंबन के आधार को न पाकर स्व आधार पर लौट आती है। अगर बाहर कुछ देखने को न रह जाए, तो जो सब को देखता था, स्वयं को देख लेता है।
द्रष्टा के सामने से पर का विसर्जन ध्यान है, सामायिक है।
द्रष्टा के सामने से पर का विसर्जन, पर का अलग कर देना, पर का हटा देना, स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाना है। आंख खोलता हूं, आपको देख रहा हूं। आंख बंद कर लूंगा तो भी आपको देखूंगा। आपके चित्र, आपके प्रतिबिंब, आपकी स्मृतियां घूमेंगी। आंख खोलता हूं तो बाहर हूं, आंख बंद करता हूं तो भी बाहर हूं। बाहर से बने हुए चित्र, बाहर से बने हुए इम्प्रेशंस, बाहर से आए हुए संस्कार फिर मुझे घेरे रहते हैं। अभी वास्तविक वस्तुएं घेरी हैं, फिर आंख बंद करता हूं तो वस्तुओं के विचार घेरे रहते हैं, लेकिन बाहर ही हूं। आंख खोल कर भी, आंख बंद करके भी! यह मेरा निरंतर बाहर होना मेरा बंधन है। थोड़ी देर को वस्तुओं से आंख बंद की, विचार से भी आंख बंद कर लेनी है।
इसको महावीर ने निर्जरा कहा है। जो बाहर से मुझ पर आया है--जो भी बाहर
से मुझ पर आया है, उसी विजातीय ने मुझको घेरे में बंद किया, आबद्ध किया। उस बाहर से आए हुए प्रभाव को विसर्जित कर देना निर्जरा है। बाहर का बाहर छोड़ देना, और भीतर वही बच जाए जो बाहर से नहीं आया--तत्क्षण, उसी क्षण कुछ दिखेगा, जो सब बदल जाता है, सब परिवर्तित कर जाता है। कुछ नए आयाम में, नए डायमेंशन में, नई भूमि में उठना हो जाता है। महावीर की यह वैज्ञानिक धारणा निर्जरा की अदभुत है। और वही है मार्ग। वही है मार्ग, वही है योग, वही है सब कुछ, वही है विज्ञान, वही है प्रयोगशाला व्यक्ति की अपने में जाने की। स्मरण करें, कुछ भी है हमारे मन में जो बाहर से न आया हो? कुछ भी है हमारे चित्त में जो बाहर का प्रतिफलन न हो? कुछ भी है ऐसी चीज जो बाहर की धूल की तरह हम पर नहीं जम गया है? जो भी बाहर से आया हो, उस पर आंख बंद कर लेनी है। उसे देखना है, लेकिन जानना है कि वह पर है और बाहर से आया है, और वह मैं नहीं हूं।
अगर व्यक्ति अपने भीतर थोड़ी देर भी बैठ कर सिर्फ इस विवेक को जाग्रत करता रहे कि क्या बाहर से आया है, वह मैं नहीं हूं। सिर्फ इस होश को भीतर पैदा करता रहे कि यह बाहर से आया है, यह मैं नहीं हूं। यह बाहर से आया है, यह मैं नहीं हूं। यह बाहर से आया है, यह मैं नहीं हूं। निषेध करता चले उस क्षण तक, जब तक बाहर से आया हुआ कुछ भी डोलता हो चित्त में।
और हैरान होगा, मैं उसे अपना मान लेता था, इसलिए वह आता था। वे बाहर से
आए हुए संस्कार इसलिए ठहर जाते थे, मैं उन्हें अपना मान कर ठहरा लेता था इसलिए। जिस क्षण मैंने उनके साथ यह जाना कि वे मेरे नहीं, वे बाहर से आए हुए यात्री हैं; आएंगे और चले जाएंगे। मैं यात्री नहीं हूं, मैं अतिथि नहीं हूं, आतिथेय हूं; मैं होस्ट हूं, गेस्ट नहीं। वे जो गेस्ट आए हैं, चले जाएंगे; मैं तो उनका मेजबान हूं।
अतिथि में और आतिथेय में फर्क कर लेना आत्म-ज्ञान है।
अतिथि में, आतिथेय में; गेस्ट में और होस्ट में फर्क कर लेना आत्म-ज्ञान है।
जो बाहर से आया, वह अतिथि है। उसे मैं जानूं, देखूं, परिचित होऊं और होश रखूं कि वह मैं नहीं हूं। और अगर... इसको महावीर ने भेद-विज्ञान कहा, इस भेद का विज्ञान। इस भेद को धीरे-धीरे थिर करना, इस भेद में स्थित होना। धीरे-धीरे जिसको मैं अतिथि जानूंगा, उससे झगड़ने का कोई कारण नहीं है, जानना पर्याप्त है। जान लें, यह मेरा नहीं, मेरे भीतर से नहीं आया। आए, चला जाए; मैं दर्शक बना रहूं, मैं तटस्थ द्रष्टा रह जाऊं।
धीरे-धीरे यह तटस्थ द्रष्टा का बोध, यह सम्यक द्रष्टा का बोध पर को विसर्जित कर देगा, पर को विलीन कर देगा। दृश्य विलीन होते चले जाएंगे,

स्वप्न गिरते चले जाएंगे और एक दिन अचानक, अनायास जहां जगत दिखता था, वहां शून्य खड़ा रह जाएगा। जैसे अचानक प्रोजेक्टर बंद हो गया हो, पीछे फिल्म को बनाने वाली मशीन, चलाने वाली मशीन बंद हो गई हो; पर्दा खाली रह जाए, चित्र न हों, सफेद; वैसे ही किसी दिन धीरे-धीरे सामायिक के इस प्रयोग के, तटस्थ द्रष्टा के इस प्रयोग के माध्यम से प्रोजेक्टर बंद हो जाएगा। सामने जगत विलीन, कोरा आकाश रह जाएगा--शून्य।
इस शून्य की परिपूर्ण स्थिति को महावीर ने शुक्ल-ध्यान कहा है। जिस क्षण कुछ भी न रह गया, दृश्य सब शून्य हो गया, उसी क्षण--तत्क्षण ज्यादा ठीक हो कहना--ठीक उसी क्षण, जैसे ही वहां शून्य हुआ, जो सबको देखता था, वह अपने पर लौट आता है। जो दूसरों के घरों पर उड़ता फिरा, जिसने दूसरों के डेरों को अपना आधार बनाया, जो दूसरी भूमियों में विचरण किया, कोई आधार न पाकर, निराधार शून्य में छूट कर--और शून्य में कुछ भी नहीं रह सकता है--शून्य में आधार न पाकर स्व-आधारित हो जाता है, स्वयं प्रतिष्ठित हो जाता है, स्वयं में लौट आता है। आत्मा आत्मा पर लौट आती है।
इस क्षण दिखता है अमृत, जिसकी कोई मृत्यु नहीं। इस क्षण दिखता है, जिसमें कोई भय की संभावना नहीं। जैसे गीता में उन्होंने कहा हैः न हन्यते हन्यमाने शरीरे--जो, शरीर मर जाएगा, तब भी नहीं मरेगा। जिसे चिता की लपटें नहीं जला सकतीं, जिसे कुछ भी नष्ट और विकृत नहीं कर सकता--अच्युत, शाश्वत, नित्य--उसके जब दर्शन होंगे, अनायास, सहज। इस दर्शन के कारण जीवन अहिंसक हो जाता है। इस दर्शन के कारण जीवन में अहिंसा फैल जाती है। इसके अतिरिक्त और अहिंसा तक पहुंचने का कोई रास्ता नहीं है।
आत्म-ज्ञान है मार्ग अहिंसा का।
और अगर विश्व को बचा लेना है, और अगर मनुष्य को कोई भविष्य और नियति देनी है, तो एक-एक व्यक्ति तक आत्म-ज्ञान की इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को पहुंचा देना जरूरी है। महावीर को, उनके विचार को घेरों को तोड़ कर सब तक पहुंचा देना जरूरी है। महावीर अहिंसक होने को नहीं कह रहे हैं, महावीर आत्म-ज्ञानी होने को कह रहे हैं--अहिंसा तो अपने से चली आएगी। आत्म-ज्ञान जागे, लोग अपने को जानें, अमृत को पहचानें, नित्य को पहचानें, प्रबुद्ध को पहचानें; उसको, जो कभी बंधन में नहीं गिरा, उस मुक्त को पहचानें, तो हम सारे जगत को एक नई मनुष्यता में परिवर्तित कर सकते हैं।
अणु का उत्तर आत्मा है, विज्ञान का उत्तर धर्म है। फैले हुए विकृति और विकार का उत्तर संस्कृति है। केवल आत्म-ज्ञानी संस्कृत होता है। अज्ञानी प्रकृत होता है। और अज्ञानी अगर अज्ञान में तृप्त हो जाए तो विकृत हो जाता है। अज्ञानी प्रकृत होता है। और अगर अज्ञानी ऊपर उठने की आकांक्षा भी छोड़ दे ज्ञान तक तो विकृत हो जाता है। और अगर ऊपर उठने की आकांक्षा से भरे, संस्कृत होता चलता है। जिस दिन भीतर परिपूर्ण आत्म-ज्ञान उदय होता है, उसी दिन व्यक्ति सुसंस्कृत होता है।
जगत को संस्कृति देनी है। और संस्कृति तो हिंसक नहीं हो सकती, केवल विकृति हिंसक हो सकती है। जगत को संस्कृति देनी है, तो आत्म-ज्ञान की आकांक्षा देनी जरूरी है, प्यास को जगाना जरूरी है। एक-एक आदमी के भीतर जो सोया है, वह जो प्रदीप्त हो सकता है, लेकिन प्रसुप्त है; वह जो जाग सकता है, लेकिन सोया है, नींद में है; वह जो अमूर्च्छित, अप्रमत्त हो सकता है, लेकिन मूर्च्छित और बेहोश में है--उसे पुकारना जरूरी है।
एक-एक व्यक्ति के भीतर पुकार देनी जरूरी है कि जागो और जगाओ अपने को। तुम्हारा जागरण सारे जगत की रक्षा हो सकता है। एक-एक व्यक्ति का जागरण सारे जगत की रक्षा हो सकता है। एक-एक व्यक्ति का अपने में प्रतिष्ठित हो जाना विश्व की विकृति के संस्कृति में बदलने का मार्ग बन सकता है।
ये थोड़ी सी बातें मैं कहा हूं। बहुत प्रीति से, आनंद से आपकी आंखों को देख रहा हूं, पहचान रहा हूं। बहुत प्यार से इन बातों को सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।
अंत में एक ही प्रार्थना करता हूंः जगाएं, अपने भीतर पुकारें उसको, जो सोया है। अगर वह महावीर में जग सका, बुद्ध में जग सका, कोई कारण नहीं है कि हमारे भीतर नहीं जगेगा। ठीक ऐसे ही हड्डी-मांस के लोग वे थे। ठीक इन्हीं विकृतियों, इन्हीं सीमाओं में घिरे हुए, जो हमारी हैं। अगर वे जाग सके, तो

अपमान है हमारा कि हम न जाग सकें! तिरस्कार है हमारा, अगर हम न जाग सकें! अगर एक भी मनुष्य कभी जागा है, प्रत्येक दूसरा मनुष्य जाग सकता है। क्यों न वह दूसरा मनुष्य मैं हो जाऊं? यही प्रार्थना है, वह दूसरा मनुष्य होने का प्रत्येक प्रयास करे, प्रत्येक आकांक्षा से भरे, प्रत्येक अतृप्त हो जाए, प्यास से पुकारे अपने भीतर--निश्चित जागरण हो सकता है।
इस प्रार्थना के साथ अपनी बात को पूरा करता हूं और आप सबके भीतर बैठे हुए उस सोए हुए को प्रणाम करता हूं, जो जाग जाए तो प्रभु हो सकता है, और सो जाए तो पशु हो सकता है। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

महावीर या महाविनाश
पांचवां प्रवचन

व्यक्ति है परमात्मा

महावीर के जन्म-उत्सव पर थोड़ी सी बातें आपसे कहूं, इससे मुझे आनंद होगा। आनंद इसलिए होगा कि आज मनुष्य को मनुष्य के ही हाथों से बचाने के लिए सिवाय महावीर के और कोई रास्ता नहीं है। मनुष्य को मनुष्य के ही हाथों से बचाने के लिए महावीर के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।
ऐसा कभी कल्पना में भी संभव नहीं था कि मनुष्य खुद के विनाश के लिए इतना उत्सुक हो जाएगा। इतनी तीव्र आकांक्षा और प्यास उसे पैदा होगी कि वह अपने को समाप्त कर ले, इसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। लेकिन विगत पचास वर्षों से मनुष्य अपने को समाप्त करने के सारे आयोजन कर रहा है! उसकी पूरी चेष्टा यह है कि एक-दूसरे को हम कैसे समाप्त कर दें, कैसे विनष्ट कर दें! पिछले पचास वर्षों में दो महायुद्ध हमने लड़े हैं और दस करोड़ लोगों की उसमें हत्या की है। और ये युद्ध बहुत छोटे युद्ध थे, जिस तीसरे महायुद्ध की हम तैयारी में हैं, संभव है वह अंतिम युद्ध हो, क्योंकि उसके बाद कोई मनुष्य जीवित न बचे। मनुष्य ही जीवित नहीं बचेगा, वरन कहा जा सकता है कि कोई प्राण जीवित नहीं बचेगा।
मैं एक छोटी सी, एक छोटी सी गणना आपको दूं--अगर सौ डिग्री तक पानी गर्म किया जाए और उस गरम उबलते पानी में आपको हम डाल दें तो क्या होगा? शायद आपका बचना मुश्किल हो। अगर हम पंद्रह सौ डिग्री तक लोहे को गरम करें तो वह पिघल कर पानी हो जाएगा। उस पिघले हुए लोहे में अगर हम आपको डाल दें तो क्या होगा? आपका बचना असंभव हो जाएगा। अगर हम पच्चीस सौ डिग्री तक लोहे को गर्म करें तो वह भाप बन कर उड़ने लगेगा। उस पच्चीस सौ डिग्री गर्मी में किसी भी प्राणी के बचने की कोई संभावना शेष नहीं रहेगी।
लेकिन यह कोई गर्मी नहीं है, यह कोई उत्ताप नहीं है। एक हाइड्रोजन बम
के विस्फोट से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है दस करोड़ डिग्री। दस करोड़ डिग्री की गर्मी में किसी तरह के प्राणी के बचने की कोई संभावना नहीं होगी। और ऐसे हाइड्रोजन बम आज जमीन पर पचास हजार की संख्या में निर्मित हैं। ये पचास हजार उदजन बम इस जमीन को सात बार मिटाने में समर्थ होंगे। इसको वे पश्चिम में ओवर किल कैपेसिटी कहते हैं। वे कहते हैं कि अगर एक आदमी को हमें सात-सात बार मारना पड़े, तो भी हम जमीन को नष्ट करने में समर्थ हैं। यह बहुत आश्चर्य की बात है। एक आदमी तो एक बार में ही मर जाता है, उसे सात बार मारने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन जो सदी लोगों को विनाश करने के लिए इतनी शक्ति पैदा कर रही हो,
उस सदी के संबंध में विचार करना होगा, सोचना होगा, क्या कोई पागल हो गया है? क्या मनुष्य पागल हो गया है? और मैं आपको यह आज कहना चाहूंगा कि जो मनुष्य धर्म से संयुक्त नहीं होता, वह आज नहीं कल पागल हो जाता है। और एक आदमी पागल हो जाए, यह बहुत बड़ा खतरा नहीं है--कोई पूरी कौम पागल हो जाए, कोई पूरी सदी पागल हो जाए, पूरा मनुष्य समाज पागल हो जाए तो क्या होगा?
मैं एक छोटी सी कहानी आपको कहूं, मुझे बहुत प्रीतिकर रही और मुल्क के
न मालूम किन-किन लोगों के बीच मैंने जाकर उसे कहा।
ईश्वर ने यह देख कर कि मनुष्य को यह क्या हो गया है, उसने दुनिया के तीन बड़े प्रतिनिधि राष्ट्रों के लोगों को अपने पास बुलाया। ऐसा कोई ईश्वर कहीं है नहीं। ऐसा ईश्वर कहीं भी नहीं है, जो किसी को बुलाए। एक काल्पनिक और झूठी कहानी आपसे कह रहा हूं।
ईश्वर ने दुनिया के तीन बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को अपने पास बुलाया--अमरीका को, रूस को, ब्रिटेन को। और उसने उनसे कहा कि तुम इतनी शक्ति तो पैदा कर लिए हो, लेकिन उस शक्ति से तुम कोई सृजन नहीं कर पाते। तुमने इतनी शक्ति पैदा की है, लेकिन उससे जीवन के लिए तुम सहयोगी नहीं बन रहे हो। तुम्हारी सारी शक्ति तुम्हारी मृत्यु बन जाए, यह बहुत आश्चर्यजनक है। अगर मैं तुम्हारे कुछ सहयोगी बन सकूं, अगर मेरा कोई वरदान तुम्हारे काम आ सके, तो वरदान मांग लो।

अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, एक ही वरदान हम मांगते हैं--एक छोटा सा वरदान पूरा हो जाए और हमारी सब तृप्ति हो जाएगी। ईश्वर ने प्रफुल्लित होकर कहा, मांगो! और अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, एक हमारी आकांक्षा है कि जमीन तो रहे, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाए। ईश्वर ने बहुत वरदान दिए होंगे। कहानियां हैं हजारों ईश्वर के वरदान देने की, लेकिन ऐसा वरदान कभी किसी ने मांगा नहीं था! उसने बहुत उदासी और दुख से रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा।
उस प्रतिनिधि ने कहा, महानुभाव! एक तो हमारा कोई विश्वास नहीं है कि आपकी कोई सत्ता है। हम मानते नहीं कि ईश्वर है। और पच्चीसों वर्ष हुए हमने अपने मंदिरों और मस्जिदों से, और अपने गिरजाघरों से आपको निकाल कर बाहर कर दिया है। लेकिन हम आपको वापस प्रतिष्ठा देंगे और फिर आपकी मूर्तियों के सामने धूप और दीए जलाएंगे, अगर एक छोटी सी बात पूरी हो जाए तो वह प्रमाण होगा कि ईश्वर है। ईश्वर ने कहा, कौन सी बात? उस रूस के प्रतिनिधि ने कहा, एक छोटी सी बात, जमीन के नक्शे पर अमरीका के लिए कोई रंग और रेखा न रह जाए। ईश्वर ने बहुत हैरान और घबड़ा कर ब्रिटेन के प्रतिनिधि की तरफ देखा। उसने जो कहा वह मन में रख लेने जैसा है।
उसने कहा कि मेरे प्रभु! हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी हो जाएं, हमारी आकांक्षा पूरी हो जाती है।
यह बात हमें हंसने जैसी लगती है। यह बात हंसने जैसी नहीं है, यह बात रोने जैसी है। और इससे बड़ी बात रोने जैसी दूसरी नहीं हो सकती है। और अगर आप इस पर हंसते हैं, तो आप गलती करते हैं। मैंने बहुत सोचा कि मैं भी इस पर हंस पाऊं, मैं नहीं हंस पाया। मैंने इस कहानी को अपने से बहुत बार कहा है और मैंने चाहा कि मैं हंस लूं, लेकिन मैं नहीं हंस पाया और मेरा हृदय आंसुओं से भर गया है। और यह कहानी बिल्कुल झूठ है, मैंने कहा; लेकिन यह कहानी झूठ नहीं है, यह कहानी बिल्कुल सच है।
यह कहानी इसलिए सच है कि हमारी ये आकांक्षाएं आज हैं। आज हम चाहते हैं
कि नष्ट हो जाएं, दूसरे मिटा दिए जाएं। हम यह समझ रहे हैं कि हमारे जीवन का रहस्य इस बात में है कि दूसरे को मृत्यु मिल जाए! हम नासमझ और पागल हैं। जीवन का रहस्य इसमें है कि दूसरों को और महान जीवन मिल जाए। अगर हम जीवन चाहते हैं खुद, तो जीवन हमें बांटना होगा। जो मौत को बांटेगा वह स्वयं मौत में गिर जाएगा।
यह जो कहानी मैंने कही, इसलिए मैंने कहा कि यह रोने जैसी है, यह आज दुनिया की हालत है। और यह दुनिया की हालत है, इससे यह मत समझना कि यह आपकी हालत नहीं है। आपका भी आनंद इसमें है कि आपका पड़ोसी मर जाए! आपकी भी खुशी इसी में है कि कोई समाप्त हो जाए! आप चौबीस घंटे इस प्रयत्न में लगे हैं, विचार से, मन से, वाणी से कि किसी को नष्ट कर दें!
अधार्मिक वह है जो दूसरे के नष्ट करने का विचार करता है। और धर्म की शुरुआत इस बात से होती है कि जो अपने निर्माण का विचार करता है। धर्म की शुरुआत इस बात से होती है कि जिसका ध्यान इस बात में है कि मैं जीवन को उपलब्ध हो जाऊं। अधर्म की शुरुआत इस बात से होती है, जिसे इस बात का ध्यान है कि दूसरा मृत्यु को उपलब्ध हो जाए; दूसरा मिट जाए, दूसरा गिर जाए। धर्म की शुरुआत इस बात में है कि मैं जीवन को उपलब्ध हो जाऊं। और धर्म की सिद्धि इस बात में है कि सब जीवन को उपलब्ध हो जाएं।
ऐसी जो स्थिति है, ऐसे जो विनाश का चिंतन है... ।
ट्रूमैन को, जब वह अमरीका के प्रेसिडेंट थे और जब उनकी आज्ञा से हिरोशिमा और नागासाकी पर पहला अणु बम गिराया गया, और वहां लाख लोग सोते- सोते समाप्त हो गए, दूसरे दिन सुबह ट्रूमैन जब उठे तो पत्रकारों ने उनसे पूछा कि रात आपको नींद आई? यह पूछने जैसा था। अगर मेरी आज्ञा से एक लाख लोग समाप्त हो जाएं, फिर अनंत काल तक इस जगत में मैं सो नहीं सकता हूं। और अगर मैं सो जाऊं, तो मुझे आदमी कहना मुश्किल है, मुझे पत्थर कहना होगा। पत्रकारों ने उनसे सुबह-सुबह पूछा, रात आपको नींद आई? ट्रूमैन ने कहा, बहुत वर्षों के बाद पहली दफा सोया! उन्होंने कहा, बहुत वर्षों के बाद पहली दफा सोया, मामला खतम हो गया! हम जीत गए!

एक लाख आदमी रात सोए हुए समाप्त हो गए हैं, इसकी पीड़ा जिन्हें न छूती हो, ऐसे मनुष्यों के समाज और युग को विक्षिप्त कहने की मुझे आज्ञा नहीं देंगे? ऐसे समय को पागल कहने की मुझे आज्ञा नहीं देंगे? और स्मरण रखें, यह मैं किन्हीं और के लिए नहीं कह रहा हूं, यह मैं आपसे कह रहा हूं। यह मैं हर एक से कह रहा हूं। क्योंकि हम हैं, जो इसे बनाते हैं। हम हैं, जो समय को बनाते हैं और सदी को बनाते हैं। समय और सदी आसमान से नहीं उतरते, हम उन्हें निर्मित करते हैं, हम उनके निर्माता हैं।
हर आदमी जो मौजूद है इस जमीन पर, इस जमीन पर जो हो रहा है, उसका सहयोग उसमें है। अगर दुनिया में दस करोड़ लोग मारे गए हैं, स्मरण रखें, उस हत्या का जिम्मा आप पर है। कोई यह भूल से न समझे कि उस हत्या पर मेरा जिम्मा नहीं है। जो सोचता हो कि मैं चींटियों को बचा कर निकल जाता हूं, जो सोचता हो कि पानी छान कर मैं पी लेता हूं, इसलिए मुझ पर हिंसा का क्या भार है, वह नासमझ है। उसे पता नहीं, हिंसा बहुत गहरी और बहुत सामूहिक है। अगर मेरे मन में थोड़ा सा भी क्रोध उठता है, अगर मेरे मन में थोड़ी सी भी घृणा उठती है, अगर मेरे मन में दूसरे को नष्ट करने का थोड़ा सा भी ख्याल उठता है, तो नागासाकी में जो अणु बम गिरा, उसमें मेरा हाथ है। और भविष्य में भी अगर किसी मुल्क पर, किसी का दुर्भाग्य होगा और अणु बम गिरेंगे, उसमें मेरा हाथ होगा। वह मेरे छोटे से क्रोध की चिनगारी, जब लाखों लोगों के क्रोध की चिनगारियां इकट्ठी होती हैं तो युद्ध में परिणत हो जाती हैं। बड़े युद्ध आकाश में नहीं लड़े जाते हैं, लोगों के हृदय में लड़े जाते हैं।
अगर आपके हृदय में क्रोध उठता है, सारे युद्धों के लिए आप जिम्मेवार होंगे। अगर आपके हृदय में घृणा उठती है, सारे युद्धों का भार और उत्तरदायित्व आपको अनुभव करना होगा। और जब तक यह अनुभव न हो, जब तक मैं सारी जमीन पर जो हो रहा है उसमें अपने को सहयोगी अनुभव न करूं, तब तक मैं धार्मिक नहीं हो सकता हूं।
यह जो स्थिति है समय की, यह जो रुख है चीजों का, यह जो प्रवाह है समय का, इसे बदलना होगा अगर मनुष्य को बचाना है। अगर मनुष्य को बचाना है, तो मनुष्य को बदलना अपरिहार्य हो गया है। और अगर हम थोड़ी देर भी चूक गए और मनुष्य को हम नहीं बदल सके तो मनुष्यता को बचाना असंभव हो जाएगा। यह पचास वर्ष भी मुश्किल है कि आदमी बच जाए। यह मुश्किल है कि हम सन दो हजार देख पाएं। हम बीसवीं सदी को पूरा होते देख पाएं, यह असंभव मालूम होता है। जैसा मनुष्य है, अगर वह वैसा ही रहा, तो यह मुश्किल है कि मनुष्य के बचने की कोई संभावना मानी जाए। मनुष्य का भाग्य और मनुष्य का जीवन और भविष्य समाप्त हो गया है। एक ही आशा की किरण है कि मनुष्य परिवर्तित हो सके। और वह मनुष्य के परिवर्तन की किरण महावीर से मिल सकती है।
जब मैं यह कहता हूं वह महावीर से मिल सकती है, तो मेरा मतलब यह नहीं है
कि वह क्राइस्ट से नहीं मिल सकती, मेरा यह मतलब नहीं है कि वह कृष्ण से नहीं मिल सकती, मेरा यह मतलब नहीं है कि वह बुद्ध से नहीं मिल सकती। जब मैं कहता हूं, महावीर से मिल सकती है, तो मेरा मतलब महावीर में बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट सम्मिलित हैं। मुझे यह दिखाई नहीं पड़ता कि एक दीए में जो रोशनी जलती है, वह दूसरे दीए की रोशनी से भिन्न होती है। और जब मैं कहता हूं इस दीए से रोशनी मिल सकती है, तो मैं यह कह रहा हूं कि रोशनी केवल दीए से मिल सकती है। और वे दीए कहीं भी जले हों, वे महावीर के नाम से जले हों, वे बुद्ध के नाम से जले हों, वे कृष्ण के नाम से जले हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। रोशनी को पहचानें और शरीरों को छोड़ दें। मिट्टी के दीयों को छोड़ दें और प्रकाश की ज्योति को पहचानें।
महावीर में वह ज्योति है। और वह ज्योति, जो लोग उस ज्योति को प्रेम करेंगे और जो लोग उस ज्योति को आमंत्रित करेंगे अपने भीतर, उनके भीतर भी जल सकती है। जिनके दीए बुझे हों, वे उन दीयों के करीब जाएं जहां रोशनी जल रही है। और जिनके भीतर के प्राण सो गए हों, वे उन प्राणों के स्रोतों से संबंधित हो जाएं जहां अनंत जीवन उपलब्ध हुआ है। उनके भीतर भी घटना घट सकती है।
इस विचार से मैं आनंदित हूं कि महावीर के संबंध में थोड़ी सी बातें आपसे कहूंगा। आनंदित इसलिए नहीं हूं कि महावीर के स्मरण का कोई मूल्य है,

आनंदित इसलिए हूं कि शायद वह स्मरण आपके भीतर कोई प्यास पैदा कर दे। शायद वह स्मरण आपके भीतर कोई अपमान पैदा कर दे। शायद आपको लगे कि जो महावीर के भीतर संभव हो सका, वह जब तक मेरे भीतर संभव न हो जाए, तब तक मेरी मनुष्यता अपमानित है। तब तक मैं अपनी ही आंखों में गिरा हुआ और पतित हूं। और इस जगत में अपनी आंखों में गिर जाने से बड़ी दुर्घटना दूसरी नहीं है। हम अपने संबंध में सोचेंगे तो हमें दिखाई पड़ेगा, हम अपने संबंध में विचार करेंगे और अंतर्दर्शन करेंगे तो हमें दिखाई पड़ेगा--हम क्या हैं और हम क्या हो सकते हैं?
हम क्या हो सकते हैं, इसके सबूत हैं महावीर, इसके सबूत हैं बुद्ध, इसके सबूत हैं कृष्ण। हर मनुष्य क्या हो सकता है, इसके प्रतीक हैं वे। मुझे ऐसा लगता है--आज सुबह ही मैंने कहा--मुझे ऐसा लगता है कि जब मैं आपकी तरफ देखता हूं तो मुझे ऐसा लगता है जैसे बीजों का एक ढेर लगा हो और हर बीज वृक्ष हो सकता हो, ऐसा ही मुझे लगता है। जैसे सारी जमीन पर महावीर भरे हों, लेकिन बीज की शक्ल में। और अगर चाहें वे और संकल्प की ऊर्जा उनमें जागे और अग्नि उनमें प्रज्वलित हो साधना की, तो शायद उनके बीज भी फूट जाएं और उनसे वृक्षों का जन्म हो जाए।
महावीर अगर वृक्ष हैं, तो आप भी उसी वृक्ष के बीज हैं। अगर यह स्मरण, उनकी स्मृति का दिन आपके भीतर यह भाव पैदा कर दे, अगर यह ख्याल पैदा कर दे, अगर यह सपना पैदा कर दे कि जो उनके लिए संभव हुआ, वह मुझे भी संभव हो सकता है, तो यह घटना आनंद की बन जाएगी। इसलिए मैंने कहा कि मैं आनंदित हूं। महावीर के संबंध में कुछ कहूं, इसके पहले थोड़ी सी बातें मुझे और कह देनी हैं।
मैं यहां आया, आते से ही मुझे पता चला, आते से ही मुझे बताया गया कि कुछ लोगों ने कहा है कि अगर मैं बोलूंगा, तो वे मुझे पत्थर मारेंगे। वे इसलिए पत्थर मारेंगे कि मेरी बातें महावीर के विपरीत हैं। मैंने उनसे कहा, अगर वे पत्थर मुझे मारेंगे तो वे साबित करेंगे कि वे महावीर के प्रेमी नहीं हैं। अगर मेरी बातें महावीर के विपरीत हैं, तो भी मुझे पत्थर मारने का कोई कारण पैदा नहीं होता। और जो मुझे पत्थर मारेगा, वह अगर सोचता हो कि वह महावीर का प्रेमी है, तो वह पागल है, वह नासमझ है। महावीर के प्रेम की पहली शर्त यह है कि जब तुम्हें कोई पत्थर मारे तो तुम उसे प्रेम देना। महावीर के प्रेम की पहली शर्त यह है कि जब तुम्हें कोई पत्थर मारे तो तुम उसे प्रेम देना।
मैंने पूछा कि वे मुझे क्यों पत्थर मारेंगे? तो मुझे बताया गया, मुझे कुछ बातें बताई गईं, उनका मैं उल्लेख करूं, उनके माध्यम से महावीर को समझना आसान होगा।
मुझे बताया गया कि मैं जब कहता हूं महावीर, तो मैं भगवान नहीं जोड़ता। मैंने कहा, मेरा प्रेम भगवान जैसे औपचारिक शब्द को जोड़ने को राजी नहीं होता। जिनको हम प्रेम करते हैं, जितना हम उनको प्रेम करते हैं उतनी ही औपचारिक बातें उनके संबंध में व्यर्थ हो जाती हैं। अगर महावीर को स्मरण करते वक्त इतना प्रेम न भरता हो कि हम उन्हें तू कह कर बुला सकें, तो हममें प्रेम ही नहीं है। इसलिए मैंने कहा, मैं तो उनको भगवान नहीं कहूंगा। भगवान न कहने का मतलब यह है कि मैं उनको भगवान जानता हूं। भगवान न कहने का मतलब यह है कि मैं पहचानता हूं कि वे भगवान हैं। इसे कहने और दोहराने की बात नहीं है, इसे हृदय में समझने और पहचानने की बात है। जो इसे कहेंगे केवल, इसे दोहराते रहेंगे मंत्र की तरह, इनके दोहराने से कुछ होने का नहीं है।
मुझे कहा गया कि मैं जो कहता हूं, वह शास्त्र के विपरीत है।
मैंने कहा, महावीर की आस्था शास्त्र में नहीं है। महावीर की आस्था स्वयं में है। और अगर महावीर की कोई क्रांति है बहुमूल्य, तो वह यह है कि उन्होंने इस मुल्क को शास्त्र से मुक्त करने की कोशिश की। महावीर के समय शास्त्र सब कुछ थे, वेद सब कुछ थे। महावीर ने कहा, वेद नहीं, शास्त्र नहीं, स्वयं का सत्य, स्वयं का अनुभव अर्थपूर्ण है। महावीर ने कहा, हम शब्दों को न मानेंगे, हम तो अनुभूतियों को मानेंगे।

लेकिन हम ऐसे पागल हैं कि जिस महावीर ने यह कहा हो कि शास्त्र नहीं है मूल्यवान, स्वयं का अनुभव और स्वाद मूल्यवान है, हम उनकी ही वाणी का शास्त्र बना लेंगे और उसको पूजेंगे! यह घटना सारी जमीन पर घटी है--महावीर के अनुयायियों में ही नहीं, सारी जमीन पर--कृष्ण के अनुयायियों में, क्राइस्ट के अनुयायियों में या मोहम्मद के अनुयायियों में।
मोहम्मद ने कहा है शांति और मोहम्मद के इस्लाम धर्म का अर्थ भी होता
है शांति का धर्म। लेकिन उनके भक्तों ने क्या किया? उनके भक्तों ने जितनी अशांति दुनिया में फैलाई और किसी ने नहीं फैलाई!
क्राइस्ट ने कहा है कि तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा उसके सामने कर देना। लेकिन क्राइस्ट के मानने वालों ने जितने गालों पर चांटे मारे हैं, उनका कोई हिसाब नहीं है! और क्राइस्ट के मानने वालों ने जितनी छातियों पर संगीनें कोंची हैं और जितनी छातियों पर पैर रौंदे हैं, उसका कोई मुकाबला नहीं है! बहुत आश्चर्यजनक मालूम होता है।
महावीर ने कहा है, प्रेम! और अगर महावीर का कोई भक्त कहता हो कि हम किसी को पत्थर मारेंगे, तो विचारणीय हो जाएगा। और महावीर ने कहा है, अपरिग्रह! और महावीर के भक्तों के पास परिग्रह ही परिग्रह इकट्ठा हो, तो विचारणीय हो जाएगा। और महावीर ने कहा है, स्वयं का अनुभव! और कोई महावीर की वाणी को ही अगर वेद बना दे तो गलती हो जाएगी, तो विचारणीय हो जाएगा।
मैं आपको कहूं कि दुनिया में इस धर्म के जितने मानने वाले हैं, उनमें
से मुश्किल से कोई अनुयायी है। जिनकी आप पूजा करते हैं, उनके ही आप दुश्मन हैं, उनके ही आप शत्रु हैं! नीत्शे ने एक वचन कहा था। उसने कहा था, पहला और अंतिम क्रिश्चियन सूली पर लटका कर मार डाला गया--पहला और अंतिम क्रिश्चियन! उसने कहा था, क्राइस्ट पहला और अंतिम क्रिश्चियन था। उसके बाद कोई क्रिश्चियन नहीं हुआ। मैं आपको स्मरण दिलाऊं, महावीर के बाद भी कोई जैन नहीं हुआ।
तो कृष्ण के बाद या बुद्ध के बाद, सबके साथ वैसी घटना घटी है। और जो उनके पीछे दिखाई पड़ते हैं, वे उनके पीछे नहीं हैं। जो उनके पीछे मालूम पड़ते हैं, वे उनके पीछे नहीं हैं। महावीर के पीछे होना आसान नहीं है। और इस भूल में कोई न पड़ जाए कि मैं जैन घर में पैदा हो गया तो महावीर के पीछे हो गया। पागल, अगर बातें इतनी सस्ती होतीं, अगर मामले इतने आसान होते, तो सब हल हो गया होता।
धार्मिक होना इस जगत में सबसे बड़े दुस्साहस की बात है।
धार्मिक होना पैदाइश से संबंधित नहीं है। धार्मिक होने के लिए तो दूसरा जन्म खुद लेना होता है। एक जन्म है जो मां-बाप से मिलता है, वह कोई जन्म है! वह केवल शरीर का जन्म है। एक दूसरा जन्म है, जो खुद के संकल्प और साधना और श्रम से उत्पन्न करना होता है। वही वास्तविक जन्म है। उसके बाद ही, उसके बाद ही व्यक्ति धार्मिक बनता है। तो कोई इस भूल में न रहे कि महावीर के मानने वालों के घर में पैदा हो गए हैं, तो हम जैन हो गए हैं। महावीर के घर में पैदा होने से कोई जैन नहीं होता।
उपनिषदों में एक ऋषि हुआ, उद्दालक। उसका पुत्र जब अध्ययन करके शास्त्रों का घर वापस लौटा, सारे शास्त्रों का अध्ययन करके वापस लौटा, तो गरूर से और अहंकार से भरा हुआ आया। पंडित से ज्यादा प्रगाढ़ अहंकार और किसका होता है? वह गरूर से और अहंकार से भरा हुआ घर में आया। पिता ने देखा, अहंकार की सीमा नहीं है! पिता ने पूछा, सब पढ़ आए? उसने कहा, मैं सब पढ़ आया, जो भी पढ़ने योग्य था, सब पढ़ आया। जो भी पढ़ने जैसा था, सब पढ़ आया। सब शास्त्र, सब वेद पढ़ कर लौटा हूं।
उसके पिता ने आंख नीची कर ली और उसने कहा कि जहां तक मैं देख रहा हूं तुम्हें, मुझे दिखाई पड़ता है कि जो पढ़ना था, वही तुम छोड़ कर सब पढ़ आए हो। उसने पूछा, क्या है वह? उसके पिता ने कहा, जो शास्त्रों में नहीं लिखा है, जो वेदों-पुराणों में नहीं लिखा है, जो कभी लिखा नहीं जा सका, जो कभी लिखा नहीं जा सकेगा, उसे जो पढ़ लेता है, वही तो पढ़ता है। और उसे जो पढ़ लेता है, उसे जान कर वह सब जान लेता है। तो तुम अगर किताब ही पढ़ कर लौटे हो, तो अभी पढ़ना तुम्हारा शुरू भी नहीं हुआ।
उसने कहा, उसे मैं कैसे जानूं? और उसे जानना क्या जरूरी है?

उसके पिता ने कहा, हमारे परिवार में अब तक ब्राह्मण होते रहे हैं, ब्राह्मण-बंधु नहीं। उसके पुत्र ने पूछा, इसमें फर्क क्या है? उसने कहा, जो ब्राह्मण के घर में पैदा होने से ब्राह्मण कहलाए, वह ब्राह्मण-बंधु है। और जो ब्रह्म को जानने से ब्राह्मण कहलाए, वह ब्राह्मण है।
मुझे बात ठीक लगती है। जो क्रिश्चियन के घर में पैदा होने से क्रिश्चियन कहलाए, वह क्रिश्चियन-बंधु है। जो जैन घर में पैदा होने से जैन कहलाए, वह जैन-बंधु है। जैन होना, क्रिश्चियन होना बड़ी दूसरी बातें हैं। तो मैंने उनको कहा कि मुझे तो यह दिखाई पड़ता है कि महावीर की क्रांति शब्द के विपरीत है और निःशब्द के पक्ष में है, शास्त्र के विपरीत है और स्वयं के पक्ष में है। सारे शास्त्रों से और सारे सिद्धांतों के जाल से महावीर मुक्त करना चाहते हैं, ताकि आपका अंतर्गमन हो सके। शास्त्र बाहर हैं और सत्य भीतर है। जो शास्त्रों में खोजेगा, वह खोजेगा, पा नहीं सकेगा। और जो भीतर डूबेगा, वह पा लेगा।
एक बात और कहूं, जो भीतर पा लेता है, वही शास्त्र को समझ भी पाता है। क्योंकि जो भीतर अनुभव कर लेता है, अनुभव ही उन शब्दों के अर्थों को भी स्पष्ट कर जाता है। जो स्वयं को जानता है, वह शास्त्र को समझ पाता है। जो शास्त्र को ही समझता रहता है, वह कभी स्वयं को नहीं जान पाता।
महावीर की बुनियादी क्रांति शब्द के, सिंबल के विपरीत है, प्रतीक के विपरीत है। और अगर वे कहते हैं कि मेरी बात शास्त्र के विपरीत मालूम होती है, तो मैंने कहा, हो सकता है, मेरी बात महावीर के पक्ष में हो, इसलिए शास्त्र के विपरीत पड़ जाती हो। अब तक सारे शास्त्र, जिन्होंने सत्य जाना है, उनके विपरीत पड़ जाते हैं। यह बड़ी आश्चर्य की बात है! यह बहुत आश्चर्य की बात है, ऐसा हो जाता है और उसका कारण है।
मैंने एक बाउल फकीर का एक गीत पढ़ा था। उसने अपने गीत में कहा है, जब कोई व्यक्ति धर्म की ज्योति को उपलब्ध होता है, तो उसके हाथ में ज्ञान की मशाल आ जाती है। उसकी मशाल से प्रभावित होकर न मालूम कितने अंधे और आंखहीन लोग उसके पीछे हो जाते हैं। उसके अनुग्रह में, उसके प्रेम में, उसके प्रकाश की संभावना में बहुत लोग उसके पीछे चलने लगते हैं। फिर वह आदमी एक दिन समाप्त हो जाता है। और जब वह आदमी गिरता है तो उसकी मशाल भी गिर जाती है। और तब कोई अंधा उनमें से, जो पीछे उसके हो गए थे, उस मशाल को उठा लेता है। लेकिन दुर्घटना यह हो जाती है, उस मशाल में जो ज्योति थी, वह डंडे में नहीं थी। उस मशाल में जो ज्योति थी, वह उस आदमी के प्राणों में थी, जो उसे पकड़े था। उस ज्योति को अपने प्राणों से वह जलाए था। उसके गिरते ही ज्योति तो बुझ जाती है, डंडा हाथ में रह जाता है! और अंधे उस डंडे को लेकर चलते हैं! वह जो धर्म का डंडा है, उसे लेकर चलते हैं, जिसकी ज्योति बुझ जाती है! इसलिए ये डंडे आपस में टकराते हैं।
बहुत से अंधे हैं जमीन पर। बहुत से अंधे उन डंडों को लिए हैं। और वे सारे अपने-अपने डंडों को लेकर अंधेरे में चल रहे हैं! इसलिए उनकी आपस में टक्कर हो जाती है। धर्मों की कहीं टक्कर हो सकती है? दो धर्म कहीं लड़ सकते हैं?
लेकिन धर्म लड़ते हुए मालूम पड़ते हैं! इसका अर्थ है कि वहां धर्म नहीं होगा, वहां डंडे रह गए हैं अंधे आदमियों के हाथों में। और अंधे अंधों का नेतृत्व करते हैं! यह दुर्भाग्य है, और यह सदा होता रहा है, और इसके पीछे कारण है।
इसके पीछे कारण है। जो व्यक्ति भी यह सोचता हो कि दूसरे की ज्योति से मैं चल सकता हूं, वह गलती में है। अपनी ज्योति से ही केवल चलना होता है। एक साधु एक संध्या को अपने एक मित्र साधु को विदा करता था। रात अंधकार
से भरी थी। उसके मित्र ने कहा, इस अंधेरे में मैं कैसे जाऊं? उसके दोस्त साधु ने कहा, मैं दीया जला देता हूं। उसने एक दीया जलाया और अपने मित्र के हाथों में दिया। लेकिन जैसे ही वह मित्र दीए को लेकर सीढ़ियां उतरने लगा, उस साधु ने उस दीए को फूंक कर बुझा दिया! घुप्प अंधकार और भी गहरा हो गया! उसके मित्र ने कहा, यह क्या किया? दीया दिया और बुझा भी दिया? उसके मित्र ने कहा, दूसरे का दीया काम नहीं पड़ता। अपनी ज्योति हो तो ही अंधकार से बचना है। अपनी ज्योति न हो, दूसरे के दीए काम नहीं पड़ते हैं।

मैं आपको कहूं, महावीर का दीया भी आपके काम नहीं पड़ सकता, जब तक कि आपके भीतर दीया अपना न जल जाए।
इस बात को महावीर ने बड़े अदभुत ढंग से कहा। इस बात को उन्होंने बड़े गहरे ढंग से कहा, बड़े गहरे ढंग से प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा, परमात्मा के प्रसाद से भी कोई सत्य को नहीं पा सकता है। उन्होंने कहा, किसी गुरु-कृपा से कोई सत्य को नहीं पा सकता है। किसी के आशीर्वाद से, किसी से भिक्षा में, किसी से दान में, किसी से चोरी में सत्य को नहीं पाया जा सकता। सत्य को पाना हो तो स्वयं का श्रम करना होगा। इसलिए महावीर की परंपरा श्रमण परंपरा कहलाई। उसका अर्थ है कि अपनी मेहनत, और अपनी मेहनत के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। और जो अपनी मेहनत के सिवाय कोई रास्ता सोचता हो, उसके मन में चोरी है, उसके मन में भिक्षा है। और सब मिल जाए चोरी से, सत्य नहीं मिल सकता है। जो न चुराया जा सकता है, जो न मांगा जा सकता है, जो न छीना जा सकता है, जिसे तो केवल अपने श्रम से ही उपजाना होता है, ऐसे सत्य को पाने की जो परंपरा है, वह श्रमण परंपरा है। और मेरा मानना यह है कि सारी दुनिया में जब भी किन्हीं ने सत्य पाया है, तब वे श्रमण रहे हैं, तब उन्हें श्रम करना पड़ा है। मुफ्त में सत्य कभी किसी को उपलब्ध नहीं हुआ।
तो जिस महावीर ने यह कहा हो कि अपने ही श्रम और अपनी ही प्रतिष्ठा और अपने ही आधार पर खड़े होकर, अशरण, सारी शरण छोड़ कर जो व्यक्ति अपनी साधना में संलग्न होता है, वह सत्य को पाता है। उसका मानने वाला कोई कहता हो कि मेरी बात शास्त्र के विपरीत पड़ जाती है, तो मैंने कहा, सोचना तुम, मेरी बात शास्त्र के विपरीत नहीं पड़ती होगी, तुम्हारे विपरीत पड़ जाती होगी। और जिस दिन जानोगे भीतर, तो पाओगे कि जो मैं कह रहा हूं, वह मैंने चाहे शास्त्र देखा हो या न देखा हो, इससे भेद नहीं पड़ता। अगर सत्य कुछ है तो आपने कोई भी शास्त्र न देखा हो और अपने भीतर प्रविष्ट हो जाएं तो सारे शास्त्र देख लिए हो जाएंगे। और आपकी वाणी और आपका विचार और आपकी अनुभूति की गवाही सारे शास्त्र बन जाएंगे। और जिसने शास्त्र सीखे हों, उनको दोहरा कर रट लिया हो, उनको स्मरण कर लिया हो, उनके सूत्रों को दोहरा कर समझाना शुरू कर दिया हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। इसलिए मैंने कहा, शास्त्र नहीं, स्वयं--महावीर की प्रतिष्ठा है। स्वयं के प्रवेश को उनका आग्रह है।
और यह आग्रह, यह आग्रह इस पूरे मनुष्य के इतिहास में अलौकिक है, असाधारण है। इससे ज्यादा सम्मान मनुष्य को और किसी ने नहीं दिया, जितना महावीर ने दिया है। इससे ज्यादा सम्मान और गरिमा और गौरव, और किसी ने नहीं दिया मनुष्य को, जितना महावीर ने दिया है। क्योंकि महावीर ने कहा, परमात्मा कहीं ऊपर नहीं है, परमात्मा प्रत्येक के विकास का अंतिम चरण है। परमात्मा प्रत्येक के भीतर है।
क्षुद्रतम मनुष्य को जिसने परमात्मा कहा; क्षुद्रतम, निम्नतम, पाप में घिरे मनुष्य के जिसने परमात्मा होने की घोषणा की--इससे बड़ा और सम्मान क्या हो सकता है? और जिसको कहा कि स्वयं परमात्मा है व्यक्ति, उसके ऊपर कोई शास्त्र नहीं हो सकता, उसके ऊपर कोई गुरु नहीं हो सकता, उसके ऊपर कोई संप्रदाय नहीं हो सकता। ये सारे बंधन हैं। और व्यक्ति इनको छोड़ कर स्वयं में प्रविष्ट हो तो वह अपने परमात्म-तत्व को, अपनी आत्मा को जानने में समर्थ होता है।
इसलिए मैंने कहा, अगर बात शब्दों के विपरीत भी पड़ती हो, तो पड़ जाने दें।
फिर मैं यह सोचा, मुझे यह भी बताया गया कि मैं यह कहता हूं कि महावीर
ने मूर्तियों का विरोध किया है, मैं यह कहता हूं कि महावीर ने मूर्तियों का विरोध किया है, और परंपरा तो मूर्तियों को पूजती है। मैंने कहा, मुझे मूर्तियों से क्या लेना-देना है, लेकिन इतना मैं कहूंगा, महावीर ने मूर्त का विरोध किया है और अमूर्त में प्रवेश का आग्रह किया है।
महावीर का आग्रह क्या है? महावीर का आग्रह है कि जो दिखाई पड़ता है, वह मूल्यवान नहीं है। जो नहीं दिखाई पड़ता और जो पीछे छिपा है, जो अदृश्य है, जो दृश्य नहीं बनता, वह मूल्यवान है। महावीर यह कहते हैं, जिसका रूप है, उसका कोई मूल्य नहीं है; जिसका रूप नहीं है, उसका मूल्य है। यह मेरी देह दिखाई पड़ रही है, यह मेरी मूर्ति है, लेकिन यह मैं नहीं हूं। और अगर मेरी इस

देह को आकर कोई पत्थर मारे, तो उसने मेरी मूर्ति को पत्थर मारे, मुझे पत्थर नहीं मारे। और अगर मेरी इस देह को कोई काट दे और टुकड़े-टुकड़े कर दे, तो उसने मेरी मूर्ति को खंडित किया, मुझे खंडित नहीं किया।
जो दिखाई पड़ रहा है, वह मूर्ति है। जो नहीं दिखाई पड़ता, जो कभी दिखाई नहीं पड़ सकता, क्योंकि जो हमेशा देखने वाला है, जो हमेशा द्रष्टा है और दृश्य नहीं हो सकता, उस आत्मा के लिए महावीर का आग्रह है। महावीर का तो पूरा आग्रह अमूर्त के लिए है। लेकिन पागल हम हो सकते हैं कि महावीर की भी मूर्ति बना कर हम पूजें।
महावीर की जो मूर्ति है, वह महावीर के शरीर की मूर्ति होगी, महावीर की मूर्ति कैसे हो जाएगी? महावीर की जो मूर्ति बनाई है, वह उनकी देह की मूर्ति होगी, महावीर की मूर्ति कैसे हो जाएगी? महावीर की कोई मूर्ति बना सकता है? यह असंभव है और यह कभी संभव नहीं हुआ और न कभी होगा। जिसको देखा भी नहीं जा सकता जिस आत्मा को, उसकी मूर्ति क्या बनाई जा सकेगी? और महावीर का असली शरीर खंड-खंड होकर नष्ट हो गया और मिट्टी में मिल गया, तो तुम्हारी मूर्तियों को तुम कब तक सम्हाले रखोगे?
और पागल हो, असली मूर्ति जब खंड-खंड होकर मिट्टी हो जाती है तो अगर मैं तुम्हारी मूर्तियों को कहूं कि उन्हें छोड़ दो--जो खंड-खंड हो जाता है, उसका कोई मतलब नहीं है--तो मुझ पर नाराज मत हो जाना। और यह मत समझ लेना कि महावीर के प्रति मेरी दृष्टि अश्रद्धा की है। मैं जानता हूं, अश्रद्धा आपकी है, जो महावीर को पत्थर में खोजते हों। मेरी तो श्रद्धा है, क्योंकि मैं उन्हें चिन्मय में खोजता हूं, अमृत में और अमूर्त में खोजता हूं।
फिर मैंने कहा, ठीक ही है। जो मूर्तिपूजक हैं, अगर वे यह सोचें कि हम पत्थर मारेंगे, तो ठीक ही सोचते हैं, उनकी विचार-सरणी गलत नहीं है, पत्थर से ऊपर वे सोच भी नहीं सकते हैं। पत्थर से ऊपर उनकी धारणा नहीं हो सकती। अपने मित्र को मैंने सुबह कहा, उनसे कहो कि वे पत्थर मारें, उससे उनका मूर्तिवादी होना जाहिर होगा और मुझे मौका मिलेगा। अगर उनके पत्थर मुझे लगें और फिर भी मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम हो, तो मैं समझूंगा कि महावीर के प्रति मैंने श्रद्धांजलि जाहिर कर दी। तो मैंने उनसे कहा, उन्हें कहो कि वे पत्थर मारें। वे गलती करेंगे अगर पत्थर मुझे नहीं मारेंगे, क्योंकि उससे जाहिर होगा कि उनकी श्रद्धा क्या है और मुझे भी मौका मिलेगा कि मैं जाहिर कर सकूं कि मेरी श्रद्धा क्या है। ईश्वर वह मौका दे कि मुझ पर पत्थर गिरें। ईश्वर मुझे मौका दे कि मैं देख सकूं कि मेरे भीतर उन पत्थरों के बीच भी प्रेम उठता है या नहीं। अगर प्रेम नहीं उठा, तो फिर प्रेम की बात करना बंद कर दूंगा। फिर उसका कोई मतलब नहीं रह जाएगा। तो मैं निमंत्रण देता हूं, अगर किसी के भी मन में पत्थर मारने का कोई ख्याल आता हो, तो जरूर उसका उपयोग कर ले।
और मैं यह कहना चाहता हूं कि महावीर की शिक्षा में, महावीर की बुनियादी शिक्षा में मुझे दो ही बातें दिखाई पड़ती हैं, और उनमें प्रेम प्रथम है। जिसको महावीर ने अहिंसा कहा है, वह प्रेम है। जिसको महावीर ने अहिंसा कहा है, वह प्रेम के सिवाय और क्या है?
महावीर की जीवन-साधना को मैं विचार करता हूं, तो मुझे दो बात दिखाई पड़ती हैं। एक तो बात मुझे यह दिखाई पड़ती है कि महावीर सत्य को पाने को उत्सुक हैं। सत्य का वे अनुसंधान कर रहे हैं। और दूसरी बात मुझे यह दिखाई पड़ती है कि वे प्रेम का विस्तार कर रहे हैं। सत्य को भीतर खोद रहे हैं और प्रेम को बाहर फैला रहे हैं। सत्य तो भीतर पाया जाता है और प्रेम बाहर फैलाया जाता है। जब अपने अंतिम अणु की आखिरी इकाई में कोई व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता है, तो वह सत्य को उपलब्ध होता है। और जब इस विराट जगत के अंतिम प्राणी तक कोई व्यक्ति अपने प्रेम को पहुंचा देता है, तो वह सत्य को उपलब्ध होता है।
सत्य का विकास दोतरफा हैः अपने भीतर प्रविष्ट हों तो आंतरिक गहराई में ज्ञान उपलब्ध होगा और समस्त के भीतर प्रविष्ट हो जाएं, तो आंतरिक गहराई में प्रेम या अहिंसा उपलब्ध होगी। जैसे कोई वृक्ष बढ़ता है, तो नीचे उसकी जड़ें गहरी जाती हैं और ऊपर उसका पौधा बढ़ता चला जाता है। जिस व्यक्ति

की सत्य में जितनी गहराई बढ़ेगी, उसके जीवन के बाहर के पौधे में प्रेम उतना ही बढ़ता चला जाएगा।
प्रेम परीक्षा और कसौटी है।
इसलिए महावीर ने कहा, अहिंसा परम धर्म है।
महावीर ने कहा, अहिंसा ज्ञान की कसौटी और परख है।
अगर ज्ञान के बाद अहिंसा न आ जाए, तो वह ज्ञान झूठा होगा, वह मिथ्या होगा।
हम ज्ञान को तो नहीं जान सकते, हम तो प्रेम को जान सकते हैं। महावीर के ज्ञान को आपने देखा है? महावीर के ज्ञान को कैसे देखिएगा? महावीर को जो सत्य उपलब्ध हुआ है, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? क्राइस्ट को जो सत्य उपलब्ध हुआ है, किसी ने देखा? वे तो हमारे अनुमान हैं कि उनको सत्य उपलब्ध हुआ। हमने देखा है उनका प्रेम, हमने पहचाना है उनका प्रेम। और वह अनंत प्रेम ने हमें यह गवाही दी है कि भीतर सत्य उपलब्ध हुआ होगा। अगर भीतर सत्य उपलब्ध न हो तो इतना अनंत प्रेम कैसे हो सकता है?
प्रेम परीक्षा और प्रमाण है। उसे महावीर ने अहिंसा कहा है।
अहिंसा का मतलब इतना नहीं है कि दूसरे को दुख मत पहुंचाओ। जबरदस्ती दूसरे को कोई दुख पहुंचाने से रुक जाए, तो वह अपने को दुख पहुंचाना शुरू कर देता है। दुख पहुंचाने की इतनी इच्छा रहती है कि अगर दूसरे को दुख पहुंचाने से जबरदस्ती रुक जाएं, तो आप अपने को दुख पहुंचाना शुरू कर देंगे। ऐसे फकीर और साधु हुए हैं, जो अपने शरीर को इसलिए सता रहे हैं कि सताने का जो मजा वे दूसरों पर ले सकते थे, वह मजा उन्होंने बंद कर दिया है। वे अपने शरीर को सता रहे हैं। ऐसे फकीर हुए हैं कि जो अपने पेट में, अपनी कमर में कांटों के पट्टे पहने रहेंगे, ताकि कांटे उनकी कमर में घुसते रहें और घाव बना रहे। ऐसे फकीर हुए हैं, जो जूतों में उलटी खीलियां लगा लेंगे, ताकि पैरों में घाव बने रहें और उन घावों में से हमेशा रक्त बहता रहे। ऐसे फकीर हुए हैं, जो अपनी जननेंद्रियां काट लेंगे, अपनी आंखें फोड़ लेंगे।
इन पागलों को कोई साधु कहेगा? ये वे लोग हैं, जिन्होंने हिंसा की वृत्ति को बाहर जबरदस्ती रोक लिया है। लेकिन वेग रुकते नहीं हैं, अगर बाहर जाने से रोक देंगे, वे खुद पर पलट जाते हैं। जो आदमी जबरदस्ती बाहर हिंसा रोकेगा, वह आत्म-हिंसा में लग जाता है। वह अपने पर हिंसा करना शुरू कर देता है।
महावीर आत्म-हिंसा को नहीं कह रहे। इसलिए महावीर हिंसा त्याग को नहीं
कह रहे हैं। महावीर से किसी ने पूछा, अहिंसा क्या है? तो महावीर ने कहा, आत्मा अहिंसा है।
बड़ा ही अदभुत उत्तर दिया। और इससे गहरा कोई उत्तर जमीन पर आज तक नहीं दिया गया है। बड़ा अजीब, असंगत मालूम होता है। हम पूछते हैं, अहिंसा क्या है? महावीर कहते हैं, आत्मा अहिंसा है! मतलब क्या है?
मतलब यह है कि जो आदमी अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाएगा, वह आदमी अहिंसा को उपलब्ध हो जाएगा। और जो आदमी अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित नहीं है, वह केवल हिंसा निरोध कर सकता है, अहिंसा को नहीं पा सकता है। हिंसा छोड़ देनी एक बात है, अहिंसा पा लेनी बिल्कुल दूसरी बात है। अहिंसा बहुत पाजिटिव है, बहुत विधायक है। और विधायक है, इसलिए मैंने कहा प्रेम है।
तो महावीर की साधना दो शब्दों में बंटी हैः सत्य और अहिंसा।
सत्य को पाना हो, तो महावीर कहते हैं, सब छोड़ कर अपने भीतर प्रविष्ट हो जाओ। महावीर कहते हैं, जो भी मूर्त है, उसे छोड़ दो। आंख से जो दिखाई पड़ता है, आंख में इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहां कुछ दिखाई न पड़े। कान से सुनाई पड़ता है, कान में इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहां कुछ सुनाई न पड़े। पांचों इंद्रियों से जो घटित होता है, उसमें इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहां किसी इंद्रिय का कोई प्रभाव न पहुंचता हो। उस अवस्था में, जहां इंद्रियों का कोई प्रभाव नहीं पहुंचता, अतीन्द्रिय चेतना में प्रवेश शुरू होता है। जहां सब मूर्त प्रभाव क्षीण हो जाते हैं, जहां कोई मूर्त खबर नहीं पहुंचती, जहां जगत का कोई समाचार नहीं पहुंचता, वहां व्यक्ति अपने से संबंधित और अपने में प्रतिष्ठित होता है। वहां वह स्वयं को जानता है। स्वयं को जानना है तो समस्त पर से विमुक्त, समस्त पर से दूर

हट जाओ, भीतर प्रविष्ट हो जाओ। उस एकांत तनहाई में अपने को जाना जा सकता है।
मैंने एक साधु के संबंध में पढ़ा। एक साधु एक पहाड़ के किनारे खड़ा था। उसके कुछ मित्र उससे मिलने गए। उन्होंने रास्ते में सोचा, यह साधु उस पहाड़ पर खड़ा-खड़ा क्या करता होगा? एक व्यक्ति ने कहा, कभी-कभी उसके कुछ मित्र साथ आते हैं, वे शायद पीछे छूट गए हों, वह उन्हें देख रहा होगा, उनकी प्रतीक्षा करता होगा। दूसरे मित्रों ने कहा, हमें विश्वास नहीं आता कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। उसे देख कर प्रतीक्षा का बोध नहीं होता। किसी ने कहा, कभी-कभी उसकी गाय खो जाती है। वह अपनी गाय को शायद पहाड़ी पर खड़ा होकर खोजता हो। तीसरे मित्र ने कहा, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। तीसरे ने कहा, ऐसा प्रतीत होता है, शायद वह प्रभु का चिंतन और ध्यान कर रहा है। वे निर्णय नहीं कर सके। उन्होंने कहा, हम चलें और पूछ लें।
वे गए और उन्होंने उस साधु को पूछा। उससे पूछा, आपका कोई मित्र आया है,
जो पीछे छूट गया है, और आप प्रतीक्षा करते हैं? उस साधु ने कहा, नहीं। उन्होंने पूछा, आपकी गाय खो गई है क्या, आप पहाड़ी में देख रहे हैं? उस साधु ने कहा, नहीं। उन्होंने पूछा, क्या आप प्रभु का चिंतन कर रहे हैं? प्रभु की प्रार्थना कर रहे हैं? उस साधु ने कहा, नहीं। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, फिर आप क्या कर रहे हैं? उस साधु ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। सब करना छोड़ कर खड़ा हुआ हूं।
महावीर ने इस अवस्था को सामायिक कहा है, इसको ध्यान कहा है। जब मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं और सब छोड़ कर चुपचाप रह गया हूं। उस मौन की अवस्था में--जब मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मेरी इंद्रियों के सारे व्यापार शून्य हो गए हैं, जब मेरी सारी इंद्रियों की चहल-पहल बंद हो गई है, जब मेरे चित्त की सारी दौड़ निरुद्ध हो गई है--उस घड़ी में, उस क्षण में मुझे स्वयं का दर्शन होता है। सत्य को जानना हो तो चित्त-निरोध के माध्यम से स्वयं में प्रविष्ट होना होता है। और जो व्यक्ति स्वयं में प्रविष्ट हो जाता है, उसे अदभुत अनुभव होता है।
उसे अनुभव होता है पहलाः उसे दिखाई पड़ता है, जो मेरे भीतर है, वह सबके भीतर है। और जैसे ही उसे यह दिखाई पड़ता है, जो मेरे भीतर है, वह सबके भीतर है, उसका जीवन प्रेम से आपूरित हो जाता है, उसके जीवन में अहिंसा आ जाती है। जैसे ही उसे दिखाई पड़ता है कि जो मेरे भीतर है, उसे यह भी दिखाई पड़ता है, वह जो भीतर है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। उसका सारा भय विलीन हो जाता है। भय के साथ परिग्रह चला जाता है। क्योंकि परिग्रह वे करते हैं, जो भयभीत हैं। परिग्रह मूल बीमारी नहीं है, मूल बीमारी भय है। जो जितना भयभीत है, उतना परिग्रह करता है। कंजूस के ऊपर दया करो, वह भयभीत है, इसलिए परिग्रह कर रहा है। जो जितना अभय होता है, उतनी ही सुरक्षा का विचार छोड़ देता है। जो जितना अभय होता है, उतना परिग्रह छोड़ देता है।
मोहम्मद जिस रात मरने को थे... । उनका रोज का नियम था, सांझ को--लोग जो उन्हें भेंट कर जाते--सांझ को खाने के बाद जो बचता, वे बांट देते। एक भी चावल का दाना घर में न रखते। जिस रात वह मरने को थे, बीमार थे, और वैद्यों ने कहा, मर जाएंगे, उनकी पत्नी को डर हुआ। उसने पांच दीनार, पांच रुपए बचा कर रख लिए कि शायद रात, असमय में बीमारी बढ़ जाए और वैद्य को बुलाना पड़े। मोहम्मद आधी रात को बोले कि मुझे ऐसा लगता है, मेरे घर में कोई परिग्रह किया गया है। उसकी पत्नी ने कहा, तुम्हें यह कैसे पता चला? मैंने पांच रुपए रोके हैं, लेकिन तुम्हें यह पता कैसे चला? मोहम्मद ने कहा, तू इतनी भयभीत मालूम हो रही है कि मुझे शक हुआ। इतना भयभीत आदमी अपरिग्रही नहीं हो सकता।
सोचते हैं आप! मोहम्मद ने कहा, तू इतनी भयभीत है मेरे मरने से कि मैं
यह समझ भी नहीं सकता कि तूने रुपए न बचाए होंगे। रुपए बांट दे, ताकि मैं निश्चिंत मर सकूं; और यह नाम मेरे पीछे न रहे कि मोहम्मद के मरते वक्त पांच रुपए पास में थे।
वे रुपए बांट दिए गए और मोहम्मद ने चादर ओढ़ ली और लोगों ने देखा, उनकी श्वास विलीन हो गई। मोहम्मद ने यह कहा कि तू इतनी भयभीत है, इसलिए मैं जान रहा हूं कि तूने जरूर कुछ रोका होगा।

यह मैंने इसलिए कहा कि जिसके भीतर भय है, वह परिग्रही होगा। इसलिए मैं आपसे परिग्रह छोड़ने को क्या कहूं! परिग्रह छोड़ने के लिए पागल कहते होंगे। मैं आपसे भय छोड़ने को कहता हूं। भय जड़ है। परिग्रह कोई जड़ नहीं है। और भय तब छूटेगा, जब आपको दिखाई पड़े कि मेरे भीतर जो है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। क्योंकि मृत्यु एकमात्र भय है, और सब भय का मूल आधार है।
जो व्यक्ति स्वयं में प्रविष्ट होता है, वह देखता है कि मैं अमृत हूं,
और तलवारें मुझे छेद नहीं सकतीं, और अग्नि मुझे जला नहीं सकती, और पवन मुझे उड़ा नहीं सकता। कोई रास्ता नहीं है कि मुझे खंड-खंड और टुकड़े-टुकड़े किया जा सके। मैं अखंड और अमृत हूं। ऐसा जो बोध है, उसका परिणाम अपरिग्रह होता है।
और जब कोई अपने भीतर प्रविष्ट होता है तो उसे दिखाई पड़ता है, यह आत्मा
न तो स्त्री है, न पुरुष है। इस आत्मा का न तो कोई काम है, न कोई राग है। तब उसके जीवन से अब्रह्मचर्य गिर जाता है और ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। मैं आपको यह कह रहा हूं कि जो सत्य को जानता है, अनिवार्यतया सत्य के अनुभव के बाद उसके जीवन में अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के फूल लग जाते हैं। जो सत्य के बीज बोता है, वह अहिंसा, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य की फसल काटता है।
तो अगर अहिंसा पानी हो, प्रेम पाना हो, अपरिग्रह पाना हो, तो अपरिग्रह साधने में मत लग जाना, अहिंसा साधने में मत लग जाना। वैसी साधी हुई और कल्टीवेटेड अहिंसा झूठी होती है। वह अभिनय है, वह एक्टिंग है, वह असलियत नहीं है। इसलिए ऊपर से अहिंसा मालूम होगी और भीतर हिंसा बनी रहेगी।
कल मुझे किसी ने कहा कि कोई साधु हैं, जो मेरा विरोध करते हैं। मेरी एक प्यारी बहन मेरे साथ थी। उसने कहा कि फिर वे साधु नहीं होंगे। क्योंकि साधु को किसी से क्या विरोध हो सकता है! और जिसको विरोध हो सकता है किसी से, वह साधु कैसे हो सकेगा! तो साधुता ऊपर होगी, विरोध भीतर है। असाधुता भीतर होगी। हम ऊपर कपड़े ओढ़ ले सकते हैं, उसमें क्या दिक्कत है? और इस जमीन पर सारे लोग कपड़े ओढ़े हुए हैं और उनके असली नंगे आदमियों का हमें पता नहीं चल रहा है।
तो मैं आपको यह कहूं कि अहिंसा ऊपर से मत थोपना, कागज के फूल ऊपर से मत चिपका लेना। अगर सच में चाहते हैं कि अहिंसा के फूल विकसित हों, तो समाधि को साधना, सत्य को साधना, स्वयं में प्रविष्ट होना।
महावीर की मूल शिक्षा स्वयं-प्रवेश की है।
महावीर की मूल शिक्षा आत्म-बोध और आत्म-ज्ञान की है।
और जो अपने को जानता है, वह सब पा लेता है। सारे गुण उसमें बहे चले आते हैं। सारी श्रेष्ठताएं, सारी नैतिकताएं उसके पीछे छाया की तरह लग जाती हैं। जो स्वयं को जानता है, उसके जीवन में क्रांति अनायास हो जाती है।
स्वयं को जानना एकमात्र चर्या में परिवर्तन, एकमात्र आचरण की क्रांति का मूल आधार है।
ऐसे मैं सत्य को महावीर की मूल आधार, मूल साधना अनुभव करता हूं।
और इस सत्य को जो पाना चाहे स्वयं में प्रविष्ट होकर, उसे कुछ बातें छोड़ देनी होंगी। पहली बात उसे यह छोड़ देनी होगी कि सत्य के संबंध में उसने जो धारणाएं बना ली हों, जो बिलीव्स बना लिए हों, जो विश्वास बना लिए हों, वे छोड़ देने होंगे। अज्ञान में सत्य के संबंध में जो भी धारणा होगी, वह असत्य होगी। सत्य को जिसे जानना है, उसे सारे विश्वास, सारी आस्थाएं छोड़ देनी होंगी और हिम्मत से शून्य में कूदना होगा। क्योंकि अगर हम सत्य के संबंध में पहले से धारणाएं बना लें, तो हम सत्य को कभी नहीं जान सकेंगे।
हम सत्य को तभी जान सकेंगे, जब हम सत्य के पास धारणा-शून्य होकर पहुंचें, खाली और रिक्त होकर पहुंचें, हमारे मन में कोई विचार न हो। हमारे मन में कोई धारणा, कोई कांसेप्ट न हो, कोई सिद्धांत न हो, कोई डॉक्ट्रिन न हो, कोई डॉग्मा, कोई संप्रदाय, कोई धर्म न हो। जब खाली और शून्य कोई अपनी आंखों को उठाता है, जब कोई मौन होकर अपनी आंखों को सत्य की तरफ उठाता है, तो उसे दर्शन होते हैं उसके, जो है। और जब तक कोई सोचता-विचारता है, तब तक उसके दर्शन नहीं होते, जो है।

अगर प्रकाश को जानना है तो आंख खोलो, प्रकाश को सोचो मत। और अगर सत्य
को जानना है, तो स्वयं में भीतर प्रविष्ट हो जाओ, सत्य के संबंध में विचार और धारणाएं मत बनाओ। धारणाएं और विचार बनाने वाले पंडित हो सकते हैं, प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं होते।
महावीर कहते हैं, सब छोड़ दो और निराधार हो जाओ।
कल-परसों मैं एक कहानी कहता था। महावीर का शिष्य था गौतम। और महावीर
के निर्वाण होने के समय तक गौतम को केवल-ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ था। महावीर ने उससे कहा कि तूने सब छोड़ दिया है। तू मुझको भी छोड़ दे। तो तुझे केवल-ज्ञान उपलब्ध हो जाएगा।
लेकिन महावीर जैसे प्यारे आदमी को छोड़ना क्या आसान है! संसार छोड़ देना बहुत आसान है। इन अदभुत पुरुषों के चरण छोड़ने कैसे आसान है! लेकिन अदभुत हैं, अलौकिक हैं वे लोग जो अपने चरण छोड़ने को भी कहे हैं।
महावीर ने कहा, तू मुझे छोड़ दे। एक ही बाधा रह गई है कि तू मुझमें अटका है। यह अटकन भी छोड़ दे और मुक्त हो जा! सारी अटकन छोड़ दे, निराधार हो जा! जो निराधार हो जाता है, वह स्वयं के आधार को पा लेता है। जो बाहर किसी
भी आधार को पकड़े है, वह अपने को कैसे पा सकेगा? जब तक बाहर दृष्टि है, भीतर कैसे पहुंचेंगे? महावीर भी बाहर हैं, तीर्थंकर भी बाहर हैं, भगवान भी बाहर हैं। सबसे अशरण हो जाओ।
महावीर का निर्वाण हो गया। जब महावीर की मृत्यु हुई, मोक्ष हुआ, तो गौतम गांव के बाहर गया था। रास्ते में लौटते राहगीरों ने कहा, महावीर ने देह छोड़ दी। गौतम रोने लगा। उसने कहा, मेरा अब क्या होगा? उन भगवान के रहते मैं सत्य को न जान सका, अब मेरा क्या होगा? अब तो मैं निराधार हो गया, अब तो मेरा दीप बुझ गया, अब तो मेरा मार्गदर्शक खो गया। अब मेरा कौन है?
उन राहगीरों ने कहा, उन परम कृपालु भगवान ने अंतिम समय में तुम्हारे लिए एक सूत्र-वचन छोड़ा है। गौतम ने कहा, क्या कहा है, मुझे शीघ्र कहो! और वह वचन अदभुत था। और उस वचन को हृदय में रख लें। सारे धर्मों के लोग उस वचन को हृदय में रख लें। बहुमूल्य है वचन। महावीर ने कहा, गौतम, तू सारी नदी को पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुक गया है! किनारे को भी छोड़ दे। महावीर ने कहा, गौतम, तू सारी नदी पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुक गया है! किनारा भी छोड़ दे। और इस वचन को सुनते ही गौतम को ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक ही संध्या बाद गौतम को केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया! उसने सत्य को जाना।
जिसे सत्य को जानना है उसे संपत्ति ही नहीं छोड़नी पड़ती, जिसे सत्य को जानना है उसे चित्त से सारा कचरा छोड़ देना होता है और शून्य हो जाना होता है। जो शून्य होगा, वह पूर्ण को पाने का हकदार हो जाता है। और जो सब छोड़ देगा, वह सब पाने का अधिकारी बन जाता है। यही संन्यास है।
संन्यास का अर्थ बाहर कपड़े-लत्ते छोड़ देने से नहीं है। संन्यास का अर्थ, भीतर जो कपड़े-लत्ते और फर्नीचर इकट्ठा हो गया है दिमाग में, उसको छोड़ देने से है। भीतर जो कचरा-कबाड़ इकट्ठा हो गया है, उसे छोड़ देने से है। और स्मरण रखें, उस कचरे में कई चीजें सोने की भी हैं, लोहे की भी हैं। लोहा छोड़ देने में उतनी दिक्कत नहीं होती। असली सवाल सोने को छोड़ देने का है। भीतर चित्त से शुभ और अशुभ के जो विचार छोड़ देगा, वह शुद्ध आत्मा को उपलब्ध होता है। अशुभ के विचार छोड़ना आसान है, शुभ के विचार छोड़ना कठिन है। लेकिन जो शुभ-अशुभ दोनों को छोड़ देता है, जो पाप-पुण्य दोनों चिंतनाओं को छोड़ देता है, जो धर्म-अधर्म दोनों चिंतनाओं को छोड़ कर शून्य में प्रविष्ट होता है, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है। तब वही केवल शेष रह जाता है, जो है। वही केवल शेष रह जाता है, जिसकी सत्ता है। वही केवल शेष रह जाता है, जो सत्य है। उसे जान कर अपूर्व आनंद को, अपूर्व मुक्ति को व्यक्ति अनुभव करता है। उसके पहले हम मुर्दे हैं। उसके पहले कोई अपने को जीवित न समझे। उस सत्य को जानने के पहले हम मुर्दे हैं।
इसलिए मैं कहता हूं कि मुर्दे हैं। मैं अपना स्मरण करता हूं। मैं जिस दिन पैदा हुआ, उस दिन से मैं जान रहा हूं कि मैं रोज मर रहा हूं, मैं रोज मरता जा रहा हूं। एक दिन यह मरण की प्रक्रिया पूरी हो जाएगी। इसको मैं जीवन कैसे कहूं, यह तो ग्रेजुअल डेथ है! यह तो क्रमिक मृत्यु है! यह तो

आहिस्ता-आहिस्ता मरते जाना है! इसे मैं जीवन कैसे कहूं? जीवन क्या कभी मर सकता है? जो जीवन है, वह कभी नहीं मरता। जो जीवन है, वह अमृत होगा। जो मर जाता है, वह जीवन नहीं है। अभी हम मुर्दे हैं। लेकिन हमारे भीतर अमृत बैठा हुआ है। और अगर हम मुर्दे की खोल के भीतर प्रविष्ट हो जाएं, तो हम अमृत को अनुभव कर सकेंगे और सच्चे जीवन को उपलब्ध कर सकेंगे।
महावीर की ये शिक्षाएं किसी एक धर्म के लिए नहीं हैं। महावीर का यह मार्ग किसी एक व्यक्ति के लिए, किसी एक संप्रदाय के लिए, किसी घेरे के लिए नहीं है। इतने बड़े विराट पुरुष जिनका प्रेम अनंत तक पहुंचता हो, किसी के लिए नहीं होते, सबके लिए होते हैं। ईश्वर करे कि जैन जो समझते हैं कि महावीर हमारे हैं, महावीर का पिंड और पीछा छोड़ दें, ताकि वे सबके हो जाएं। अभी दस वर्षों बाद महावीर की पच्चीस सौवीं वर्षगांठ होगी। पच्चीस सौ वर्ष उस दिव्य जीवन को हुए पूरे होंगे। और तब मैं चाहता हूं कि सारी दुनिया अनुभव करे कि उनकी मूल शिक्षा क्या है। और सारी दुनिया अनुभव करे महावीर में, कि उसमें क्राइस्ट भी मौजूद हैं उनमें और कृष्ण भी मौजूद हैं और बुद्ध भी मौजूद हैं। उनकी ज्योति को सारी दुनिया अनुभव कर सके। दस वर्षों बाद सारी दुनिया को यह बोध हो सके कि महावीर सबकी संपत्ति हैं। यह बोध तभी होगा, जब उन पर संपत्ति होने का अधिकार उनके पीछे जो खड़े हैं, वे छोड़ दें। वे कहें कि महावीर उसके हैं जो उनका प्यासा होगा। और सच है यह, पानी उसका है जो प्यासा है। और कुआं उसका है जो उसमें पानी पीता है। वे नासमझ जो कुएं के बाहर बैठे हों और कुएं की बातें करते हों, कुआं उनका नहीं है।
महावीर सबके हों, सबके हो सकें, उनकी शिक्षा सबके काम आ सके, और यह मनुष्य जो विकृत हो गया है, यह मनुष्य जो अस्वस्थ और विक्षिप्त और बीमार हो गया है, इस मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए वे आधार बन सकें, ऐसी कामना करता हूं। अंत में सबके भीतर बैठे हुए महावीर के लिए मैं अपने प्रणाम दूंगा और एक बात आपसे कहूंगा।
अगर आपका प्रेम यह कहता हो कि महावीर की यह शिक्षा और उनके प्रेम और ज्ञान की शिक्षा दूर-दूर तक व्याप्त हो जाए, और ये समुद्र की लहरें उसे दूर किनारों तक ले जाएं, और ये हवाएं उसे अनंत तक पहुंचा दें, तो महावीर का एक छोटा सा वचन है, वह हम सारे लोग अपने हाथों को ऊपर उठा कर कहेंगे, ताकि वह वचन गूंजे और उसकी लहरें और तरंगें दूर तक पहुंच जाएं। और वह वचन उपयोगी है। सारी दुनिया से उसमें अमृत बरस सकता है। महावीर ने कहा है--महावीर ने कहा हैः मित्ति मे सव्व भुए सू--मेरी सारे प्राणियों से मैत्री है। वैरं मज्झ न केवई--और मेरा किसी से कोई विरोध नहीं।
यह सत्य, यह विचार, उनके जीवन-आधार, उनकी साधना का मूल अनुभव है। मैं चाहूंगा, हम तीन बार हाथ ऊपर उठा कर इसे दोहराएंगे अपनी पूरी शक्ति से, ताकि यह समुद्र, ताकि ये हवाएं, ताकि यह आकाश गूंजे उससे और यह विचार करोड़ों-करोड़ों लोगों को प्रभावित करे, उनको परिवर्तित करे। हम अपने दोनों हाथ ऊपर उठाएं। सारे लोग उठाएं, कोई आदमी इतनी कंजूसी न करे कि थोड़ी देर को दो हाथ न उठा सके और मैं तीन बार दोहराऊंगा, हम अपनी पूरी शक्ति से उस वचन को दोहराएंगे। मैं कहूंगा पहले, फिर आप उसे दोहराएंगे।
"मित्ति मे सव्व भुए सू!"
सबकी आवाजेंः "मित्ति मे सव्व भुए सू!"
एक साथ और जोर से।
"मित्ति मे सव्व भुए सू!"
सबकी आवाजेंः "मित्ति मे सव्व भुए सू!"
"वैरं मज्झ न केवई!"
सबकी आवाजेंः "वैरं मज्झ न केवई!" "मित्ति मे सव्व भुए सू!"
सबकी आवाजेंः "मित्ति मे सव्व भुए सू!" "वैरं मज्झ न केवई!"
सबकी आवाजेंः "वैरं मज्झ न केवई!" "मित्ति मे सव्व भुए सू!"
सबकी आवाजेंः "मित्ति मे सव्व भुए सू!"

"वैरं मज्झ न केवई!"
सबकी आवाजेंः "वैरं मज्झ न केवई!"

महावीर या महाविनाश
छठवां प्रवचन

असुत्ता मुनि

हम सब प्यासे हैं आनंद के लिए, शांति के लिए। और सच तो यह है कि जीवन भर
जो हम दौड़ते हैं धन के, पद के, प्रतिष्ठा के पीछे, उस दौड़ में भी भाव यही रहता है कि शायद शांति, शायद संतृप्ति मिल जाए। वासनाओं में भी जो हम दौड़ते हैं, उस दौड़ में भी यही पीछे आकांक्षा होती है कि शायद जीवन की संतृप्ति उसमें मिल जाए, शायद जीवन आनंद को उपलब्ध हो जाए, शायद भीतर एक सौंदर्य और शांति और आनंद के लोक का उदघाटन हो जाए।
लेकिन एक ही निरंतर इच्छा में दौड़ने के बाद भी वह गंतव्य दूर रहता है, निरंतर वासनाओं के पीछे चल कर भी वह परम संतृप्ति उपलब्ध नहीं होती है! लोग हैं, धार्मिक कहे जाने वाले लोग हैं, जो कहेंगे, वासनाएं बुरी हैं;
जो कहेंगे, वासनाएं त्याज्य हैं; जो कहेंगे, समस्त वासनाओं को छोड़ देना है; जो कहेंगे, वासनाएं अधार्मिक हैं। मैं आपसे कहूं, कोई वासना अधार्मिक नहीं है, अगर हम उसे देख सकें, समझ सकें। समस्त वासनाओं के भीतर अंततः प्रभु को पाने की वासना छिपी है। एक व्यक्ति को धन देते चले जाएं और उससे कहें कि कितने धन पर वह तृप्त होगा? हम कितना भी धन दें, उसकी आकांक्षा तृप्त न होगी। कितना ही धन दें! सारे जगत का धन उसे दे दें... ।
सिकंदर भारत की तरफ आता था। किसी ने उससे पूछा कि तुम अगर पूरी जमीन जीत लोगे तो फिर क्या करोगे? उसने कहा, मैं दूसरी जमीन की तलाश करूंगा। और अगर हम पूछें, दूसरी जमीन भी जीत लोगे तो फिर क्या करोगे? वह कहेगा, मैं तीसरी जमीन की तलाश करूंगा। और हम कहें, तुम सारी जमीनें जीत लोगे तो फिर क्या करोगे?
असल में वासना अनंत को पाने के लिए है, इसलिए किसी भी जमीन को पाकर तृप्त नहीं होगी। कितना ही धन दे दें, वासना तृप्त न होगी, क्योंकि वासना अनंत धन को पाने के लिए है। कितना ही बड़ा पद दे दें, आकांक्षा तृप्त न होगी, क्योंकि आकांक्षा परम पद को पाने के लिए है। कितना ही जीवन में उपलब्ध हो जाए, जीवन संतृप्त न होगा, तृप्त न होगा, क्योंकि परम जीवन, परम प्रभुता को पाए बिना मनुष्य के भीतर तृप्ति असंभव है।
प्रभु को पाए बिना तृप्ति असंभव है। असल में समस्त वासनाएं नदियों की तरह प्रभु की अंतिम वासना में--सागर की ओर दौड़ रही हैं। प्रत्येक वासना समझे जाने पर प्रभु की ओर इशारा करेगी, परम सत्ता की ओर इशारा करेगी। इसलिए वासनाएं बुरी नहीं हैं। वासनाओं को क्षुद्र से तृप्त करने की चेष्टा अज्ञान है। वासना को विराट देना होगा। क्षुद्र की तरफ जो वासनाएं दौड़ रही हैं, उन्हें विराट पर केंद्रित करना होगा, उन्हें विराट की ओर उन्मुख करना होगा।
लोग कहते हैं कि मन चंचल है, लोग कहते हैं कि मन की चंचलता नहीं मिटती, लोग कहते हैं कि हम मन को ठहराने की, रोकने की कोशिश करते हैं, शांत होने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन कहीं भागता चला जाता है!
असल में मन चंचल नहीं होता तो मनुष्य कभी धार्मिक नहीं हो सकता था।
मैं फिर से कहूं, मन अगर चंचल नहीं हुआ होता तो मनुष्य कभी धार्मिक न
हो सकता था, क्योंकि हमने कुछ क्षुद्र रूप से उसे पकड़ा दिया होता और मन वहीं ठहर जाता। हमने कुछ व्यर्थ उसको पकड़ा दिया होता और मन वहीं थिर हो जाता।
हम कुछ भी पकड़ाएं, मन वहां ठहरता नहीं और आगे के लिए अभीप्सा से भर जाता है। असल में जब तक प्रभु को न पाए, तब तक ठहरेगा नहीं। मन की चंचलता और विचलितता इसलिए है कि मन प्रभु को पाने को उत्सुक है। उसके पूर्व कोई निधि, कोई संपत्ति उसे तृप्त नहीं कर सकती है।
सौभाग्य है कि मन चंचल है। सौभाग्य है कि मन चंचल है--चंचल है, इसलिए शायद कभी परम सत्ता तक पहुंचना संभव हो सकता है। सौभाग्य है कि मन वासनाग्रस्त है, इसलिए शायद कोई दिन परम वासना को उपलब्ध हो जाए।

मैंने सुना है, वहां इजिप्त में एक फकीर हुआ। फकीर अपने झोपड़े के पीछे अपने खेत में काम करने गया। फकीर की एक शिष्या बादशाह को झोपड़े के बाहर मिली। उसने बादशाह को कहा, आप थोड़ा खेत की मेड़ पर बैठ जाएं, मैं फकीर को बुला लाती हूं। बादशाह बोला, तुम बुला लाओ, मैं टहलता हूं। उसने सोचा कि शायद बादशाह बाहर बैठने में संकोच कर रहा है। वह उसे भीतर ले गई झोपड़े के और उसने बादशाह को कहा, यहां एक चटाई पड़ी है, उस पर बैठ जाएं, मैं फकीर को बुला लाती हूं। बादशाह ने कहा, बुला लाओ, मैं थोड़ा टहलता हूं। वह बहुत हैरान हुई। उसने जाकर पीछे फकीर को कहा, यह बादशाह कुछ अजीब सा आदमी मालूम हो रहा है। मैंने बहुत कहा कि बैठ जाओ। वह बोलता है, मैं टहलता हूं, तुम बुला लाओ। फकीर ने कहा, असल में वह बैठ सके, उसके योग्य स्थान हमारे पास कहां है! फकीर ने कहा, वह बैठ सके उसके योग्य बैठने का स्थान हमारे पास कहां है, इसलिए टहलता है।
मैं इस कहानी को पढ़ता था और मुझे एक अदभुत बात दिखाई पड़ी, मन इसलिए चंचल है कि वह जहां बैठ सके, वह स्थान तुमने अब तक दिया नहीं। मन इसलिए चंचल है, इसलिए विचलित है कि जहां वह थिर हो सके, जहां वह तल्लीन हो सके, जहां वह विलीन हो सके, जहां वह विसर्जित हो सके, हमने वह स्थान उसे आज तक दिया नहीं। हमने कहीं खेत की मेड़ें बताई हैं, कहीं साधारण सी पतली चटाइयां बताई हैं। हमने क्षुद्र का प्रलोभन दिया है, वह विराट का प्यासा है। इसलिए चंचल है। जब तक हम विराट, जब तक हम अनंत, जब तक हम पूर्ण, जब तक हम परम के सान्निध्य में उसे न ले जाएं, तब तक मन चंचल होगा, मन विचलित होगा; मन भागेगा और दौड़ेगा। मन दुखी होगा, मन संताप से भरा रहेगा। एक एंग्विश, एक पीड़ा निरंतर पकड़े ही रहेगी।
मनुष्य के जीवन का दुख एक ही केंद्र पर है। मनुष्य, जिस बात को पाने से प्यास उसकी तृप्त होगी, वह हम उसे नहीं दे रहे हैं, हम कुछ और दे रहे हैं। हम कुछ और दे रहे हैं, जो तृप्ति न देगा! और हम उससे वंचित किए हैं, जो तृप्ति बन सकता है! और अगर यह तृप्ति न हो तो हम लाख उपाय करें, लाख अर्जित करें, लाख व्यवस्था, समृद्धि जमा लें, हम शांति को, आनंद को नहीं पा सकते हैं।
धर्म त्याग करने से नहीं होता है। धर्म छोड़ने से नहीं मिलता है। धर्म जीवन से पलायन करने वाले को नहीं मिलता है। धर्म तो पाने पर मिलता है, परिपूर्ण को पाने पर मिलता है। धर्म तो परिपूर्ण को उपलब्ध करने को कहता है।
गलत होंगे, जो समझते हैं, धर्म परार्थ है। धर्म से ज्यादा स्वार्थ इस जगत में कुछ भी नहीं है। भ्रांत होंगे वे, जो समझते हैं, धर्म परार्थ है। धर्म से अधिक स्वार्थ इस जगत में कुछ भी नहीं है। महावीर और बुद्ध से ज्यादा स्वार्थ को उत्पन्न इस जगत में दूसरे नहीं हैं।
स्वार्थ का अर्थ हैः स्व को परिपूर्ण जहां अर्थ उपलब्ध होता है।
स्वार्थ का अर्थ हैः जहां मेरी सत्ता पूरे प्रयोजन को, पूरी अर्थवत्ता को उपलब्ध हो जाए, जहां मैं अपने को उपलब्ध हो जाऊं।
हम एक अर्थ में स्वार्थी नहीं हैं। हमें स्व की कोई चिंता भी नहीं है, हमें स्व से कोई प्रयोजन नहीं है! हम उन चीजों के पीछे दौड़ रहे हैं, जिन्हें मृत्यु छीन लेगी और समाप्त कर देगी। हम अत्यंत निःस्वार्थी लोग हैं। हम उन चीजों पर जीवन को व्यय कर रहे हैं, जो हमारी सत्ता का अंग नहीं बन सकतीं, जो हमारे स्वरूप का उदघाटन नहीं हो सकतीं। महावीर और बुद्ध और ईसा और कृष्ण उसको पाने में संलग्न हैं, जिसे मृत्यु भी जला नहीं सकेगी। वे शायद उस संपत्ति को उपलब्ध कर रहे हैं। हम जिसे संपत्ति कह रहे हैं, वह संपत्ति नहीं है।
नानक लाहौर के पास एक गांव में ठहरे थे। एक व्यक्ति ने उनसे कहा, मैं कुछ आपकी सेवा करना चाहता हूं। बहुत संपत्ति मेरे पास है। आपके उपयोग में आ जाए तो अनुग्रह होगा। नानक कई बार उसे टालते गए। एक बार रात्रि को उसने दोबारा अपनी प्रार्थना दोहराई, तो उस व्यक्ति को एक कपड़े सीने की सुई दे दी। कपड़े सीने की सुई देकर कहा, इसे रख लो और जब हम दोनों मर जाएं तो इसे वापस लौटा देना। वह आदमी कुछ चौंका होगा, क्या नानक का दिमाग कुछ खराब है! चौंका होगा कि इतने लोगों के सामने असंगत और व्यर्थ की बात कहते हैं! इस

सुई को मृत्यु के बाद कैसे लौटाया जा सकेगा! लेकिन सबके सामने कुछ कहना संभव नहीं हुआ। फिर उसी ने तो बार-बार उनसे आकांक्षा की थी कि कोई सेवा! और सेवा जो दी है, उसे एकदम अस्वीकार करते नहीं बन पड़ा।
वह गया, रात भर सोचता रहा, विचार करता रहा। कोई मार्ग उसे दिखाई न पड़ा
कि सुई मृत्यु के पार कैसे जा सकेगी। वह पांच बजे, चार बजे सुबह ही नानक के पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि यह सुई, अभी जिंदा हूं, वापस ले लें; मरने पर लौटाना मेरी सामर्थ्य में नहीं है। मैंने बहुत चेष्टा की, बहुत उपाय किए, बहुत सोचा--अपनी सारी संपत्ति भी लगा दूं, तो जिस मुट्ठी में यह सुई होगी, वह इसी पार रह जाएगी। मैं पता नहीं किस लोक में, किस अज्ञात में विलीन हो जाऊंगा। यहां तो मैं रहूंगा नहीं। मैं इस सुई को पार नहीं ले जा सकता हूं। नानक ने कहा, फिर मैं तुझसे एक बात पूछूं? तेरे पास क्या है जिसे तू पार ले जा सकता है? उस व्यक्ति ने कहा, मैंने तो कभी विचारा नहीं। लेकिन अब देखता हूं तो दिखाई नहीं पड़ता कि मेरे पास कुछ है, जिसे मैं पार ले जा सकता हूं। नानक ने कहा, जो मृत्यु के पार न जा सके, वह संपत्ति नहीं है।
जो मृत्यु के इस पार रह जाए, वह विपत्ति हो सकती है, संपत्ति नहीं हो सकती।
समस्त धार्मिक जाग्रत पुरुष भी संपत्ति को कमाए हैं। हम भी संपत्ति
को कमाते हैं। हम उस संपत्ति को कमाते हैं, जो मृत्यु के इस पार होगी। वे उस संपत्ति को कमाते हैं, जिसे मृत्यु की लपटें भी नष्ट न कर सकेंगी, जो मृत्यु की लपटों के पार भी निकल जाएगी। शायद वे ही स्वार्थी हैं, शायद वे ही परम स्वार्थ को पूरा कर लेते हैं। और शायद न मालूम कौन है कि जो उनको कहता है कि वे त्यागी हैं, न मालूम कौन है जो कहता है उन्होंने सब छोड़ा, न मालूम कौन है जो कहता है उन्होंने समृद्धि छोड़ी, न मालूम कौन है जो उनके त्याग और तपश्चर्या की बात करता है! मुझे वैसी कोई बात दिखाई नहीं पड़ती। समृद्धि हम छोड़े हुए हैं, संपत्ति हम छोड़े हुए हैं, आनंद हम छोड़े हुए हैं! उन्होंने केवल दुख छोड़ा है, उन्होंने केवल अज्ञान छोड़ा है, उन्होंने केवल पीड़ा छोड़ी है। और अगर पीड़ा को और दुख को और अज्ञान को छोड़ना त्याग है तो फिर बात अलग है। फिर भोग क्या होगा?
इस जगत में केवल संन्यासी ही भोगी है। इस जगत में केवल विरक्त ही, वीतराग ही आनंद को, शांति को उपलब्ध रहता है। हम सब त्यागी हो सकते हैं। महावीर ने अपनी समृद्धि को, राज्य को, व्यवस्था को छोड़ दिया, लात मार दी। हम प्रसन्नता से भरे हैं कि उन्होंने बहुत बड़ा काम किया! असल में हम संपत्ति को बहुत आदर देते हैं, इसलिए महावीर के त्याग को भी बहुत आदर देते हैं। हमारी दृष्टि में महावीर का मूल्य नहीं है, महावीर ने वह जो संपत्ति को लात मारी, उसका मूल्य है! अगर किसी व्यक्ति को कचरा बहुत प्रिय हो और किसी को घर के बाहर कचरे को फेंकता देखे, तो शायद आदर से नमस्कार करे कि अदभुत त्याग कर रहा है, सुबह-सुबह सारा घर का कचरा फेंक रहा है!
हम जब यह कहते हैं कि महावीर बहुत बड़े त्यागी हैं, असल में हम संपत्ति
के प्रति अपने आदर को सूचित करते हैं, महावीर के प्रति नहीं। अगर हम महावीर को समझेंगे तो हमें दिखाई पड़ेगा, महावीर ने वह छोड़ दिया जो व्यर्थ था। छोड़ना भी कहना शायद गलत है, क्योंकि व्यर्थ को छोड़ा नहीं जाता, व्यर्थ दिख जाए तो छूट जाता है। मैं पुनः दोहराऊं, छोड़ना भी कहना शायद गलत है। व्यर्थ को छोड़ा नहीं जाता, उसकी व्यर्थता दिख जाए तो छूट जाता है।
इस जगत में अज्ञानियों ने त्याग किया होगा, ज्ञानियों ने त्याग नहीं किया है। उनसे चीजें छूट गई हैं, जैसे पके पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं, वैसे ही जैसे हम कचरे को बाहर फेंक आते हैं और पुनः उसकी याद नहीं करते। मैं एक गांव में गया था। एक साधु का प्रवचन सुना था। दो दिन सुना, दो दिन उन्होंने निरंतर कहा। उनसे मिलने गया, तब भी उन्होंने मुझसे कहा, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने उनसे पूछा, यह लात कब मारी थी? वह मुझे कहे कि कोई बीस वर्ष हुए। और तब मैंने उनसे कहा कि लात मारी नहीं जा सकी होगी, अन्यथा बीस वर्ष उसे याद रखने की कोई जरूरत न थी। वह लात मारी नहीं जा सकी। बीस वर्ष पहले लाखों रुपए मेरे पास थे, यह अहंकार तृप्ति देता रहा होगा। बीस वर्ष से यह अहंकार परिपुष्ट हो रहा है कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है! बात वहीं की वहीं है।

संपत्ति छोड़ी नहीं जाती, एक दिन दिखता है, वहां संपत्ति है ही नहीं।
एक दिन दिखता है कि वहां संपत्ति है ही नहीं, वहां संपत्ति का अभाव है। मुट्ठी खुल जाती है, कुछ छोड़ना नहीं पड़ता है। शायद उस दिन कोई मजबूर करे कि मुट्ठी बांधे रखो तो बड़ी तपश्चर्या हो। उस व्यर्थ के बोझ को ढोने में तपश्चर्या हो सकती है। व्यर्थ के बोझ को छोड़ आने में कौन सी तपश्चर्या हो सकती है!
त्याग नहीं, केवल ज्ञान ही पर्याप्त है। छोड़ना नहीं होता, केवल जानना होता है। जानना क्रांति है। जान लें ठीक से, क्या है जो सार्थक है, क्या है जो व्यर्थ है--क्रांति घटित हो जाती है। ज्ञान का परिणाम शील बन जाता है, आचरण बन जाता है।
लेकिन क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है--यह वे कैसे जानेंगे जो स्वयं
को भी नहीं जानते? जो स्वयं को नहीं जानते हैं वे सार्थक को कैसे जानेंगे? सार्थक वही होगा, जो स्वरूप के अनुकूल हो। सार्थक वही होगा, जो स्वरूप के प्रति संगतिपूर्ण हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप के प्रतिकूल हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप के प्रति विरोध से भरा हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप को गलत ले जाता हो।
असल में दुख का और कोई अर्थ नहीं है। स्वरूप के प्रति जो प्रतिकूलता है, वही दुख है। स्वरूप के प्रति जो अनुकूलता है, वही आनंद है। जिस क्षण मैं अपने को स्वरूप के अनुकूल पाता हूं, आनंदित हो जाता हूं। जिस क्षण स्वरूप के प्रतिकूल पाता हूं, दुखी हो जाता हूं। दुख का अर्थ है कि कुछ प्रतिकूल है, जो मैं नहीं चाहता कि हो, और हो रहा है। आनंद का अर्थ है कि कुछ हो रहा है, जो मैं चाहता हूं कि हो, जो मेरे अनुकूल है।
प्रतिकूलता दुख है, अनुकूलता सुख है।
अगर मुझे स्वरूप का पता न हो तो क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है, यह दिखाई नहीं पड़ सकता। स्वरूप-बोध जीवन में सार्थकता का और व्यर्थता का इंगित स्पष्ट कर जाता है। यह जानना धर्म की बुनियादी, केंद्रीय बात है कि मैं कौन हूं।
विज्ञान पदार्थ को जानता है, पदार्थ क्या है। विज्ञान पदार्थ के रहस्य को खोदता है कि उसके क्या नियम हैं, क्या रहस्य, क्या राज हैं। धर्म चैतन्य को खोजता है, स्व को खोजता है--उसका क्या रहस्य है। पदार्थ के अंतिम विश्लेषण पर अणु उपलब्ध हुआ है। और अणु की उपलब्धि घातक हो गई है, विस्फोटक हो गई है। हो सकता है सारे मनुष्य को ले डूबे। चैतन्य का विश्लेषण आत्मा को उपलब्ध किया है। पदार्थ के विश्लेषण से अणु उपलब्ध हुआ है, चैतन्य के विश्लेषण से आत्मा उपलब्ध हुई है।
अणु संभव है घातक हो जाए। आत्मा का उपलब्ध होना शायद जगत के बचाने का मार्ग बन जाए। इस जगत में, जो अत्यंत पीड़ा और परेशानी से घिरा है, पुनः आत्म-जागरण के उदघोष की जरूरत है।
लेकिन आत्मा के संबंध में हम बहुत बातें जानते हों भला, आत्मा को नहीं जानते हैं। आत्मा के संबंध में बहुत से सिद्धांत मंडित हों, लेकिन आत्मा से कोई परिचय नहीं है। बहुत-बहुत आश्चर्य हैं जगत में, लेकिन सबसे बड़ा एक ही है--जो मैं हूं, उसे छोड़ कर मैं सब जान सकता हूं! स्वयं से अपरिचित रह जाता हूं! सारे जगत को जाना जा सकता है और केवल वही, जो जानता है, वही रह जाता है! सारे जगत में दौड़ कर ज्ञान के संग्रह का आभास हो सकता है, लेकिन यह संग्रह अज्ञान ही है, क्योंकि वह स्व को उदघाटित नहीं कर पाता।
महावीर ने कहा है, सब कुछ जान लो, लेकिन जो स्वयं को न जान ले तो वह जानना जानना नहीं है। सब कुछ जीत लो, लेकिन अगर स्वयं को न जीता, तो वह जीत विजय नहीं है। सब कुछ पा लो, लेकिन स्वयं को न पाया तो वह पाना उपलब्धि नहीं है।
स्वरूप पाने से हम च्युत रह जाते हैं, और सब पा लेते हैं!
लगभग ऐसा मुझे स्मरण आता है, स्वामी रामतीर्थ, एक भारतीय साधु जापान में थे। एक भवन के पास से निकलते थे, भवन में आग लग गई थी। लोग सामान निकाल रहे थे। भवनपति बाहर खड़ा था। होश खो दिया था उसने। उसे कुछ दिख नहीं रहा था, लेकिन देख तो जरूर रहा था। लपटें पकड़ रही थीं मकान को। लोग सामान बाहर ला रहे थे। और थोड़ी देर में सब भूमिसात हो जाएगा, सब राख हो जाएगा।

रामतीर्थ भी उस राह से निकले थे, किनारे खड़े होकर देखने लगे थे। लोगों ने अंतिम बार आकर पूछा, भवन में कुछ और तो नहीं रह गया? उस भवनपति ने कहा, मुझे कुछ याद नहीं पड़ता। मुझे कुछ भी स्मरण नहीं आता! मैं दिग्मूढ़ सा खड़ा रह गया हूं। तुम्हीं एक बार जाकर और देख लो। जो बचा हो, उसे भी बचा लो।
भवन अंतिम लपटों को पकड़ने के करीब था। लोग भीतर गए। वे बाहर आए तो रोते हुए बाहर आए। कहीं एकांत में भवनपति का एकमात्र लड़का था, वे उसकी राख को लेकर लौटे थे। वे लोग मकान का सामान बचाने में लग गए थे और मकान का एकमात्र मालिक भीतर जल कर समाप्त हो गया था! रामतीर्थ ने अपनी डायरी में लिखा है, उस दिन मुझे लगा कि यह घटना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में घटती है। हम सामान को बचाने में लग जाते हैं, सामान का मालिक धीरे-धीरे मर जाता है।
हम उसको बचाने में लग जाते हैं जो बाहर है और जो आंतरिक है, जो मैं स्वयं हूं, उसको भूल ही जाते हैं! यह अति व्यस्तता आत्मघातक है, स्युसाइडल है। पदार्थ से, वस्तु से इतना व्यस्त होना कि स्वरूप भूल जाए, सामान्य सामग्री में इतना आक्युपाइड हो जाना, इतना व्यस्त हो जाना कि स्व की सत्ता का विस्मरण हो जाए, आत्मघातक है।
शायद जिसे हम आत्महत्या कहते हैं, वह केवल देह-हत्या है। आत्महत्या इसे कहना चाहिए--आत्महत्या इसे कहना चाहिए कि जिसे स्व का विस्मरण हो जाए और जिसका सामग्री पर सारा जीवन केंद्रित हो जाए। जिसके लिए हम खोज कर रहे हैं, वह गौण हो जाए; और जिसके लिए वे चीजें खोज करने गए थे, वे चीजें प्रमुख हो जाएं। उसे भूल जाएं, जिसकी शांति के लिए हम चले थे, और सामग्री के आयोजन में ही जीवन व्यय हो जाए, इसे आत्महत्या कहना चाहिए। शरीर की हत्या को आत्महत्या नहीं कहना चाहिए।
यह आत्महत्या प्रत्येक के भीतर घटित होती है। इससे बचने का, इससे ऊपर उठने का एक ही उपाय है कि हमारा जो चित्त, हमारा जो मन दूसरे में अति व्यस्त है, थोड़ा सा समय निकाल कर स्वयं को जानने के प्रति भी उन्मुख हो। जिस ज्ञान की शक्ति से हम सारे जगत को जानने निकल पड़े थे, वह ज्ञान की धारा अंतः-प्रवाहित हो, भीतर की तरफ उन्मुख हो। हम उसको भी जान सकें, जो सबको जान रहा है।
और जिन्होंने उसे जाना है, उनका आश्वासन है कि जिस आनंद को बाहर खोज-खोज कर जन्मों-जन्मों में नहीं पाया जा सकता है, क्षण में उसे भीतर मुड़ते ही उपलब्ध कर लिया जाता है। यह आश्वासन एकाध व्यक्ति का हो, तो पागल कह कर टाल सकते हैं, बकवास कह कर टाल सकते हैं। जितने लोगों ने इस जमीन पर, जमीन के इतिहास में आनंद को उपलब्ध किया है, उनमें से एक ने भी उसे बाहर उपलब्ध नहीं किया है। जितने लोगों ने उपलब्ध किया है, उनकी सामूहिक साक्षी और गवाही आंतरिक के लिए है। इसलिए सत्य वैज्ञानिक हो जाता है, यह सत्य अंधविश्वास नहीं रह जाता है। यह अपवाद नहीं है, निरपवाद रूप से जिन लोगों ने आनंद अनुभव किया है, उन्होंने आत्यंतिक आंतरिक से उसका उदघाटन किया है।
वह आंतरिक प्रत्येक में उपस्थित है, प्रत्येक घड़ी उपस्थित है, हम उसे जानते हों या न जानते हों। क्योंकि वह हमारा होना है, वह हमारी बीइंग है, वह हमारी सत्ता है, वह हमारा अस्तित्व है। हम लाख उपाय करके उसको खो नहीं सकते हैं। कोई मनुष्य अपनी आत्मा को नहीं खो सकता, कितना ही पाप करे, कितने ही पाप का उपाय करे। इस जगत में एक बात असंभव है--स्वयं को खो देना असंभव है।
स्वयं को तो खो नहीं सकते, लेकिन फिर सारे लोग तो कहते हैं, आत्मा को
पा लो! जिस स्वयं को खो नहीं सकते, उसे पाने का क्या मानी होगा? आत्मा को खोया नहीं जाता, केवल विस्मरण हो जाता है। और ठीक से मेरी बात समझें तो विस्मरण भी नहीं होता, हम दूसरे के स्मरण से इतने भर जाते हैं कि स्व का स्मरण नीचे दब जाता है।
अगर हम पर के स्मरण को थोड़ी देर को छोड़ सकें, अगर हमारा चित्त पर के स्मरण से थोड़ी देर को शून्य हो जाए, अगर हमारे चित्त में पर का प्रतिबिंब और पर के विचार और पर के इमेजेज थोड़ी देर को विलीन हो जाएं, तो स्व-स्मरण जो नीचे दबा है, उदघाटित हो जाएगा। कुछ खोया नहीं है, केवल कुछ आच्छादित है।

कुछ भूला नहीं है, केवल कुछ आवरण में, वस्त्रों में छिप गया है। थोड़े से वस्त्र उघाड़ने की, थोड़ा सा आंतरिक जगत में नग्न होने की बात है--और स्व का साक्षात हो सकता है।
स्व के साक्षात के बाद ही सार्थक की अनुभूति होती है। स्व के साक्षात
के बाद ही निरर्थक छूटता है और सार्थक की दिशा में जीवन की गति होती है। उसके पूर्व, स्व-साक्षात के पूर्व, जो सार्थक की तलाश करेगा, वह केवल दमन कर सकता है, वह केवल संघर्ष कर सकता है अपने से, वह केवल छोड़ने में लग सकता है। उससे छूटेगा नहीं, क्योंकि उसे ज्ञात ही नहीं है कि छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है।
एक साधु हुआ। वह गृही था। उसका नियम था लकड़ी काट लेनी, बेच देनी; उससे
जो भोजन मिले, कर लेना; और जो सांझ बच जाए, उसे बांट देना। उसकी पत्नी थी। एक बार सात दिन तक लगातार वर्षा हुई। लकड़ियां काटने जाना जरूरी था। सात दिन उपवास के बिताने पर भी भिक्षा मांगने का उसका नियम न था। सात दिन के बाद भूखा सपत्नीक लकड़ियां काटने वन को गया। लकड़ियां काटीं। भूख से पीड़ित सात दिन के, लकड़ियों के बोझ को ढोते हुए वे पति-पत्नी वापस लौटते थे। पति आगे था, पत्नी थोड़ा पीछे फासले पर थी। एक अदभुत घटना घटी, जो स्मरण करने जैसी है। वह यदि मन में बैठ जाए, मन के किसी प्रकाशित कोने में स्थापित हो जाए, तो जीवन में दिशा-परिवर्तन हो सकता है।
वह आगे-आगे था लकड़ियों के बोझ को लिए। राह के किनारे उसे दिखा कि किसी राहगीर की थैली गिर गई है, स्वर्ण अशर्फियां उसमें हैं। यह सोच कर कि सात दिन की भूख और परेशानी के कारण पत्नी का मन कहीं मोह से न भर जाए, कहीं लोभ से न भर जाए, कहीं उसके मन में ऐसा न हो कि अशर्फियां उठा लूं, नाहक उसके चित्त में विकार न आए, उसने गड्ढे में उसे सरका कर थैली पर मिट्टी डाल दी। अपने तईं सोचा कि मैं तो स्वर्ण का विजेता हो गया हूं, मैंने तो जीत लिया, मैं तो स्वर्ण के मोह को छोड़ सकता हूं, लेकिन पत्नी कहीं मोहग्रस्त न हो जाए। वह मिट्टी डाल कर उठता ही था कि पत्नी आ गई।
उसने पूछा, क्या कर रहे हो? नियम था उस साधु का असत्य न बोलने का, इसलिए सत्य बोलना पड़ा। उसने कहा, यह सोच कर कि मैंने तो परिग्रह से छुट्टी पा ली, मैं तो सब त्याग कर चुका हूं, लेकिन तेरे मन में कहीं मोह न आ जाए, एक स्वर्ण अशर्फियों की थैली पड़ी थी, उसे मैंने मिट्टी से ढंक दिया है।
उस पत्नी ने कहा था, तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आई? तुम्हें स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है?
अगर स्वर्ण दिखाई पड़ता है, तो स्वर्ण से त्याग नहीं हुआ। अगर स्वर्ण दिखाई पड़ता है, तो स्वर्ण से मुक्ति नहीं हुई। अगर स्वर्ण मूल्यवान मालूम होता है, तो स्वर्ण के साथ आसक्ति शेष है। स्वर्ण के साथ दो तरह के संबंध हो सकते हैं--आसक्ति के और विरक्ति के। लेकिन दोनों ही संबंध हैं। स्वर्ण के साथ दो तरह के संबंध हो सकते हैं कि मैं स्वर्ण को पाने को उत्सुक हो जाऊं या मैं स्वर्ण को छोड़ने को उत्सुक हो जाऊं। लेकिन दोनों ही संबंध हैं।
वस्तुतः जो स्वयं को जानेगा, वह स्वर्ण को न छोड़ता है, न पकड़ता है। वह अचानक जान पाता है कि वहां तो कोई अर्थ ही नहीं है। स्वर्ण में कोई अर्थ ही नहीं है। इतना भी अर्थ नहीं है कि उसे छोड़ने के लिए उत्सुक हुआ जाए या उसे पकड़ने के लिए उत्सुक हुआ जाए। इस स्थिति को हमने वीतरागता कहा है।
एक स्थिति है राग की--राग स्वर्ण के प्रति आसक्ति है।
एक स्थिति है वैराग्य की--वैराग्य स्वर्ण के प्रति विरक्ति है।
लेकिन वे दोनों संबंध हैं। उन दोनों में स्वर्ण का मीनिंग है, स्वर्ण
का अर्थ है। एक तीसरी बात है, वीतरागता की। राग से और विराग से, दोनों से अलग। वहां स्वर्ण के प्रति कोई संबंध नहीं है। वहां जगत के प्रति, संसार के प्रति कोई संबंध नहीं है।
इस सत्य का उदघाटन कि मेरी सत्ता असंग है, मेरी सत्ता नितांत भिन्न और पृथक है, जीवन में त्याग को फलित कर देती है। त्याग ज्ञान का फल है। कोई त्याग करके ज्ञान तक नहीं पहुंचता, ज्ञान के उत्पन्न होने से त्याग फलित होता है।
सम्यक दर्शन प्राथमिक है, सम्यक आचरण उसका परिणाम है।

आचरण नहीं पालना होता है, ज्ञान उपलब्ध करना होता है। जो आचरण से प्रारंभ करेंगे, उन्होंने गलत मार्ग से प्रारंभ किया। उन्होंने एक छोर से प्रारंभ किया। अज्ञान में आचरण आरोपित होगा, कल्टीवेटेड होगा। ज्ञान में आचरण सहज होता है। अज्ञान में क्रोध को दबा कर क्षमा करनी पड़ेगी, ज्ञान में क्रोध ही उत्पन्न नहीं होता है।
जिन लोगों ने महावीर को कहा है कि बहुत क्षमावान थे, उन लोगों ने महावीर के प्रति बहुत असत्य कहा है। महावीर को क्षमावान कहने का अर्थ है कि महावीर में क्रोध उठता था। महावीर क्षमावान नहीं थे, असल में महावीर में क्रोध ही नहीं उठता। जिसमें क्रोध का अभाव है, उसमें क्षमा का, अक्षमा का प्रश्न नहीं उठता। क्षमावान क्रोधी हो सकते हैं, अक्रोधी के क्षमावान होने का प्रश्न नहीं उठता। चित्त में भीतर स्वयं के साक्षात से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह आश्चर्यजनक और स्वर्णिम प्रकाश से भर जाता है।
जीवन में मुक्ति का मार्ग आचरण से नहीं, प्रज्ञा के जागरण से प्रारंभ होता है।
यह प्रज्ञा-जागरण, यह स्व का साक्षात कैसे होगा? किस विधि से मैं अपने भीतर जा सकता हूं? किस विधि से मैं स्वयं के आमने-सामने आ सकता हूं? किस विधि से, जो सबको देख रहा है, उस सत्ता के साथ मेरा तादात्म्य हो सकता है? अगर उस विधि को समझना है, तो समझना होगा, किस विधि से मैं अपने से बाहर
हो गया हूं। किस विधि से मैं अपने से बाहर हो गया हूं? अगर मैं यह समझ लूं कि मैं किस विधि से अपने से बाहर गया, तो उसी पर पीछे वापस लौटने से मैं स्वयं में पहुंच जाऊंगा। जिस मार्ग से मैं बाहर आया हूं, वही मार्ग भीतर ले जाने का भी होगा--केवल विपरीत चलना पड़ेगा। जो मार्ग मुझे बंधन में लाया है, वही मार्ग मेरी मुक्ति का भी होगा--केवल विपरीत चलना पड़ेगा। जो मार्ग मुझे संसार से जोड़े हुए है, वही मार्ग मुझे परमात्मा से जोड़ेगा--केवल विपरीत चलना होगा।
यह हमारा चित्त, यह हमारा मन, यह हमारा विचार हमें जगत से जोड़ता है। एक क्षण को कल्पना करें अभी कि चित्त में कोई विचार नहीं है, कोई तरंग नहीं है--चित्त निस्तरंग हो गया है, निर्विचार हो गया है--उस क्षण आप जगत से संबंधित होंगे क्या? उस क्षण क्या कोई भी संबंध शेष रह जाएगा? उस क्षण जो बाहर जीता है, उससे क्या कोई नाता, कोई संबंध शेष रह जाएगा, कोई भी धागे बंधे हुए रह जाएंगे?
कल्पना भी करेंगे तो दिख पड़ेगा--अगर चित्त बिल्कुल निस्तरंग है और शून्य है, अगर चित्त में कोई भी क्रिया नहीं चल रही है, विचार की, वासना की, कल्पना की, स्मृति की कोई भी क्रिया नहीं है, सब शून्य है--उस शून्य में आप जगत से टूटे हुए होंगे, पृथक होंगे। चित्त विचार से भरा है, तो हम जगत से संयुक्त हैं, शरीर से संयुक्त हैं, अन्य से, पर से संयुक्त हैं। हमारा बंधन--अगर हम बहुत ठीक से समझें--संसार नहीं है, हमारा बंधन विचार है। संसार से मुक्त नहीं होना है, विचार से मुक्त होना है।
महावीर मुक्त होने के बाद भी संसार में हैं, संसार में जीए चालीस वर्ष तक। बुद्ध मुक्त होने के बाद संसार में जीए तीस वर्ष तक। संसार में तो थे। फिर हो क्या गया था उनमें?
वे तो संसार में थे, लेकिन संसार उनमें नहीं था।
वे तो संसार में थे, लेकिन संसार उनमें नहीं था। हमारे भीतर संसार के होने का स्थान विचार है। हमारे भीतर संसार की प्रतिछवि विचार में बनती है। हमारे भीतर विचार है गृह संसार का। इसलिए विचार के गृह को तोड़ देना संन्यास है। विचार के गृह में बंद होकर रहना गृहस्थ होना है। भीतर विचार की दीवाल हमें घेरे हुए है। चौबीस घंटे उठते-बैठते सोते-जागते विचार का सतत प्रवाह हमें घेरे हुए है। वही विचार हमारी अशांति है, वही विचार हमारी उत्तेजना है, वही विचार हमारी उद्विग्न स्थिति है, वही विचार हमारी ज्वरग्रस्त स्थिति है। इस विचार के विसर्जन से, इस विचार के शांत होने से, इस विचार के ऊहापोह और तरंगों के विलीन होने से भीतर एक शांति का दर्पण, भीतर एक शांत चैतन्य की स्थिति उत्पन्न होती है। उसी शांति में, उसी अनुद्विग्न स्थिति में स्वयं का साक्षात होता है।

मैंने कहा, हम पर के साथ इतने व्यस्त हैं कि स्व का स्मरण ही भूल गए हैं। अगर हम पर के साथ अव्यस्त हो जाएं, अगर पर थोड़ी देर को हमारे भीतर से अनुपस्थित हो जाए, तो स्व का उदघाटन हो जाएगा।
इस हॉल में हम सारे लोग बैठे हुए हैं। हमने, हॉल में जो रिक्त स्थान है, उसको भर दिया है। वह रिक्त स्थान कहीं गया नहीं है, कहीं बाहर नहीं निकल गया है। आप जब भीतर आए तो हॉल का रिक्त स्थान बाहर नहीं निकल गया। अगर उस रिक्त स्थान को वापस उपलब्ध करना हो, तो कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ेगा। अगर हम बाहर हो जाएं तो हॉल वापस रिक्त हो जाएगा। अगर हम बाहर हो जाएं तो रिक्त स्थान मौजूद है। वह हमसे दब गया है, वह हमसे भर गया है, हमारे निकलते ही वापस रिक्तता को उपलब्ध हो जाएगा।
स्व का स्मरण पर के चिंतन से दब गया है, भर गया है।
अगर पर का चिंतन विसर्जित हो जाए, तो स्व उदघाटित हो जाएगा।
स्व कहीं गया नहीं, स्व निरंतर उपस्थित है--केवल पर से आच्छादित है।
पर के आच्छादन को तोड़ने का मार्ग समाधि है, पर के आच्छादन को विच्छिन्न करने का मार्ग ज्ञान है। इसलिए चाहे धर्म कोई हो--जैनों का, बौद्धों का, हिंदुओं का, ईसाइयों का--धर्म के चाहे कोई भी रूप हों, लेकिन धर्म के भीतर की प्रक्रिया एक ही हैः आच्छादन को विच्छेद कर देने की; वह जो हम पर छा गया है, उसे विसर्जित कर देने की; जो हम पर घिर गया है, उस बदली को तोड़ देने की, ताकि भीतर से प्रकाश वाले सूरज का उदय हो। एक ही छोटे से सूत्र में समस्त धर्मों का सार संगृहीत है। हम शून्य हो जाएं तो पूर्ण के हमें दर्शन हो जाएंगे। हम शून्य हो जाएं तो हम समाधि में पहुंच गए।
कैसे शून्य हो जाएं? एक छोटा सा विचार भी तो छोड़ा नहीं जाता, समस्त विचार की प्रक्रिया कैसे छूटेगी? स्वाभाविक है कि स्वयं से आप पूछें कि एक छोटा सा विचार-कण तो मन से निकलता नहीं, पूरे विचार की प्रक्रिया कैसे निकलेगी?
और विचार को धक्के दें तो उलटा विचार और प्रभावी हो जाता है। एक विचार
को निकालना चाहें तो वह और चार यजमानों को साथ लेकर वापस लौट आता है। विचार को निकालने का उपाय अगर कभी किए हों--अगर कभी मंदिर में, मस्जिद में, देवालय में बैठ कर प्रभु का स्मरण करने की कोशिश की हो, तो पता होगा, जो विचार सामान्य जीवन में नहीं आते हैं, उस मंदिर के घेरे के भीतर बैठ कर आने शुरू हो जाते हैं! जब-जब चित्त के साथ चेष्टा की हो कि चित्त शून्य हो जाए, शांत हो जाए, मौन हो जाए, तभी पाया होगा कि मौन करने के प्रयास में तो चित्त के भीतर छिपे हुए न मालूम कितने तरह के विचार के धुएं, न मालूम तरह-तरह के विचारों की पर्तें, न मालूम कण-कण से विचारों की लहरें आनी शुरू हो जाती हैं! जो वैसे शांत प्रतीत होता था, वह शांत होने की चेष्टा में और भी उद्विग्न, और भी उत्तेजित हो जाता है, और उद्वेलित हो जाता है। कभी भी थोड़ा सा प्रयोग करेंगे तो पाएंगे प्रत्येक प्रयोग, प्रत्येक प्रयास मन को और भी अशांत कर जाता है। इसलिए साधारणतया वे लोग, जो मंदिर में जाते हैं, जीवन में ज्यादा अशांत होंगे। वे लोग, जो चेष्टा में रत होते हैं चित्त को शांत करने की, जीवन में ज्यादा उद्विग्न होंगे।
उन ऋषियों के बाबत सुना होगा जो अभिशाप देते हैं, जो क्रोध में क्या- क्या कह देते हैं। बहुत तरह से लोग अनुभव करते हैं कि चित्त से लड़ने वाले लोग क्रोधी होते हैं। चित्त के साथ दमन करने वाले लोग अत्यंत क्रोध से भरे, अत्यंत ज्वरग्रस्त मालूम होंगे। उनकी शांति के नीचे कहीं ज्वालामुखी छिपा हुआ है। असल में मन के साथ दमन, मन के साथ संघर्ष मन को जीतने का उपाय नहीं है। मन से जो लड़ेगा, वह मन को जीतेगा नहीं। मन को जीतने का राज कुछ दूसरा है। इसलिए एक क्षुद्र विचार को भी इस संघर्ष से दूर नहीं किया जा सकता है।
तिब्बत में एक साधु हुआ है। उसके पास एक युवक गया था। तीन-चार वर्ष तक
उस युवक ने उस साधु की सेवा की थी। और चाहा था कि कोई सिद्धि मिल जाए। वह साधु टालता रहा, टालता रहा। उसने कहा, मेरे पास तो कोई सिद्धि नहीं। लेकिन युवक माना नहीं, पीछे पड़ा ही रहा। साधु ने आखिर एक दिन उसे कागज पर एक मंत्र लिख कर दिया और कहा, यह ले जा! पांच बार एकांत क्षण में रात्रि को बैठ

कर इसे स्मरण कर लेना और तब तू जो चाहेगा चमत्कार और सिद्धि तुझे उपलब्ध हो जाएगी। अब तू भाग जा।
वह युवक भागा। उसी के लिए तो वह तीन वर्ष से रुका था! उमंग से सीढ़ियां उतर रहा था। आखिरी सीढ़ी उतरने को था, तो उस साधु ने चिल्ला कर कहा कि सुनो मित्र, एक बात तो बताना भूल गया। शर्त अधूरी रह गई। जब पांच बार इस मंत्र को पढ़ो तो याद रखना, बंदर का स्मरण न आए। उस युवक ने कहा, पागल हुए हो! जिंदगी भर किसी बंदर का स्मरण नहीं आया, पांच बार स्मरण करने में क्यों आएगा! लेकिन वह पूरी सीढ़ियां भी उतर नहीं पाया था और बंदर ने उसे घेर लिया। वह राह पर चला और बंदर का बिंब उसके भीतर उठने लगा। वह हटाने लगा बंदर, तो एक नहीं अनेक झांकने लगे। सारा चित्त जैसे बंदरों की भीड़ से भर गया। वह घर तक पहुंचा तो बंदरों की भीड़ में उसका सारा मनस घिर गया। वह बहुत हैरान हुआ कि साधु जरूर अज्ञानी और नासमझ है। अगर बंदर का स्मरण मंत्र में बाधा देता है, तो उस अज्ञानी, उस नासमझ को कहना ही नहीं था। उसने कह कर तो मुसीबत कर दी।
उसने स्नान किया, उसने पवित्र नामों का स्मरण किया, वह एकांत गांव के बाहर जाकर बैठा, उसने सब उपाय किए, लेकिन बंदर साथ थे! बंदर से अलग होना संभव नहीं रहा। जितने भी उपाय किए--बंदर ही बंदर थे। आंख खोलता तो उनके प्रतिबिंब, आंख बंद करता तो उनके प्रतिबिंब! वह सुबह तक तो विक्षिप्त होने लगा, बंदर ही बंदर घेरे हुए थे! और कोई भी विचार नहीं रहा चित्त में, सारे विचार विलीन थे; जिन्होंने रोज परेशान किया था, वे विचार अब न थे! अब केवल एक ही विचार था, क्योंकि एक ही धारणा थी गलत करने की।
सुबह-सुबह उसने साधु को जाकर क्षमा मांगी, मंत्र वापस लौटा दिया। साधु ने पूछा, क्या दिक्कत हुई? उसने कहा, अब उसकी बात मत छेड़ो। जो दिक्कत हुई, अब उससे मैं पार नहीं पा सकता। अगर यही शर्त है कि बंदर का स्मरण न आए, तो इस जिंदगी में यह मन से तोड़ना संभव नहीं है।
जो उसके साथ हुआ, वह प्रत्येक के साथ होगा। होने के पीछे वैज्ञानिकता है। गलत नहीं हुआ, ठीक हुआ। संघर्ष का परिणाम है यह, दमन का परिणाम है यह। उन चीजों का दमन नहीं किया जा सकता, जिनकी कोई पाजिटिव सत्ता, जिनकी कोई पाजिटिव एक्झिस्टेंस, जिनकी कोई विधायक सत्ता नहीं है।
जैसे इस कक्ष में अंधेरा हो रहा हो और हम सारे लोग उस अंधेरे को धक्के देकर निकालने लगें तो वह निकलेगा? वह नहीं निकलेगा। आप कहेंगे कि इतनी ताकत लगाई, लेकिन फिर भी नहीं निकला! असल में ताकत का प्रश्न ही असंगत है। अंधेरा है नहीं, अगर होता तो धक्के देने से निकल सकता है। अंधेरा नकारात्मक है, वह किसी चीज का अभाव है। वह किसी चीज का भाव नहीं है। वह प्रकाश का अभाव है। इसलिए उसे निकाला नहीं जा सकता। प्रकाश को जला लें, वह नहीं पाया जाता।
निकलता नहीं, स्मरण रखें। प्रकाश को जलाने से अंधेरा निकल कर बाहर नहीं चला जाता। प्रकाश के आने से वह नहीं पाया जाता है। वह केवल प्रकाश का अभाव था। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं थी। जिन-जिन चीजों की अपनी कोई सत्ता नहीं है, उन्हें धक्के देकर अलग नहीं किया जा सकता। जिनकी अपनी सत्ता है, उन्हें भर अलग किया जा सकता है।
प्रकाश का अभाव अंधेरा है, ध्यान का अभाव विचार है। इसलिए विचार को निकालना नहीं होता, ध्यान को जगाना होता है। ध्यान में जागरण से विचार का विसर्जन होता है। जिस मात्रा में ध्यान जाग्रत होगा, उसी मात्रा में विचार शून्य की तरफ विलीन होते चले जाएंगे। जिस क्षण परिपूर्ण ध्यान उदभव में आएगा, विचार नकार हो जाते हैं, न हो जाते हैं।
विचार से संघर्ष नहीं--ध्यान के आविर्भाव के लिए प्रयास! ध्यान के आविर्भाव के लिए पुरुषार्थ!
फिर क्या अर्थ हुआ ध्यान का? ध्यान का अर्थ हैः चित्त को जागरूकता से, चित्त को अवेयरनेस से, चित्त को विवेक से भरना।
महावीर ने अपने साधुओं से कहा था, जागो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से, चलो तो विवेक से, उठो-बैठो तो विवेक से।
क्या अर्थ है विवेक का?

विवेक का अर्थ है परिपूर्ण जागरूक, पूर्ण जागरूकता से भरे हुए। समस्त शरीर की क्रियाओं के प्रति, मन की समस्त क्रियाओं के प्रति होश से भरे हुए। मन के प्रति जागरूक बनो, साक्षी बनो। मन से लड़ो मत, विचार के प्रवाह के प्रति द्रष्टा बनो। तटस्थ द्रष्टा बनो, केवल देखते रह जाओ। विचार को विसर्जित नहीं करना है, केवल विचार को देखते रह जाओ। मात्र द्रष्टा रह जाओ, कुछ करो नहीं। केवल होश से भर कर विचार के प्रवाह को देखो--अलिप्त, असंग-भाव से। जैसे राह पर लोग निकलते हैं, जैसे राह पर राहगीर निकलते हैं और मैं किनारे खड़ा चुपचाप देख रहा हूं।
मन के मार्ग पर चलते हुए विचार की परंपरा को, मन के मार्ग पर चलते हुए विचार की भीड़ को चुपचाप खड़े होकर देखते रहने का प्रयोग करना होता है। लड़ना नहीं होता, उनको छेड़ना नहीं होता, उनको रोकना नहीं होता, उनको धक्के नहीं देने होते, उस पर शुभ और अशुभ के निर्णय नहीं लेने होते, उनका कंडेमनेशन नहीं करना होता--क्योंकि जैसे ही हमने उनके साथ कुछ किया, प्रवाह तीव्र और त्वरित हो जाएगा--केवल देखना होता है, मात्र द्रष्टा का प्रयोग करना होता है। और क्रमशः जिस मात्रा में भीतर मूर्च्छा टूटेगी और विचार के प्रवाह के प्रति जागरूकता आएगी, उसी मात्रा में विचार विलीन होने लगते हैं। सी.एम.जोड पश्चिम का एक बड़ा विचारक था। उसने लिखा है, मैं जीवन भर विचारों से भरा रहा। एक दफा एक मनोविश्लेषक के पास गया। उसने पर्दे के पीछे मुझे एक कोच पर लिटा दिया, पर्दे के दूसरी तरफ खुद खड़ा हो गया और मुझसे बोला, जो भी विचार चित्त में आ रहे हों, उन्हें देख कर जोर से बोलते चले जाओ। जोड ने लिखा है, मैंने भीतर देखा कि जो विचार आएं, उनको बोलूं। मैं भीतर देखने लगा, टटोलने लगा, लेकिन मैं बहुत हैरान हो गया, वहां कोई विचार आ ही नहीं रहा था। वहां कोई विचार आ ही नहीं रहा था! जोड ने लिखा, मैं चकित हो गया। जीवन में सोते-जागते जिनका प्रवाह नहीं टूटा था, आज मैं खोजने गया था भीतर और वे नदारद थे, वे अनुपस्थित थे! भीतर आंख पहुंची और विचार नहीं थे!
जैसे प्रकाश अंधेरे को नहीं देख पाता, वैसे ही जब भीतर आंख पहुंचेगी, भीतर देखने का प्रयास पहुंचेगा, भीतर जागरूकता पहुंचेगी तो विचार शून्य हो जाएंगे, उनकी सांसें टूट जाएंगी, उनके प्राण चले जाएंगे।
सतत उठते-बैठते, सोते-जागते विचार के प्रति जो तंद्रा है, उसको तोड़ना ध्यान है, उसके प्रति जागरूक होना ध्यान है।
बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है, वह मैं कहूं, उससे मेरी बात समझ में आ सकेगी।
बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हुआ। उसका नाम श्रोण था। दीक्षा के दूसरे दिन बुद्ध ने कहा, मेरी एक श्राविका है, उसके घर जाकर भिक्षा ले आना। वह श्राविका के घर भिक्षा लेने गया। उसे उसके सारे जीवन की स्मृतियां कौंध गईं आंखों में। कल तक राजकुमार था, आज उसी मार्ग पर भिक्षा का पात्र लिए चलता था! स्वाभाविक था, पूरा जीवन उसे दोहर जाए। उसे मार्ग में यह भी स्मरण आया, कल तक घर में पत्नी थी, मां थी, जो कुछ प्रिय था भोजन वह उपलब्ध होता था। आज कोई न जानेगा--न मालूम क्या मिलेगा! उसे सारे सुस्वादु भोजन, जो कि उसे सदा प्रिय रहे, स्मरण आए।
वह श्राविका के घर जाकर भोजन करता था। देख कर हैरान, चकित हो गया कि जो भोजन उसे प्रिय थे, वे ही उसे परोसे गए थे! उसने सोचा, अजीब सा संयोग है! फिर यह मान कर कि शायद यही भोजन बने होंगे, वह चुपचाप भोजन करने लगा। भोजन करता था कि उसे स्मरण आया, रोज तो भोजन के बाद घर में दो क्षण विश्राम करता था, आज तो भोजन के बाद दो मील दोपहरी में चलना है। वह श्राविका सामने पंखा झलती थी। उसने कहा, भंते! भोजन के बाद दो क्षण विश्राम करेंगे तो अत्यंत अनुग्रह होगा। वह थोड़ा चौंका, सोचा क्या बात है! फिर याद आया, संयोग ही होगा कि मुझे भी उस वक्त विचार आया और उसे भी विचार आ गया। चटाई डाल दी गई, वह भोजन के बाद विश्राम के लिए लेटा। लेटते ही उसे याद आया कि आज अपना न तो कोई साया है, न अपनी कोई शय्या है। वह श्राविका निकट थी। उसने कहा, भंते! शय्या भी किसी की नहीं, साया भी किसी का नहीं।
अब संयोग होना कठिन था। वह उठ बैठा। उसने कहा, मैं हैरान हूं! क्या मेरे विचार पढ़ लिए जाते हैं? क्या मेरे विचार संक्रमित हो जाते हैं?

श्राविका ने कहा, ध्यान का, सतत जागरूकता का प्रयोग करते-करते पहले स्वयं के विचार दिखे, फिर स्वयं के विचार विसर्जित हो गए। अब तो मैं हैरान हूं, दूसरे के विचार भी दिखते हैं! वह भिक्षु घबड़ा गया। वह बहुत परेशान है, उसके हाथ-पैर कंप गए। श्राविका ने कहा, क्या घबड़ाने की बात है? लेकिन उसके माथे पर पसीने की बूंदें आ गईं। श्राविका ने कहा, इसमें परेशान होने की क्या बात है?
लेकिन वह भिक्षु तो वापस विदा लेकर चल पड़ा। उसने बुद्ध से जाकर कहा, मैं उस द्वार पर भिक्षा लेने नहीं जाऊंगा। बुद्ध ने कहा, कोई असम्मान हो गया? उस श्रोण ने कहा, असम्मान नहीं, पूरा सम्मान हुआ, बहुत प्रीतिकर सत्कार हुआ। लेकिन अब उस द्वार पर दुबारा नहीं जाऊंगा। वह श्राविका दूसरे के विचार पढ़ लेती है। और आज उस सुंदर युवती को देख कर मेरे मन में तो वासना भी उठी। वह भी पढ़ ली गई होगी। उसने क्या सोचा होगा! कल उसी द्वार पर इस चेहरे को कैसे ले जाऊं? किस भांति मैं उसके सामने खड़ा होऊंगा?
बुद्ध ने कहा, वहीं जाना होगा। जान कर तुझे भेजा है। तेरी साधना का अंग है वहां जाना। लेकिन तू होश से जाना। घबड़ा मत। अपने भीतर देखते हुए जाना कि क्या उठता है। डरना मत। जो भी वासनाएं उठें, देखते हुए जाना। विचार उठें, देखते हुए जाना। केवल देखते हुए जाना, कुछ मत करना। फिर लौट कर मुझे कहना।
मजबूरी थी, श्रोण को वहीं जाना पड़ा। आज वह बहुत नए ढंग से गया। कल खोया हुआ गया था उसी मार्ग पर--तंद्रिल था, मूर्च्छित था, होश न था, विचार चलते थे मूर्च्छा में। और आज वह आंख गड़ाए हुए, जागरूक, साक्षी होकर देखता हुआ गया। एक-एक विचार के प्रति होश से भरा था, अलग था। वह हैरान हो गया। भीतर देखता था, तो सन्नाटा हो जाता था। भीतर से तंद्रा गहरी होती थी, तो बाहर देखता था, विचार का प्रवाह चलने लगता था। जब बाहर देखता, भीतर विचार चलने लगता। जब भीतर देखता, विचार शून्य हो जाता। वह सीढ़ियों पर चढ़ा तो उसे श्वास भी पता चलती थी! श्वास भी दिखाई पड़ रही थी--भीतर आती-जाती थी। पैर उठाया तो उसका भी होश था। खाना खाया, कौर उठाया, तो उसका भी परिपूर्ण स्मरण था! श्वास की गति का भी स्पंदन ज्ञात हो रहा था!
वह नाचता हुआ वापस लौटा था। वह बुद्ध के पैरों में गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे तो रहस्य का सूत्र मिल गया। बुद्ध ने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, जब मैं भीतर जाग कर देखता था तो पाता था, विचार विलीन हैं! जब मैं होश में होता था, विचार अनुपस्थित होते थे! जब मैं बेहोश होता था, विचार उपस्थित हो जाते थे! बुद्ध ने कहा, मूर्च्छा मन है, अमूर्च्छा मन के पार ले जाती है।
महावीर ने भी कहा है, प्रमत्त होना बंधन है, अप्रमत्त होना मुक्ति है। प्रमत्तता का अर्थ हैः मूर्च्छा, बेहोशी--मन के प्रति, मन की क्रियाओं
के प्रति।
अप्रमत्तता का अर्थ हैः जागरूकता, अवेयरनेस, होश।
होश, जागरूकता के माध्यम से मन विसर्जित हो जाता है, चिंतन विसर्जित
हो जाता है, विचार की लहरें खो जाती हैं। उनकी सुप्त स्थिति में उनसे जो आच्छादित था, वह उदघाटित हो जाता है। उसका उदघाटन मुक्ति है, उसका उदघाटन बंधन के बाहर पहुंच जाना है। उसके उदघाटन पर जीवन एक नए डायमेंशन में, एक नए आयाम में, एक नए क्षितिज में स्थापित हो जाता है। जिन्होंने उस मुक्त जीवन-क्षण को अनुभव किया है, वे अनंत आनंद के मालिक हो गए हैं। जिन्होंने उस मुक्त क्षण का अनुभव किया है, वे अनंत शांति के मालिक हो गए हैं। और उन सारे लोगों का आश्वासन है, जो भी व्यक्ति कभी भी अपने भीतर झांकेगा, वह प्रभु के इस अदभुत राज्य का मालिक हो सकता है।
यह आश्वासन प्रत्येक को है। कोई भी अपात्र नहीं है। जीवन के और संबंधों में एक की क्षमता कम होगी, दूसरे की ज्यादा होगी। आत्मिक जीवन में सबकी क्षमता समान है। कोई भी अपात्र नहीं हो सकता। आत्मिक जीवन में प्रत्येक की क्षमता समान है, केवल जागरण को पुकारने की, केवल अपने भीतर होश को जगाने की, केवल अपने भीतर प्यास को पैदा करने की बात है। जो ठीक से अपने भीतर थोड़े से जागरूकता के प्रयोग करेगा, वह ठीक संसार के बीच मुक्ति को अनुभव करेगा।

अंततः यह जो मैं कहा, यह किन्हीं विशिष्ट लोगों के लिए नहीं कहा है।
यह हममें से प्रत्येक के लिए कहा है। जो हड्डी और मांस महावीर की देह को बनाते थे, वे ही हड्डी और मांस हमारी देह को बनाते हैं। जो चेतना उनकी उस देह के भीतर स्थापित थी, वही चेतना हमारी देह के भीतर भी स्थापित है। एक कण का भी अंतर नहीं है। एक कण का भी अंतर नहीं हो सकता है।
फिर हमें अपमानित होना चाहिए। हम मंदिरों में पूजा करते हैं। हमें असल में महावीर, बुद्ध और ईसा को देख कर अपमानित होना चाहिए। हमें आत्म-निंदित होना चाहिए। उनकी श्रद्धा और आदर में कहीं हम अपने अपमान को तो नहीं छिपा लेते हैं? उन्हें देख कर हमारे भीतर कहीं अपमान नहीं होता! हमें ऐसा भी तो नहीं होता कि इस शरीर, इस चैतन्य को वे किस परम प्रभु तक पहुंचा दिए हैं! और हम? हम कहां उसे पशु के घेरे में घुमा रहे हैं! क्या हमारे भीतर अपमान नहीं सरकता?
अगर मंदिर और उनमें विराजमान मूर्तियां हमें अपमानित नहीं करती हैं,
तो मंदिर व्यर्थ हैं, वे मूर्तियां व्यर्थ हैं। हम श्रद्धा की गुहार में, और पूजा और अर्चना में, और उनके नाम के स्मरण में अपने आत्म-अपमान को भुला देते हैं!
उस अपमान का मैं स्मरण दिलाना चाहता हूं। और हमारे भीतर कोई प्यास सरक जाए और अपमान पकड़ ले, और कोई पुरुषार्थ, कोई संकल्प पैदा हो जाए--कि जो किन्हीं लोगों ने कभी उपलब्ध किया है, उसे हम भी, मैं भी उपलब्ध करूंगा, मुझे भी उपलब्ध करना है, मैं भी बिना उपलब्ध किए अपने इस जीवन को व्यर्थ खोने को नहीं हूं। अगर यह संकल्प पकड़ जाए तो जीवन में अदभुत--निश्चित ही अदभुत क्रांति घटित हो सकती है।
प्रभु करे, वह क्रांति प्रत्येक के जीवन में घटित हो जाए, यही मेरी कामना है। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परम प्रकाशमान प्रभु को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

महावीर या महाविनाश
सातवां प्रवचन

अंतस-जीवन की एक झलक

मेरे प्रिय आत्मन्,
एक छोटी सी घटना से मैं अपनी आज की बात को शुरू करना चाहूंगा।
एक फकीर, एक संन्यासी प्रभु की खोज में पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा था।
वह किसी मार्गदर्शक की तलाश में था--कोई उसकी प्रेरणा बन सके, कोई उसे जीवन के रास्ते की दिशा बता सके। और आखिर उसे एक वृद्ध संन्यासी मिल गया राह पर ही, और वह उस वृद्ध संन्यासी के साथ सहयात्री हो गया।
लेकिन उस वृद्ध संन्यासी ने कहा कि मेरी एक शर्त है यदि मेरे साथ चलना
हो तो। और वह शर्त यह है कि मैं जो कुछ भी करूं, तुम उसके संबंध में धैर्य रखोगे और प्रश्न नहीं उठा सकोगे। मैं जो कुछ भी करूं, उस संबंध में मैं ही न बताऊं, तब तक तुम पूछ नहीं सकोगे। अगर इतना धैर्य और संयम रख सको तो मेरे साथ चल सकते हो।
उस युवक ने यह शर्त स्वीकार कर ली और वे दोनों संन्यासी यात्रा पर निकले। पहली ही रात वे एक नदी के किनारे सोए और सुबह ही उस नदी पर बंधी हुई नाव में बैठ कर उन्होंने नदी पार की। मल्लाह ने उन्हें संन्यासी समझ कर मुफ्त नदी के पार पहुंचा दिया। नदी के पार पहुंचते-पहुंचते युवा संन्यासी ने देखा कि बूढ़ा संन्यासी चोरी-छिपे नाव में छेद कर रहा है! नाव का मल्लाह तो नदी के उस तरफ ले जा रहा है, और बूढ़ा संन्यासी नाव में छेद कर रहा है! वह युवा संन्यासी बहुत हैरान हुआ, यह उपकार का बदला? मुफ्त में उन्हें नदी पार करवाई जा रही है! उस गरीब मल्लाह की नाव में किया जा रहा यह छेद?
भूल गया शर्त को। कल रात ही शर्त तय की थी। नदी से उतर कर वे दो कदम भी आगे नहीं बढ़े होंगे कि उस युवा संन्यासी ने पूछा कि सुनिए! यह तो आश्चर्य की बात है। एक संन्यासी होकर, जिस मल्लाह ने प्रेम से नदी पार करवाई, मुफ्त सेवा की सुबह-सुबह, उसकी नाव में छेद करने की बात मेरी समझ में नहीं आती, कि उसकी नाव में आप छेद करें! यह कौन सा बदला हुआ--नेकी के लिए बदी से, भलाई का बुराई से?
उस बूढ़े संन्यासी ने कहा, शर्त तोड़ दी तुमने। सांझ को ही हमने तय किया
था कि तुम पूछोगे नहीं। मेरे से विदा हो जाओ। अगर विदा होते हो तो मैं कारण बताए देता हूं। और अगर साथ चलना है तो आगे ध्यान रहे, दुबारा पूछा कि फिर साथ टूट जाएगा।
युवा संन्यासी को ख्याल आया। उसने क्षमा मांगी। उसे हैरानी हुई कि वह इतना भी संयम नहीं रख सका! इतना भी धैर्य नहीं रख सका!
लेकिन दूसरे दिन ही फिर संयम टूटने की बात आ गई। वे एक जंगल से गुजर रहे थे, और उस जंगल में उस देश का सम्राट शिकार खेलने आया था। उसने संन्यासियों को देख कर बहुत आदर दिया, उन्हें अपने घोड़ों पर सवार किया और वे सब राजधानी की तरफ वापस लौटने लगे। वृद्ध संन्यासी के पास राजा ने अपने एकमात्र पुत्र युवा राजकुमार को घोड़े पर बिठा दिया। घोड़े दौड़ने लगे राजधानी की तरफ। राजा के घोड़े आगे निकल गए; दोनों संन्यासियों के घोड़े पीछे रह गए। बूढ़े संन्यासी के साथ राजा का बच्चा भी बैठा हुआ है, वह एकमात्र बेटा है उसका। जब वे दोनों अकेले रह गए; उस बूढ़े संन्यासी ने उस युवा राजकुमार को नीचे उतारा और उसके हाथ को मरोड़ कर तोड़ दिया। और झाड़ी में धक्का देकर अपने संन्यासी साथी से कहा, भागो जल्दी।
यह तो बरदाश्त के बाहर था। फिर भूल गई शर्त। उसने कहा, हैरानी की बात
है यह! जिस राजा ने हमारा स्वागत किया, घोड़ों पर सवारी दी, महलों में ठहरने का निमंत्रण दिया, जिसने इतना विश्वास किया कि अपने बेटे के घोड़े पर तुम्हें बिठाया, उसके एकमात्र बेटे का हाथ मरोड़ कर तुम जंगल में छोड़ आए हो। यह क्या है? यह मेरी समझ के बाहर है! मैं इसका उत्तर चाहता हूं?
बूढ़े ने कहा, तुमने फिर शर्त तोड़ दी। और मैंने कहा था दूसरी बार शर्त तोड़ोगे, तो विदा हो जाएंगे। अब हम विदा हो जाते हैं, और दोनों बातों का उत्तर मैं तुम्हें दिए देता हूं। जाओ लौट कर पता लगाओ तो तुम्हें ज्ञात

होगा कि वह नाव वह मल्लाह इसी किनारे पर रात छोड़ गया, और रात उस गांव पर डाका डालने वाले लोग उसी नाव पर सवार होकर डाका डालेंगे। मैं उसमें छेद कर आया हूं। उस गांव में डाका बच जाएगा। और राजा के लड़के को मैंने हाथ मरोड़ कर छोड़ दिया है जंगल में। तुम पता लगाना, यह राजा तो अत्यंत दुष्ट और क्रूर और आततायी है, इसका लड़का उससे भी क्रूर और आततायी होने को है। लेकिन उस राज्य का एक नियम है कि गद्दी पर वही बैठ सकता है, जिसके सब अंग ठीक हों। मैंने उसके हाथ को मरोड़ दिया है, वह अपंग हो गया, अब वह गद्दी पर बैठने का अधिकारी नहीं रहा। सैकड़ों वर्षों से इस देश की प्रजा पीड़ित है, वह पीड़ित परंपरा से मुक्त हो सकेगी।
अब तुम विदा हो जाओ। मैं क्षमा चाहता हूं। तुम्हें जो प्रकट दिखाई पड़ता है, वही दिखाई पड़ता है; जो अप्रकट है, जो अदृश्य है, वह दिखाई नहीं पड़ता। और जो आदमी प्रकट पर ही ठहर जाता है, दि ऑबियस, वह जो सामने दिखाई पड़ता है, उसी पर रुक जाता है, वह कभी सत्य की खोज नहीं कर सकता है। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूं; हमारे रास्ते अलग जाते हैं।
मुझे पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है, मुझे यह भी पता नहीं कि उस नाव
से डाकू हमला करते या न करते, मुझे यह भी पता नहीं कि वह राजकुमार बड़ा होकर आततायी होता या नहीं होता, लेकिन यह कहानी मैंने किसी दूसरे ही अर्थ से कहनी चाही है। और वह यह है कि जिंदगी में एक तो प्रकट अर्थ होता है और एक अप्रकट अर्थ होता है। जीवन के समस्त तथ्यों के पीछे एक तो वह अर्थ होता है, जो ऊपर से दिखाई पड़ता है; और एक वह अर्थ होता है, जो अदृश्य होता है। जो ऊपर के ही अर्थ को देखते हैं, वे धार्मिक नहीं हैं; जो भीतर के अदृश्य अर्थ को देख पाते हैं, वे धार्मिक हैं।
इससे इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि महावीर का एक जीवन तो वह है, जो किताबों में लिखा हुआ है, शास्त्रों में लिखा हुआ है, महावीर के पूजने वाले जिसको मानते हैं; और एक महावीर का जीवन वह है, जो प्रकट नहीं है, जो अदृश्य है, और जिसे देखने के लिए बहुत धैर्य की और संयम की आंखें चाहिए। किताबों में उसे नहीं लिखा जा सकता, जो अप्रकट है; शब्दों में उसे नहीं बांधा जा सकता, जो अदृश्य है। उसके तो संकेत और इशारे हो सकते हैं।
लेकिन लोग संकेत को पकड़ लेते हैं, इशारे को पकड़ लेते हैं, और पीछे जो अप्रकट है, उसे छोड़ देते हैं! सारी दुनिया में सारे महापुरुषों के साथ यह अन्याय हुआ है, वह महावीर के साथ भी हुआ है।
अभी एक भाई ने प्रार्थना की कि उनके जीवन पर मैं कुछ कहूं।
किस चीज को जीवन समझते हैं आप महावीर का? किस घर में पैदा हुए, इस बात को? तो पागल हैं आप। किस बाप के बेटे थे, इस बात को? तो पागल हैं आप। राजा के घर में पैदा हुए, इस बात को? शादी की कि नहीं की? कि लड़की पैदा हुई कि नहीं हुई? कि कपड़े पहनते थे कि नहीं पहनते थे? कि कितनी उम्र तक जिंदा रहे, कि किस सन में पैदा हुए और किस सन में मर गए, इसको जिंदगी समझते हैं महावीर की?
तो आपमें संयम नहीं है और धैर्य नहीं है। महावीर को आप नहीं जान सकते।
ये कोई भी, महावीर की जिंदगी का इन बातों से कोई संबंध नहीं। ये नॉन-एसेंशिअल हैं, ये बातें बिल्कुल ही सारहीन हैं। लेकिन इन्हीं बातों को जीवन समझा जाता है--न केवल महावीर का, क्राइस्ट का, राम का, कृष्ण का, किसी का भी! जो बिल्कुल व्यर्थ है, जिसका कोई भी मूल्य नहीं है कि कौन आदमी कहां पैदा होता है, किस घर में पैदा होता है; राजा के घर में पैदा होता है कि दरिद्र के घर में पैदा होता है; कि क्षत्रिय के घर में पैदा होता है कि ब्राह्मण के घर में पैदा होता है; कि शूद्र के घर में पैदा होता है कि ऊंचे कुल में पैदा होता है--कहां पैदा होता है इसका कोई मूल्य नहीं है; यह शरीर की कथा है, इससे महावीर का कोई संबंध नहीं है। यह तो हर आदमी कहीं न कहीं पैदा होता है। कितने दिन जिंदा रहता है, किस सन में पैदा होता है और किस सन में समाप्त हो जाता है, इसका भी कोई मूल्य नहीं।
मैं एक गांव में बोल रहा था, एक बड़ी नगरी में। एक व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा कि मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। महावीर और बुद्ध समसामयिक थे, कंटेंपरेरी थे। उन दोनों में किसकी उम्र ज्यादा थी? दोनों में कौन बड़ा था, कौन उम्र में छोटा था? उन सज्जन ने कहा कि मैं तीन वर्ष से इस बात पर

खोज-बीन कर रहा हूं, लेकिन अभी तक निर्णय नहीं कर पाया हूं कि पहले कौन पैदा हुआ।
तो मैंने उनसे कहा, कोई भी पहले पैदा हुआ हो, किसी की उम्र कम और ज्यादा रही हो, वे तो गौण बातें हैं। लेकिन इस खोज में आपकी तीन साल की उम्र व्यर्थ हो गई, यह निश्चित है। एक बात तय है कि आपने तीन साल की उम्र गंवा दी है। कोई भी--महावीर उम्र में ज्यादा रहे हों कि बुद्ध, इससे क्या फर्क पड़ता है? और कोई पहले पैदा हुआ हो कि पीछे पैदा हुआ हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे जिंदगी को समझने में, इससे जीवन के अर्थ को खोज लेने में कौन सी बुनियादी बात प्रकट होती है? वे कभी पैदा भी न हुए हों तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पैदा होना और न पैदा होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है-- महावीर की अंतर-दशा, महावीर का अंतस-जीवन, महावीर की आत्मा क्या है? लेकिन मैं देखता हूं, जगह-जगह गुणगान हो रहे हैं, पंडित कथाएं बता रहे हैं कि कब पैदा हुए, कैसे पैदा हुए, कितने हाथी-घोड़े थे उनके घर, कितना धन था, किस तरह त्याग किया, कितना धन, कितनी कोटि धन बांट दिया! बड़े महान त्यागी थे, क्योंकि इतना धन छोड़ा। अगर इतना धन उनके पास न होता तो ये पंडित एक भी पूछने नहीं आते, क्योंकि छोड़ते क्या? अगर गरीब के घर पैदा होते महावीर तो उनका तीर्थंकर बनना कठिन था इन सारे लोगों की आंखों में, जो उनको तीर्थंकर माने हुए हैं।
आपको पता है, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं, एक भी गरीब का बेटा नहीं! हिंदुओं के सब भगवान के अवतार राजाओं के पुत्र हैं, एक भी गरीब का बेटा नहीं! बौद्धों के सब बुद्ध-अवतार राजाओं के पुत्र हैं, एक भी गरीब का बेटा नहीं! हिंदुस्तान में आज तक एक गरीब के लड़के को ईश्वर होने का हक नहीं मिल सका! क्यों? क्या अमीर के घर में ही पैदा होता है ईश्वर? भगवान ने कोई ठेका ले रखा है अमीर के घर में पैदा होने का?
नहीं, यह बात नहीं है। भगवान तो हजार घरों में पैदा होता है, लेकिन हमारी अंधी आंखें केवल उस भगवान को पहचान पाती हैं, जो धन का त्याग करता है। धन से हम भगवान को नापते हैं! गरीब भगवान हमें दिखाई नहीं पड़ सकता। हमारी नाप-जोख धन की है। हम कहते तो धर्म की बातें हैं, और हम समझते भी यह हैं कि हम त्याग की प्रशंसा कर रहे हैं। झूठी है यह बात। महावीर की प्रशंसा करते वक्त जब कोई यह गिनती गिनाता है कि कितने सोने के रथ, कितना राज्य, कितना धन, कितने हीरे-माणिक उनके पास थे, उनको ठुकरा कर, त्याग कर गए, तो याद रखना उसकी आंखों में त्याग का कोई मूल्य नहीं है; वह जो संख्या गिना रहा है धन की, उसका मूल्य है। और चूंकि उस मूल्यवान धन को वे छोड़ कर चले गए, इसलिए उनका भी मूल्य मालूम पड़ता है।
मैं जयपुर में था। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि एक बहुत बड़े मुनि हैं यहां, आप उनके दर्शन नहीं करेंगे? मैंने कहा, वे बड़े मुनि हैं, यह तुम्हें कैसे पता चला? इसके बांट-बटखरे कहां हैं, इसके तौलने का तराजू कहां है कि कौन बड़ा मुनि है और कौन छोटा मुनि है? कौन मुनि है और कौन मुनि नहीं है, कैसे तुमने जाना?
उन्होंने कहा, यह भी कोई बात है पूछने की? खुद जयपुर-नरेश उनके चरण छूते हैं!
समझ गए आप, मापदंड क्या है नापने का? जयपुर-नरेश अगर पैर नहीं छूते हैं मुनि के, मुनि छोटे हो गए! तो मैंने कहा, इसमें जयपुर-नरेश बड़े सिद्ध होते हैं कि मुनि बड़े सिद्ध होते हैं? कौन बड़ा सिद्ध होता है? इसमें जयपुर-नरेश बड़े सिद्ध होते हैं; इसमें मुनि बड़े सिद्ध नहीं होते।
जब कोई गिनती बताता है, इतना धन छोड़ा, इसलिए बड़े त्यागी हैं, इसमें त्याग बड़ा सिद्ध नहीं होता, धन बड़ा सिद्ध होता है; क्योंकि धन मापदंड है, धन क्राइटेरिअन है। इस सबकी कथा कि महावीर ने कितना धन छोड़ा, दो कौड़ी की है। जब महावीर को कोई मूल्य नहीं है उस धन का, तो महावीर के जीवन को समझने में भी उस धन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। जब महावीर को मूल्य नहीं है उस धन का, तो महावीर की जिंदगी में उसकी गणना क्यों की जाती है? कौन कर रहा है यह गणना? ये महावीर को समझने वाले लोग नहीं हैं।
महावीर कहते हैं, आत्मा का न जन्म होता, न मृत्यु होती, तो फिर महावीर
के जीवन की कथा में जन्म और मृत्यु की बात बकवास है। क्योंकि महावीर कहते

हैं जन्म भी गौण, मृत्यु भी गौण, आत्मा तो अमर है; जन्म और मृत्यु का कोई हिसाब रखने की जरूरत नहीं। जब महावीर यह कहते हैं तो महावीर की जीवन-चर्या की बात करने वाले लोग अगर महावीर के जन्म और मृत्यु की चर्चा करते हों, तो दुश्मन हैं महावीर के, अनुयायी नहीं हैं। समझे ही नहीं कि महावीर क्या कह रहे हैं, क्या उनका जीवन है!
तो किस जीवन की बात पूछना चाहते हैं आप? कुछ ऐसे ढंग से पूछी गई है बात
कि उनके जीवन पर कहें, जैसे मैं कहीं किसी और चीज पर न कह दूं!
जीवन क्या है? जीवन कोई ऐसी चीज नहीं है कि आप घटनाओं में उसके आंकड़े बिठा लें; जीवन जो ऑबियस है, जो दिखाई पड़ता है, प्रकट, वह नहीं है। और महावीर का जीवन तो वह बिल्कुल नहीं है। वह व्यक्ति उतना ही महान है, जिस व्यक्ति के भीतर ऐसा जीवन है, जो बाहर से दिखाई पड़ना मुश्किल है।
लेकिन हमारी आंखें तो केवल बाहर से देखती हैं। और इस बाहर से देखने के कारण हमने सारे महापुरुषों के साथ जो अनाचार किया है--पूजा के नाम पर, प्रार्थना के नाम पर, अनुयायी होने के नाम पर हमने महापुरुषों की जो विकृत स्थिति पैदा कर दी है, किसी दिन उसका हिसाब लगेगा तो हम परमात्मा की अदालत में कैसे अपराधी सिद्ध होंगे, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। हमारा क्या निर्णय होगा, कहना कठिन है।
हमारे देखने के ढंग, हमारी पहचानने की आंख इतनी बेमानी है कि हम जिन चीजों को आंकते और पहचानते हैं, उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। हम कुछ व्यर्थ को खोजने में इतने सफल हैं--जैसे, थोड़ा समझें तो हमें दिखाई पड़े कि बाहरी जीवन क्या है और अंतस-जीवन क्या है? और महावीर के अंतस-जीवन में थोड़ी झांकी मिल जाए, तो हमारे खुद के अंतस-जीवन में भी झांकी मिलने के लिए कुछ रास्ता सिद्ध और साफ हो सकता है।
मुझे कोई प्रयोजन नहीं इस बात से कि महावीर की प्रशंसा में कुछ बातें कही जाएं कि न कही जाएं; महावीर की प्रशंसा में कहने से महावीर को तो जरा भी चिंता नहीं थी। जब वे जीवित थे, तब चिंता नहीं थी, अब तो चिंता का कोई कारण नहीं है। लेकिन उनके पीछे चलने वाले जो लोग हैं, उनको बड़ा आनंद आता है कि कोई महावीर स्वामी, भगवान महावीर, उनकी प्रशंसा में कुछ बातें कहे! क्यों, उनको क्यों मजा आता है?
महावीर को तो कोई मजा नहीं आता। महावीर तो प्रशंसा के भूखे नहीं हैं, आदर के भूखे नहीं हैं। महावीर को तो यश की कोई कामना नहीं है। महावीर को तो पता भी नहीं है कि कौन उनके बाबत क्या सोचता है और क्या कहता है, और न इसका वे कोई मूल्य मानते हैं। लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले के मन को क्यों गुदगुदी छूटती है? क्यों ऐसा अच्छा लगता है कि कोई महावीर की प्रशंसा करे? बात क्या है?
बीमारी अनुयायी के भीतर होगी, महावीर में तो बीमारी का कोई पता नहीं चलता। बीमारी यह है कि जब जोर से अनुयायी चिल्लाता है, बोल महावीर स्वामी की जय, तो वह महावीर स्वामी की जय नहीं बोल रहा है, वह अपनी जय बोल रहा है। मेरे भगवान जो हैं, वे बहुत बड़े भगवान हैं! उनकी आड़ में मैं भी बड़ा हो जाता हूं। अन्यथा मुझे उनसे क्या लेना-देना? भगवान से मुझे क्या प्रयोजन? उनकी जय से मुझे क्या प्रयोजन?
और जय बोलने से किसी की जय सिद्ध होती है? मेरे जीवन से जय बोली जानी चाहिए कि मेरा जीवन प्रकट बने; मेरे भीतर वह प्रकट हो, जिसको मैं आदर दे रहा हूं, जो उसके भीतर प्रकट हुआ है। जिस फूल की सुगंध की मैं बातें कर रहा हूं, मेरी जिंदगी में भी वह सुगंध हो, तो जय निकलती है। और नहीं तो थोथे जय-जयकार से पृथ्वी में बहुत शोरगुल मच चुका, उससे कोई परिणाम नहीं होता। जीसस क्राइस्ट के मानने वाले चिल्लाते रहते हैं, जय हो जीसस क्राइस्ट की। राम के मानने वाले राम का जय-जयकार करते हैं, महावीर के मानने वाले महावीर का जय-जयकार करते हैं। और जय-जयकार में एक-दूसरे को हरा दें इसकी कोशिश करते हैं, कि हमारा जय-जयकार दूसरे के शोरगुल से बड़ा हो जाए।
इससे अगर महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट अगर कहीं भी होंगे, तो कान पर हाथ रख लेते होंगे कि ये पागल बड़ा शोरगुल मचाते हैं, शांति से बैठने नहीं देते। काहे के लिए चिल्ला रहे हैं? किसके लिए चिल्ला रहे हैं? यह क्यों

इतनी उत्सुकता और आतुरता क्यों है कि कोई प्रशंसा करे? क्यों यह प्रशंसा में हम अपना रस, अपने अहंकार की तृप्ति देखना चाहते हैं?
जब कोई कहता है, राम बहुत बड़े हैं, तो राम का मानने वाला भी बड़ा हो जाता
है आड़ में, ओट में कि मैं कोई छोटे का मानने वाला नहीं हूं, बहुत बड़े का मानने वाला हूं। जब कोई कहता है, जीसस क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं, तो जीसस क्राइस्ट का मानने वाला बड़ा हो जाता है, कि हो गए फीके राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, सब। जीसस क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं और मैं उनका मानने वाला हूं। जब महावीर की प्रशंसा होती है तो महावीर का मानने वाला सिर हिलाने लगता है कि बड़ी अच्छी बातें कही जा रही हैं!
कुछ अच्छी बातें नहीं कही जा रही हैं, आपके अहंकार को गुदगुदाया जा रहा है, आपको मजा आ रहा है, आप बड़े होते मालूम हो रहे हैं। लेकिन ध्यान रहे, धर्म अहंकार का शत्रु है। और महावीर की तो सारी की सारी साधना अहंकार को मिटा देने की साधना है। तो ये कुछ महावीर की जयंती पर करने वाली बातें नहीं हैं। इसको सोचना जरूरी है, विचारना जरूरी है। हमारे मोटिव्स क्या हैं? हमारी अंतस-इच्छा क्या है जो हम जय-जयकार बोलते हैं, या प्रशंसा के लिए आतुर हो उठते हैं कि कोई प्रशंसा करे? क्यों?
लेकिन इन्हीं गलत हमारी इच्छाओं ने हमारे सारे महापुरुषों के अदभुत जीवन को एकदम विकृत कर दिया। हमारे देखने के ढंग, हमारे सोचने के ढंग हम जैसे बंद हैं, हमारे जैसे संकीर्ण हैं। और हमारी संकीर्ण वृत्ति और बुद्धि के कारण, जिस महापुरुष को हम देखने जाते हैं अपनी संकीर्ण खिड़की से, उसकी तस्वीर भी छोटी हो जाती हो तो आश्चर्य नहीं है।
जैनी मिल-जुल कर महावीर को छोटा करते हैं। ईसाई मिल कर जीसस को छोटा करते हैं। हिंदू मिल कर राम को छोटा करते हैं। मुसलमान मिल कर मोहम्मद को छोटा करते हैं। ये लोग इतने बड़े थे कि इस सारी पृथ्वी के हो सकते थे। लेकिन इनके अनुयायियों ने घेरे बना लिए और इनको छोटा कर दिया। ये थोड़े से लोगों की संपदा हो गए हैं! तीस लाख मुश्किल से जैन होंगे हिंदुस्तान में; महावीर तीस लाख जैनियों की संपदा हो गए! और वे इतने जोर से शोरगुल मचाते हैं कि दूसरा आदमी शंकित हो जाता है कि ये इनके भगवान हैं, ये इनके आदमी हैं, हमें क्या लेना-देना! महावीर से वंचित हो जाती है सारी मनुष्यता।
इसी भांति सारे महापुरुषों से सारी मनुष्यता वंचित हो गई। जो सब की संपदा होने चाहिए, वे कुछ लोगों की संपदा हो गए हैं और वे कुछ लोग बड़ी अकड़ से चिल्लाते हैं! वह अकड़ उनकी अपनी है, उसका महावीर से क्या लेना-देना? इसलिए मैं उनकी प्रशंसा में कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि आपकी प्रशंसा में कहने की कोई भी जरूरत नहीं, कोई भी हित नहीं, कोई भी फायदा नहीं। मैं तो कुछ बात जरूर कहना चाहूंगा, जिसमें आपकी प्रशंसा न हो, बल्कि महावीर की अंतस-चेतना को समझें तो आप सेल्फ-कंडेम्ड हो जाएं, आपको अपनी निंदा मालूम पड़े। क्योंकि जब किसी महापुरुष के पास किसी व्यक्ति को आत्म-निंदा अनुभव होती है, तो उस व्यक्ति के जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।
महापुरुष की प्रशंसा में अपनी प्रशंसा से तो कोई क्रांति शुरू नहीं होती, हम और जड़ हो जाते हैं। लेकिन महापुरुष के सान्निध्य में, उसके स्मरण में, उसके चित्र के सामने अगर हमारा चित्र बिल्कुल छोटा, दयनीय, दीन-हीन दिखाई पड़ने लगे, ऐसा प्रतीत हो कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं और मनुष्य इतना बड़ा भी हो सकता है! अगर एक मनुष्य के भीतर इतनी महानता घट सकती है तो मैं बैठा-बैठा कहां जीवन गंवा रहा हूं! मेरे भीतर भी तो यह घटना घट सकती थी। महावीर एक-एक व्यक्ति के भीतर भी तो पैदा हो सकते हैं।
एक बीज वृक्ष बन सकता है, तो हर बीज के लिए चुनौती हो गई कि वह वृक्ष बन
कर दिखा दे। और अगर कोई बीज वृक्ष नहीं बन सकता, तो वृक्ष के सामने खड़ा होकर अपनी आत्म-निंदा अनुभव करे। अनुभव करे इस बात को कि मैं व्यर्थ खो रहा हूं; मैं भी वृक्ष हो सकता था और मेरे नीचे भी हजारों लोगों को छाया मिल सकती थी; मैं भी एक फलों से लदी हुई छाया का, विश्राम का स्थल बन सकता था, लेकिन मैं नहीं बन सका हूं।
क्या महावीर के निकट पहुंच कर आपको ऐसा लगता है कि जो महावीर के भीतर
हो सका, वह आपके भीतर नहीं हो पा रहा है? क्या आपको आत्म-ग्लानि अनुभव होती है? अगर होती है तो महावीर के जीवन से कुछ, महावीर की साधना से, महावीर की

अंतस-चेतना से आपको कुछ किरणें मिल सकती हैं जो मार्गदर्शक हो जाएं। लेकिन नहीं, इसकी हमें फुर्सत कहां है? हम जय-जयकार में, महावीर के जय-जयकार में अपनी आत्म-ग्लानि को छिपा लेते हैं, भुला देते हैं, भूल जाते हैं कि यह प्रश्न आत्म-चिंतन का था! यह महावीर के समक्ष स्वयं को रख कर रिलेटिव, सापेक्ष रूप से सोचने का था कि मैं कहां और यह व्यक्ति कहां! लेकिन नहीं, हम बहुत होशियार हैं! आदमी की जात बहुत चालाक है। वह इतनी होशियारी से काम करती है कि बजाए इसके कि महापुरुष को, महावीर को, या किसी और को सामने रख कर अपने और उनके बीच तुलना कर सके! यह नहीं, अपने को तो भुला देती है उनकी प्रशंसा में, जय-जयकार में, और फिर उन पर वे गुण आरोपित कर लेती है, जो उनके गुण नहीं होते, बल्कि हमारे भीतर के कुछ कारण होते हैं। जैसे, जो आदमी भोजन करने का अति लोभी होगा, जो आदमी भोजन में बहुत लोलुप होगा, ग्रीडी होगा, वह आदमी हमेशा उपवास करने वाले आदमी का आदर करेगा। जब कोई आदमी उपवास करने वाले व्यक्ति का आदर करता हो तो समझ लेना कि यह उपवास करने वाले व्यक्ति के आदर का इससे बहुत संबंध नहीं है; इससे बहुत संबंध उस आदमी का है, जो भोजन करने में बहुत लोभी और लालची है। उसके भोजन करने की जो अति वासना है, उसके कारण उपवासी आदमी उसको आदरणीय मालूम पड़ता है।
जो आदमी बहुत कामुक है, कामी है, उस आदमी को ब्रह्मचारी का जीवन बहुत आदृत मालूम पड़ेगा! जो आदमी हिंसक है, जो आदमी अत्यंत दुष्ट और क्रूर और कठोर है, उस आदमी को अहिंसक का जीवन बहुत प्रभावित करता हुआ मालूम पड़ेगा! यह बड़ी अजीब बात है। यह बहुत अजीब बात है। जो आदमी धन का बहुत पागल लोभी है, उसको त्यागी का जीवन बहुत प्रभावित करता हुआ मालूम पड़ेगा! लेकिन यह मनोवैज्ञानिक है। इसके पीछे कारण हैं। जो हम नहीं कर सकते, जब कोई उसे करता है, तो हम चकित हो जाते हैं। जो मैं नहीं कर सकता, जब कोई और करता है, तो मैं चकित हो जाऊं, यह स्वाभाविक है।
महावीर से जो लोग चकित हो गए हैं, वे महावीर से ठीक विपरीत लोग हैं। बुद्ध से जो आदमी चकित हो गया है, वह बुद्ध से ठीक विपरीत आदमी है। क्राइस्ट से जो आदमी प्रभावित हो गया है, वह क्राइस्ट से ठीक विपरीत आदमी है। इसीलिए तो महापुरुष एक तरफ, अनुयायी बिल्कुल उलटे--बिल्कुल उलटे सिद्ध होते हैं।
थोड़ा सोचें। महावीर तो कहते हैं अपरिग्रह, महावीर तो सारा स्वामित्व छोड़ देते हैं। नहीं मानते कि मेरा कोई धन है। लेकिन महावीर के अनुयायियों ने भारत में जितना धन इकट्ठा किया, किसी और ने इकट्ठा किया? यह तो अजीब बात है! लेकिन यह अजीब नहीं है, बहुत साइकोलाजिकल है। बहुत कुछ कारण हैं इसके पीछे। इसके पीछे महावीर की कोई भूल नहीं है। महावीर के सर्व-धन-त्याग के कारण, जितने लोग धन के प्रति अति लोभी थे, वे सब महावीर के प्रति आकर्षित हो गए। वे जो नहीं कर सकते थे, महावीर वही कर रहे हैं।
जीसस क्राइस्ट कहते हैं, प्रेम। सबको प्रेम। शत्रु को भी प्रेम। जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। और जो तुम्हारा कोट छीने, उसको कमीज भी दे देना, कहीं उसे कमीज की भी जरूरत न हो। जो आदमी तुम्हें एक मील तक कहे मेरा बोझा ढोकर ले चलो, दो मील तक ढोकर ले जाना। जीसस क्राइस्ट तो यह कहते हैं। लेकिन क्रिश्चियंस ने जितने जनता के गालों पर चांटे मारे हैं, और आदमियत के साथ जितनी हत्या और हिंसा की, धर्म के नाम पर जितने युद्ध लड़े, जितने निहत्थे लोगों को समाप्त किया, जितने लोगों को आग में जलाया--लाखों की संख्या में! बड़ी हैरानी की बात है।
जीसस क्राइस्ट कहते हैं कि एक गाल पर मारे कोई चांटा तो दूसरा कर देना, शत्रु को भी प्रेम करना। और अनुयायी? अनुयायी सिवाय हत्या करने के दूसरा काम नहीं करते! बात क्या है? यह प्रेम के संदेश देने वाले के आस-पास वे लोग इकट्ठे हो गए, जिनके जीवन में प्रेम बिल्कुल नहीं था। वे आकर्षित हो गए। जो वे नहीं कर सकते थे, उस चीज के प्रति चकित हो गए। यह बहुत अदभुत बात है, यह बहुत कंट्राडिक्टरी बात है। लेकिन सारी दुनिया में यह हुआ। अगर महापुरुष का जीवन आप देखें और उसके आस-पास अनुयायी देखें, तो आप ठीक उलटे अनुयायी उसके आस-पास इकट्ठे पाएंगे। और ये उलटे अनुयायी उस महापुरुष में उन्हीं बातों की प्रशंसा करेंगे, जिन बातों की उनमें कमी

है। उस प्रशंसा को बड़ी करते जाएंगे, बड़ी करते जाएंगे। आखिर वहां पहुंचा देंगे, एक्सट्रीम पर पहुंचा देंगे, महापुरुष झूठा मालूम पड़ने लगेगा उस सीमा तक बातों को खींच कर ले जाएंगे! इसमें महापुरुष का कसूर नहीं है, इसमें अनुयायी... । और अनुयायी अपनी कमियों को सब्स्टीट्यूट कर रहा है, पूर्ण कर रहा है, महापुरुष से अपने भीतर जोड़ रहा है। थोड़ा सोचें तो दिखाई पड़ेगा।
हिंदुस्तान में महावीर की, बुद्ध की शिक्षा त्याग की शिक्षा है, अपदार्थ की शिक्षा है--भौतिकता से मोह छोड़ना है, पदार्थ से ऊपर उठना है, मैटीरियलिज्म से ऊपर उठना है। लेकिन अनुयायी जितने मैटीरियलिस्ट हैं, देख कर हैरानी होती है। जितने पदार्थ को जोर से पकड़े हुए हैं, देख कर हैरानी होती है। उन्होंने महावीर के मंदिर भी बनाए हैं तो सोने की मूर्तियां बना दी हैं! उस महावीर की, जो बेचारा जीवन भर कह रहा है कि सोना मिट्टी है। उन्होंने महावीर पर धन की तिजोरियां इकट्ठी कर दी हैं। उस महावीर पर, जो कह रहा है धन राख है, धन छोड़ दो, धन का कोई मूल्य नहीं। महावीर के उस मंदिर पर, जो महावीर हाथ में एक लकड़ी भी नहीं रखता, जो कहता है कि हाथ में लकड़ी भी रखनी हिंसक होने का सबूत है, संभावित शत्रु की तैयारी है; हाथ में लकड़ी रखनी कायरता का सबूत है, क्योंकि जो भयभीत है, वह शस्त्र रखता है-- जो महावीर हाथ में लकड़ी भी नहीं रखता, उसके मंदिर के सामने बंदूकधारी पहरेदार खड़ा हुआ है! आश्चर्य की बातें हैं, मिरेकल है, चमत्कार है! यह क्या हो रहा है? और यही लोग महावीर की प्रशंसा कर रहे हैं, गुणगान कर रहे हैं, तो हो गई महावीर की जिंदगी ठीक। ये जो जिंदगी खड़ी करेंगे, वह जिंदगी झूठी होगी, फाल्स होगी; बिल्कुल झूठ होगी, क्योंकि इनके द्वारा खड़ी होगी। दुनिया भर के महापुरुषों के साथ ऐसा हुआ। एक के साथ हुआ होता, ऐसी बात नहीं। इसलिए कोई यह न सोचे कि महावीर के साथ जो हुआ है, वह दूसरों के साथ नहीं हुआ; वह सबके साथ हुआ है। जो मैं महावीर के लिए कह रहा हूं, वह केवल प्रतीक है। वह सबके साथ हुआ है।
तो हम जो जिंदगी खड़ी कर लेते हैं, वह हमारी देखी गई जिंदगी है, महावीर
की जिंदगी नहीं है। महावीर को जैसा हम देखते हैं! हम कैसा देखते हैं? हम उसी शक्ल में देखते हैं, जिसकी हमारे भीतर कमी है। हम देखते हैं कि मैं तो स्त्री को छोड़ कर नहीं जा सकता, महावीर स्त्री को छोड़ कर जा रहे हैं! मैं धन नहीं छोड़ सकता, महावीर धन छोड़ रहे हैं! मैं मकान नहीं छोड़ सकता, महावीर मकान छोड़ रहे हैं! मैं भूखा नहीं रह सकता, महावीर उपवास कर रहे हैं! हम एकदम चकित हो जाते हैं और हम कहते हैं, धन्य है भगवान! तुम बड़े तपस्वी हो। तुम दुख को अंगीकार कर लेते हो। तुम सुख के त्यागी हो। तुम दुख को वरण करते हो। तुम तपस्वी हो, तुम तपश्चर्या में जाते हो; हम भोगी हैं, हम दीन-हीन हैं, हम पापी हैं, तुम पुण्यात्मा हो।
लेकिन चीज बदल गई हमारे देखने से। महावीर न तो त्यागी हैं, न तपस्वी हैं; न धन को छोड़ रहे हैं, न कुछ और छोड़ रहे हैं। महावीर के भीतर कुछ और घटित हो रहा है; उस और घटित को हम इस भांति देख रहे हैं! यह हमारा एटिट्यूड है, यह महावीर के जीवन की घटना नहीं। महावीर त्यागी नहीं हैं, महावीर ज्ञानी हैं।
इसको थोड़ा समझ लें, तो उनकी जिंदगी के भीतर घुसना आसान हो जाएगा। ऐसे तीन सूत्रों पर मैं आपसे बात करना चाहूंगा, जो उनके अंतस-जीवन में प्रवेश करवा दें।
महावीर त्यागी नहीं, ज्ञानी हैं। लेकिन हम कहते हैं, महावीर त्यागी हैं। और हम जय-जयकार करते हैं कि महावीर जैसा त्यागी नहीं हुआ! शायद आपको पता ही नहीं है, त्याग सिर्फ अज्ञानी करते हैं, ज्ञानी कभी त्याग नहीं करता। क्यों ऐसा मैं कह रहा हूं? घबड़ाहट होगी आपको, बेचैनी होगी, मैं क्यों ऐसा कह रहा हूं? मैं इसलिए ऐसा कह रहा हूं कि ज्ञानी को तो व्यर्थ दिखाई पड़ जाता है संसार। जो व्यर्थ है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता, वह छूट जाता है। अज्ञानी को छोड़ना पड़ता है, उसे व्यर्थ दिखाई नहीं पड़ता; वह कोशिश कर-करके छोड़ता है।
महावीर छोड़ते नहीं, छूट जाता है।

ज्ञान में त्याग अपने आप आ जाता है छाया की तरह; अज्ञान में त्याग लाना पड़ता है। अज्ञान के जीवन में त्याग है झाड़ से कच्चे पत्ते तोड़ने जैसा, जबरदस्ती पत्ते तोड़े जाते हैं। पत्ता पीड़ित होता है, शाखा पीड़ित होती है, घाव छूट जाता है पीछे, वृक्ष के प्राण पर चोट लगती है। और त्याग ज्ञानी का--छूटने वाला, छोड़ने वाला नहीं--वह सूखे पत्ते की भांति वृक्ष से गिर जाता है, न वृक्ष को खबर लगती कि कब पत्ता गिर गया, न पत्ते को पता चलता कि कहीं से टूट गया हूं, न कहीं दुनिया में कोई खबर आती, चुपचाप, मौन, कोई हवा का एक झोंका और पत्ता चुपचाप नीचे बैठ जाता है।
महावीर ज्ञानी हैं, लेकिन हमें त्यागी दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हम भोगी हैं। वह जो हमारा भोग है, उस भोग के कारण हमें त्याग दिखाई पड़ता है, महावीर का ज्ञान दिखाई नहीं पड़ता। महावीर छोड़ नहीं रहे हैं, महावीर को चीजें व्यर्थ दिखाई पड़ गईं। और जब व्यर्थ दिखाई पड़ जाती है, उसको छोड़ना पड़ता है?
एक रात एक जंगल से दो संन्यासी निकल रहे हैं। एक वृद्ध संन्यासी है, युवा संन्यासी उसके साथ पीछे है। वृद्ध एक झोला लटकाए हुए है कंधे से, छाती से दबा कर पकड़े हुए है झोले को। रात पड़ने लगी, अंधेरा उतरने लगा। तो उसने पूछा युवा संन्यासी से, कोई भय तो नहीं है? जंगल खतरनाक मालूम होता है, रास्ता बीहड़ मालूम होता है। कोई खतरा तो नहीं है?
युवा संन्यासी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि संन्यासी को खतरा कैसा? खतरा होता है उनको, जो संन्यासी नहीं हैं। संन्यासी को खतरा कैसा! संन्यासी को भय कैसा! संन्यासी के पास क्या है, जिसे कोई छीन लेगा! संन्यासी के पास क्या है, जिसे कोई मिटा देगा! संन्यासी के पास क्या है, जिसके लिए वह चिंतित हो, असुरक्षित अनुभव करे! वह कुछ चिंतित हुआ, हैरान हुआ। फिर आज तक यह बूढ़ा संन्यासी कभी नहीं पूछा, बड़े घने जंगलों में से निकलना पड़ा; अंधेरी रातों में रुकना पड़ा; बीहड़ रास्ते थे, निर्जन मार्ग थे, इसने कभी नहीं पूछा कि खतरा तो नहीं है कोई; आज क्या हो गया?
थोड़ी दूर और, फिर उस वृद्ध संन्यासी ने पूछा कि रात बढ़ती जाती है, गांव पता नहीं कितनी दूर है; दीए भी दिखाई नहीं पड़ते--कोई खतरा तो नहीं है?
फिर वे एक कुएं पर रुके। और वृद्ध संन्यासी ने झोला दिया युवा संन्यासी को और कहा, मैं हाथ-मुंह धो लूं, झोला संभाल कर रखना! तब युवा संन्यासी को लगा कि खतरा जरूर झोले के भीतर होना चाहिए। उसने झोले के भीतर हाथ डाला--बूढ़ा तो पानी खींचने लगा कुएं से--उसने झोले के भीतर हाथ डाला तो देखा सोने की एक ईंट है। समझ गया खतरा कहां है। उसने वह ईंट निकाल कर बाहर फेंक दी, एक पत्थर की ईंट उठा कर झोले के भीतर रख दी। बूढ़े संन्यासी ने जल्दी से पानी-वानी पीया, जल्दी से आकर झोला लिया--ठीक से पानी भी नहीं पी पाया बेचारा!
कब कौन पी पाता है जिनके पास सोने की ईंटें होती हैं? कोई पी पाता है पानी ठीक से? और अगर किसी को ठीक से पानी पीते देख लें, तो वे कहेंगे, महान अदभुत आदमी है, यह बड़ा महापुरुष है! शांति से पानी पी रहा है, शांति से खाना खा रहा है, शांति से सो रहा है! ये साधारण सी बातें महापुरुष जैसी मालूम होने लगती हैं जो कि हर एक आदमी में होनी चाहिए, क्योंकि हम बिल्कुल विक्षिप्त और पागल हैं। उस पागलपन की वजह से थोड़ी सी भी शांति बहुत मालूम होती है।
उसने जल्दी से झोला लिया, कंधे पर टांग लिया, फिर छाती से लगा लिया, फिर चलने लगा। उस बेचारे को पता भी नहीं है कि अब वह जो छाती से लगाए हुए है, वह पत्थर की एक ईंट है! किसको पता है कि आप जिसको छाती से लगाए हुए हैं, वह सोने की है या पत्थर की है? जो जानते हैं, वे कहते हैं पत्थर की; जो नहीं जानते हैं, वे कहते हैं सोने की।
फिर वह आगे बढ़ गया। फिर पूछने लगा। रात और बढ़ गई है, खतरा और बढ़ गया। उसने पूछा कि कोई खतरा तो नहीं है? उस युवा ने कहा, आप बेफिकर हो जाएं, खतरे को मैं पीछे फेंक आया हूं। वह तो घबड़ा गया। जल्दी से झोले में हाथ डाला, ईंट निकाली, पत्थर की ईंट थी! एक क्षण तो सन्नाटा हो गया उस जंगल में। फिर वह वृद्ध हंसने लगा। ईंट निकाल कर उसने बाहर फेंक दी। फिर कहने लगा, अब यहीं सो जाएं, अब गांव तक जाने की क्या जरूरत! फिर वे वहीं सो गए। फिर सुबह

जब वे उठे तो उस युवा ने पूछा, आप महान त्यागी हैं, आपने ईंट निकाल कर झोले से बिल्कुल बाहर फेंक दी! आपने महान त्याग किया! वह बूढ़ा कहने लगा, त्याग कहां पागल! जब ईंट दिखाई पड़ गई कि पत्थर है, तो त्याग क्या? छूट गई, व्यर्थ हो गई। त्याग तो उसका करना होता है, जो स्वर्ण की मालूम पड़ती है।
महावीर ने जो छोड़ा है, वह मिट्टी दिखाई पड़ने लगा है। उसका कोई त्याग नहीं किया गया है--छूट गया, जैसे मिट्टी छूट जाती है। लेकिन भक्तगण चिल्ला रहे हैं कि हे महात्यागी! हे दीर्घ तपस्वी! हे महापुरुष! तुम धन्य हो! तुमने कितना-कितना छोड़ा! और महावीर हंसते होंगे कि यह क्या पागलपन है, मैंने कुछ छोड़ा नहीं! और ढाई हजार साल से ये चिल्ला रहे हैं कि हे महान तपस्वी! हे त्यागी! हे महापुरुष! तुमने कितना छोड़ा!
यह भोगियों की वृत्ति है, यह महावीर का जीवन नहीं। महावीर का अंतस-जीवन ज्ञान का है; लेकिन बाहर से जो जीवन हमें दिखाई पड़ता है, वह त्याग का दिखाई पड़ता है। और त्याग और ज्ञान में जमीन-आसमान का भेद है। और इसका परिणाम क्या होता है!
इसका परिणाम केवल महावीर की जिंदगी गलत हम लिखते तो क्या हर्जा था, लिख लेते गलत। खतरा यह होता है कि गलत जिंदगी का अनुकरण करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं। वे त्याग करना शुरू कर देते हैं और जिंदगी उनकी नष्ट हो जाती है।
जिंदगी का आधार है ज्ञान; और ज्ञान से जो त्याग आ जाए, वह है सहज फल। लेकिन इस गलत कथा और जीवन के नाम पर पढ़ने वाले त्याग शुरू कर देते हैं! और त्याग से जो शुरू करता है, वह ज्ञान पर तो कभी पहुंचता नहीं, जीवन भर दुख में और पीड़ा में जीता है, क्योंकि सोने की ईंट छोड़ता है। सोच सकते हैं आप, सोने की ईंट! सम्हालना भी खतरा है, दुख है, पीड़ा है; और छोड़ना भी दुख और पीड़ा है, क्योंकि सोना दिखाई पड़ता रहता है। सोना छोड़ दिया मैंने--कहीं भूल तो नहीं हो गई, कहीं हैरानी तो नहीं हो गई।
मुझे संन्यासी मिलते हैं। सबके सामने तो आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं; और जब एकांत में मिलते हैं, तो कहते हैं, बड़ा भय मालूम होता है, बड़ी शंका मालूम होती है--कहीं हमने सब छोड़ कर गलती तो नहीं कर ली? हम बिल्कुल अंधेरे में जा रहे हैं। पता नहीं, कहीं ऐसा न हो कि जो भोग रहे हैं, वे ही ठीक हैं।
एकांत में उनके मन में यह संदेह, यह डाउट खड़ा रहता है हमेशा कि हम छोड़
आए हैं! सारा जगत भोग रहा है, हम छोड़ आए हैं। कहीं हमने भूल तो नहीं कर ली? हम तो बिल्कुल अंधेरे रास्ते पर चल रहे हैं। हाथ की रोटी छोड़ रहे हैं, मोक्ष की रोटी का विचार कर रहे हैं! पता हो, न हो!
लेकिन महावीर को ऐसी शंका नहीं है उनके प्राणों में। वे किसी रोटी के लिए नहीं छोड़ रहे हैं। वे किसी चीज को इसलिए नहीं छोड़ रहे हैं कि कुछ मिल जाएगा। वे किसी चीज को इसलिए छोड़ रहे हैं कि कुछ मिल गया है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना।
एक आदमी छोड़ता है कोई चीज--अपने हाथ के पत्थर छोड़ देता है इस आशा में
कि कल हीरे मिलेंगे तो हाथ भर लूंगा। इसकी पीड़ा आप नहीं समझ सकते। हीरे अभी मिले नहीं हैं और जो पास में था--रंगीन पत्थर सही, अभी हीरे मालूम होते थे; लेकिन लोग कहते थे रंगीन पत्थर हैं, शास्त्र कहते थे रंगीन पत्थर हैं, गुरु-संन्यासी समझाते थे कि रंगीन पत्थर हैं, छोड़ दो--समझ-बूझ कर, लोगों की बात सुन कर इसने छोड़ दिए रंगीन पत्थर, जो इसको हीरे मालूम होते थे, इस आशा में कि हीरे मिलेंगे। और अभी हीरे मिले नहीं, हाथ खाली हो गए हैं, प्राण छटपटा रहे हैं। खाली हाथ में प्राण बहुत छटपटाते हैं, पत्थर भी रखे रहें तो भी राहत मिलती है--कुछ तो है, पास कुछ तो है।
महावीर ने कुछ पाने के लिए नहीं छोड़ा। महावीर की हालत उस आदमी की हालत है, जिसके सामने हीरों की खदान आ गई है और अब पत्थर इसलिए छोड़ रहा है कि अब पत्थर रखने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया है, अब हीरे रखने का मौका सामने आ गया है। हीरे मिल गए हैं, इसलिए पत्थर छोड़े जा रहे हैं। जिस आदमी को हीरे मिल जाएं, अगर वह घर में से पत्थर निकाल कर बाहर फेंक दे और हीरों से कोठरी भर ले, आप उसको त्यागी कहेंगे? कहेंगे त्यागी उसको?

मेरे घर में बहुत कबाड़ भरा है, फर्नीचर है, फलां है, ढिकां है, सब इकट्ठा है। कल मुझे हीरे की एक खदान मिल जाए। सब फर्नीचर-वर्नीचर, कबाड़, सब बाहर निकाल दूंगा, हीरे भर लूंगा; आप सब मिल कर मुझे महा-तपस्वी कहेंगे? कि ये महान तपस्वी हैं, इन्होंने घर का कूड़ा-कचरा सब बाहर त्याग कर दिया! कोई मुझे महा-तपस्वी नहीं कहेगा।
महावीर को भी महा-तपस्वी मत कहिए, महा-ज्ञानी कहिए। ज्ञान से तपस्वी हैं।
ज्ञान से त्याग फलित होता है। ज्ञान का त्याग सहज फल है, लेकिन त्याग
से ज्ञान कभी नहीं मिलता। ज्ञान से त्याग मिल जाता है, लेकिन त्याग से ज्ञान कभी नहीं मिलता।
पच्चीस सौ साल से महावीर के पीछे चलने वाला इसी मुसीबत में उलझा है,
वह त्याग करके ज्ञान पाने की कोशिश कर रहा है! और महावीर के जीवन में जो घटना घटी है, वह ज्ञान से त्याग की है। ये बिल्कुल रिवर्स, बिल्कुल उलटी वैल्यूज पकड़ जाती हैं; और तब सारी की सारी दृष्टि भ्रांत हो जाती है। फिर हमारे हाथ में एक ही गुणगान रह जाता है करने को। जब हम त्याग भी करते हैं और आनंद नहीं मिलता, ज्ञान नहीं मिलता, तो हम सोचते हैं पिछले जन्मों का कोई कर्म बाधा दे रहा है, या हमारा त्याग पूरा नहीं है, या हमारे मन में वासना शेष रह गई है। और फिर यह कोई एक-दो दिन का काम तो नहीं है, यह तो जिंदगी-जिंदगी लगती हैं, अनेक जन्म लगते हैं, तब कहीं यह हो पाएगा। यह कोई छोटी बात थोड़े ही है! फिर हम ऐसा कंसोलेशन, ऐसी बातें ढूंढ-ढूंढ कर मन को समझाते हैं, सांत्वना देते हैं। लेकिन ये सांत्वनाएं खतरनाक हैं। सचाई उलटी है। ज्ञान को खोजिए, ज्ञान मिल सकता है; क्योंकि ज्ञान आपके प्राणों में छिपा हुआ दीया है, जिसे कहीं लेने नहीं जाना।
महावीर का यही अनुभव, महावीर का यही केंद्रीय अनुभव है कि ज्ञान मनुष्य का स्वभाव है, ज्ञान मनुष्य की आत्मा का धर्म है, ज्ञान मनुष्य की आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान को खोजने कहीं जाना नहीं है, ज्ञान भीतर है। भीतर की तरफ मुड़ते ही, शांत होते ही, शून्य होते ही, मौन होते ही उस ज्ञान की किरणें मिलनी शुरू हो जाती हैं।
लेकिन भीतर दो तरह के आदमी नहीं मुड़ पाते। एक तो वे नहीं मुड़ पाते, जो बाहर की दुनिया में धन इकट्ठा करते हैं, बाहर की दुनिया में मकान बनाते हैं, बाहर की दुनिया में यश कमाते हैं। वे लोग भीतर की तरफ कैसे मुड़ें? उनका मन बाहर की तरफ लगा है। दूसरे वे लोग नहीं मुड़ पाते--और इसे ठीक से सुन लेना, क्योंकि पहली बात सुनी हुई होगी, दूसरी बात विचारणीय है--दूसरे वे लोग नहीं मुड़ पाते, जो बाहर के त्याग में पड़े रहते हैं। धन छोड़ो, मकान छोड़ो, स्त्री छोड़ो, यह छोड़ो, वह छोड़ो--इनकी दृष्टि भी बाहर है। इकट्ठा करने वाले की दृष्टि भी बाहर है, छोड़ने वाले की दृष्टि भी बाहर है, क्योंकि दोनों का आब्जेक्ट बाहर है।
तो न तो भोगी भीतर जा पाता, न त्यागी भीतर जा पाता। भोगी भी बाहर भटकता है, त्यागी भी बाहर भटकता है। भोगी सुख को खोजता है, त्यागी दुख को खोजता है। त्यागी कोशिश करता है कि जितना दुख... ।
भोगी एक तख्त खरीद लाता है। फिर कहता है, तख्त बहुत गड़बड़ है; गड़ता है, रात सोते नहीं बनता। अच्छी गद्दी खरीद लाता है। फिर एक और गद्दी, फिर एक और गद्दी--गद्दी पर गद्दी बढ़ाता जाता है। यह भोगी की दिशा है।
त्यागी एक गद्दी कम कर देता है। सोचता है, एक गद्दी कम करने से मोक्ष मिलेगा! फिर दूसरी गद्दी कम कर देता है, फिर तीसरी गद्दी कम कर देता है। फिर सोचता है, तख्त अकेला ठीक है, इससे जरूर मोक्ष मिलेगा! फिर तख्त भी अलग कर देता है। फिर सोचता है, फर्श पर सो जाना सबसे ठीक है, इससे तो मोक्ष बिल्कुल निश्चित है!
दोनों पागल हैं। न तो गद्दी इकट्ठी करने से मोक्ष मिलता है, न गद्दी छोड़ने से मोक्ष मिलता है। गद्दी से मोक्ष का क्या संबंध? इररिलेवेंट है, कोई संबंध ही नहीं है। और अगर भगवान के पास पहुंचे और कहे, मैंने तीन गद्दियां छोड़ीं, इसलिए मोक्ष का दरवाजा खोलिए, तो वह भी कहेगा कि तुम पागल हो गए हो! तीन गद्दियां छोड़ने से सिनेमा का दरवाजा भी नहीं खुलता है, मोक्ष का दरवाजा खुलवा लेना बहुत मुश्किल है। इतना आसान नहीं है, इतना सस्ता

नहीं है कि आपने तीन गद्दियां छोड़ दीं, आपने घी लगाना रोटी पर छोड़ दिया, आप सिर घुटाने लगे, आप नंगे खड़े हो गए। आप जो भी कर रहे हैं, इस करने का सारा आब्जेक्ट बाहर है, सारी दृष्टि बाहर है। भीतर वह पहुंचता है, जो बाहर छोड़ने और पकड़ने दोनों से मुक्त हो जाता है।
इसलिए महावीर को त्यागी मत कहें। महावीर रागी नहीं हैं, महावीर त्यागी नहीं हैं, महावीर वीतराग हैं। वीतराग का मतलब दोनों से भिन्न है--न त्याग, न राग। न राग, न विराग; न तो बाहर की पकड़, न छोड़ने का आग्रह। एक तीसरा कोणः वीतराग। न मैं बाहर पकड़ता हूं, न मैं बाहर छोड़ता हूं, क्योंकि मैं हूं भीतर। और जो भीतर है, मैं उसे जानने चलता हूं, बाहर की तरफ से आंख हटाता हूं। इसलिए महावीर हैं वीतराग। मत कहें विरागी, मत कहें त्यागी। वीतरागता में ज्ञान फलित होता है।
भीतर जो जाता है, वह ज्ञान के दर्शन को उपलब्ध होता है।
यह तो उनके अंतस-जीवन की कथा है। महावीर का असली जीवन, उनकी आत्मा के जीवन का पहला सूत्र कि महावीर ज्ञान के खोजी हैं, त्याग के नहीं।
दूसरा सूत्र।
हमें यही दिखाई पड़ता है, जैसा मैंने कहा, भोगी सुख खोजता है, त्यागी दुख खोजता है। और त्यागियों ने ऐसे-ऐसे दुख खोजे कि अगर हिसाब लगाएंगे आप, तो आप पाएंगे कि वे भोगियों से ज्यादा इन्वेंटिव, ज्यादा आविष्कारक हैं। भोगियों ने इतने आविष्कार नहीं किए। त्यागियों ने ऐसे-ऐसे आविष्कार किए हैं कि अगर उनकी सारी कथा बताई जाए तो प्राण रोमांचित हो जाएं कि यह क्या किया! आंखें फोड़ने वाले त्यागी हुए हैं, क्योंकि वे कहते हैं, आंखों से वासना का जन्म हो जाता है! पागल हो गए हैं, जैसे अंधे को वासना का जन्म न होता हो! आंख से क्या मतलब है? लेकिन वे कहते हैं, आंख से दिखाई पड़ते हैं रूप और चित्त आकर्षित होता है। जैसे कि सपनों में रूप नहीं देखे जा सकते। आंख बंद करके रूप नहीं देखे जा सकते। आंखें फोड़ लीं; हाथ-पैर काट डाले हैं; जननेंद्रियां काट डाली हैं; पैरों में खीले ठोंक लिए हैं; कमर में खीले ठोंक लिए हैं; रेत पर, जलती रेत पर पड़े रहे हैं; कांटे बिछा कर लेटे रहे हैं; शरीर को कोड़े मारते रहे हैं!
कोड़े मारने वालों का एक संप्रदाय ही था पूरे यूरोप में। वह कोड़े मारने वालों का ही संप्रदाय कहलाता। उसका साधु यही करता था कि सुबह से उठ कर कोड़े मारना शुरू करता था नंगी देह पर, लहूलुहान हो जाता। जो साधु जितने ज्यादा कोड़े मार लेता, वह साधु गुरु हो जाता, बाकी साधु चेले हो जाते। जैसे कि जो साधु ज्यादा उपवास कर ले, वह आचार्य हो जाता है, बाकी चेले हो जाते हैं! अखबार में खबर छापते हैं कि फलां साधु ने इतने उपवास किए, इतने उपवास किए, इतने उपवास किए, वैसे ही उनके अखबारों में खबर छपती थी कि फलाने साधु ने अब तक क्लाइमेक्स पा ली है, अब तक आखिरी कोटि पा ली है, इतने कोड़े मार लेता है। सुबह से लहूलुहान कर लेते शरीर। लोग दर्शन करने आते और कहते कि महा-तपस्वी हैं। इन्वेंटिव थे बहुत! खूब खोजी हैं तरकीबें दुख पाने की! लेकिन महावीर दुखवादी नहीं हैं। महावीर दुख की खोज में नहीं हैं। और
इस सीक्रेट को, इस रहस्य को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि हमें ऐसा दिखाई पड़ता है कि महावीर दुख खोज रहे हैं। क्योंकि हम सुख के खोजी हैं, जो मैंने आपसे पहले कहा। सुख के खोजी को दिखाई पड़ता है, हम तो गद्दी ला रहे हैं घर की तरफ और एक आदमी गद्दी छोड़ कर बाहर जा रहा है! हमको लगता है, यह बेचारा बड़ा दुख खोज रहा है। लेकिन यह भी हो सकता है कि एक स्वस्थ शरीर को गद्दी सुख न दे। गद्दी के लिए बीमार शरीर चाहिए सुख पाने के लिए गद्दी में। स्वस्थ शरीर के लिए गद्दी जैसी चीज सुख देने का कोई कारण नहीं रह जाती। स्वस्थ शरीर के लिए सुख मिलता है गहरी निद्रा से, गहरे वस्त्रों से नहीं। गहरे वस्त्रों का सुख वह खोजता है, जिसने गहरी निद्रा खो दी है। जब गहरी निद्रा नहीं रह जाती, तो सब्स्टीट्यूट खोजना पड़ता है। तो गहरे वस्त्र खोजते हैं हम, बड़ी गद्दी करते चले जाते हैं।
स्वस्थ आदमी को भूख से आनंद मिलता है, बीमार आदमी को भोजन से। इन दोनों में फर्क समझ लेना। स्वस्थ आदमी को भूख लगती है, आनंद मिलता है भूख के कारण। जो भी खाता है, रसपूर्ण हो जाता है, स्वादपूर्ण हो जाता है। बीमार आदमी को भूख तो होती नहीं, स्वाद तो भोजन में आ नहीं सकता, तो फिर नमक-85

मिर्च-मसाले खोजता है। और उनके द्वारा स्वाद पैदा करने की कोशिश करता है। तो जब कोई स्वस्थ आदमी रूखी रोटी खाकर आनंदित दिखता है, तो वह नमक-मिर्च वाला आदमी बेचारा सोचता है, कितना दुख झेल रहा है। उसे पता नहीं कि मूर्ख! दुख तू झेल रहा है। वह आदमी सुख, पूरा सुख उठा रहा है। हमारी सारी दृष्टि... ।
महावीर त्याग रहे हैं ज्ञान के कारण। और महावीर जो जीवन जी रहे हैं, उसमें उन्हें कोई दुख नहीं है। महावीर इतने नासमझ नहीं हैं कि दुख का जीवन जीएं; वे परम आनंद का जीवन जी रहे हैं। उन्हें नग्न खड़े होने में आनंद आ रहा होगा।
और आप जानते हैं कि अगर बच्चों की आदतें न बिगाड़ी जाएं तो बच्चे बामुश्किल कपड़े पहनने को राजी होते हैं। कपड़े पहनना फोर्स्ड हैबिट है, आदमी के ऊपर जबरदस्ती थोपी गई आदत है। नग्न होने का अपना आनंद है और मजा है। छोटे बच्चे इनकार करते हैं कि कपड़े मत पहनाओ, भागते हैं, लेकिन मां-बाप बड़े प्रेमवश उनको कपड़े पहनाते हैं कि जल्दी पहनो कपड़े! दुनिया अगर अच्छी आएगी तो नग्नता सहज स्वीकृत हो जाएगी। लोगों को जरूरत होगी तो कभी कपड़े पहन लेंगे। कोई बहुत सर्दी है, तो कपड़े डाल लेगा। वर्षा पड़ रही है, तो कपड़े पहन लेगा। ऐसे नग्न रहेगा। नग्न रहने के लिए आदमी पैदा हुआ है। नग्नता के लिए उसका शरीर बना है।
महावीर किसी आनंद के अनुभव में नग्न हो गए हैं। भक्तगण कह रहे हैं कि महान त्याग किया, बड़ा दुख झेल रहे हैं!
पागल हैं हम। महावीर नग्न होकर दुख नहीं झेल रहे हैं। कोई ज्ञानी कभी दुख झेलता नहीं, दुख झेलना अज्ञान का लक्षण है। ज्ञानी निरंतर आनंद से आनंद में प्रतिष्ठित होता चला जाता है। महावीर की चर्या आनंद की चर्या है, दुख की नहीं।
लेकिन हजारों साल से यह गुणगाथा कही जा रही है कि महावीर दुख झेल रहे हैं! दुख झेल रहे हैं! दुख झेल रहे हैं! क्यों? क्योंकि हम सुख के खोजी हैं, इसलिए हमको दुख दिखाई पड़ता है। हमें पता ही नहीं कि महावीर किस आनंद में प्रतिष्ठित हो रहे हैं! वे कहां जा रहे हैं! उन्हें क्या मिल गया है! महावीर की सारी चर्या सहज है। उसमें कोई त्याग-व्याग नहीं है, उसमें कोई दुख नहीं है, उसमें आनंद ही आनंद है। यह तो उनका अंतस-सूत्र है। बाहर से जो दुख दिखाई पड़ता है, वह भीतर उनका आनंद है।
एक पहाड़ पर एक संन्यासी चला जा रहा है। घनी धूप है। तेज सूरज आग बरसाता है। पसीने से लथपथ है संन्यासी। कंधे पर बोझा रखे हुए है--अपनी किताबें, अपने कपड़े-लत्ते, अपना बिस्तर। माथे से पसीना पोंछता है। दूर है मार्ग अभी, थक गया है बहुत। और तभी रास्ते पर एक पहाड़ी लड़की भी चढ़ रही है। चौदह-पंद्रह साल की लड़की है। अपने कंधे पर एक मोटे-ताजे बच्चे को लिए है। पसीने से लथपथ है, हांफ रही है। संन्यासी को दया आ गई।
हालांकि संन्यासियों को दया जरा मुश्किल से आती है। क्योंकि जो अपने प्रति ही दयापूर्ण नहीं हैं, वे किसके प्रति दयापूर्ण हो सकेंगे? जो खुद को ही दुख देने की कोशिश में लगे हैं, वे किसके दुख से प्रभावित होंगे? लेकिन कुछ जरा गड़बड़ संन्यासी रहा होगा। कभी-कभी गड़बड़ संन्यासी पैदा हो जाते हैं--जैसे महावीर। ये बोनाफाइड संन्यासी नहीं हैं। ये ठीक रजिस्टर्ड संन्यासी नहीं हैं महावीर। ये असली संन्यासी, जिसको हम जानते हैं संन्यासी, वैसे नहीं हैं। ये कुछ गड़बड़ हैं, स्ट्रेंजर हैं, अजनबी हैं इस संन्यास की दुनिया में। वैसा ही कोई अजनबी संन्यासी वह भी रहा होगा। उसको दया आ गई। उसने उस लड़की के कंधे पर हाथ रखा और कहा, बेटा! बहुत बोझ मालूम पड़ रहा होगा तुझे? उस लड़की ने नीचे से ऊपर तक संन्यासी को गौर से देखा आश्चर्य से और कहा, क्या कहते हैं आप? स्वामी जी! बोझ आप लिए हुए हैं, यह तो मेरा छोटा भाई है।
उस लड़की ने कहा, बोझ आप लिए हुए हैं, यह तो मेरा छोटा भाई है। आप कहते क्या हैं! संन्यासी सोच रहा था, मैं कष्ट उठा रहा हूं बोझ ढोकर, वह लड़की भी कष्ट उठा रही होगी। उसे पता नहीं कि वह अपने छोटे भाई को लिए हुए है। जहां प्रेम है, वहां कष्ट कहां! वहां आनंद है। छोटे भाई को ढो रही है, यह उसका आनंद है, यह ढोना नहीं है। यह प्रेम का कृत्य है, यह एक्ट ऑफ लव है।

महावीर जो कुछ कर रहे हैं, उसमें दुख नहीं है, वे सब आनंद के कृत्य हैं। यह सारा जीवन अपना है। यह सब अपना है। इस सारे जीवन पर, इस सारे जीवन की पीड़ा, इस सारे जीवन के दुख को दूर करने के लिए वे आतुर हैं। उनके प्राणों की प्यास है, एक करुणा है। वे कोई दुख नहीं झेल रहे हैं। यह उनका आनंद है। यह उनकी खुशी है। यह उनके जीवन का गीत है। यह उनका संगीत है। लेकिन नहीं, हम ऐसा नहीं समझ पाते! यह हमें दिखाई नहीं पड़ता! हम तो अपनी कैटेगरीज में, हमारे अपने तौलने के ढांचे, अपने तराजू हैं, उन्हीं तराजू को लेकर पहुंच जाते हैं महावीर को तौलने! यह सोचते नहीं कि यह दुकान पर तौलने का तराजू महावीर को तौलने के काम नहीं आ सकता। और इसी तरह तौल-तौल कर हमने जीवन लिख लिया है। वह जीवन सब झूठा और फाल्स है। उसका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य है महावीर की अंतस-घटना का, आनंद का, दुख का नहीं। आनंद घटित हुआ है महावीर के जीवन में।
लेकिन आप जरा देखें। आप जरा सोचें। हमने अपने सब महापुरुषों की तस्वीरें, आंखें, चेहरे ऐसे बनाए हैं कि उनमें कहीं आनंद का भाव नहीं मालूम पड़ता! आपने कभी ख्याल किया? क्रिश्चियन कहते हैं, जीसस क्राइस्ट नेवर लाफ्ड! ईसाई कहते हैं, जीसस क्राइस्ट कभी हंसे ही नहीं! सोच सकते हैं कभी? अगर जीसस क्राइस्ट नहीं हंसे तो दुनिया में कौन हंसा होगा! कौन बचा होगा दुनिया में, अगर जीसस क्राइस्ट नहीं हंसे! लेकिन क्यों, क्रिश्चियंस ऐसा क्यों कहते हैं? क्या बात है? वे सोचते हैं कि जो हंसता है, वह महापुरुष नहीं रह जाता, सामान्य आदमी हो जाता है। सामान्य आदमी हंसते हैं। वे यह नहीं सोच पाते कि सामान्य आदमी की हंसी और, महापुरुष की हंसी और। और सच में सामान्य आदमी झूठा हंसता है। उसकी हंसी झूठी है। भीतर रोता रहता है, बाहर हंसता है।
आप कभी सच में हंसे हैं? अगर जिंदगी में एक बार आपने सच में हंस लिया हो, आपको धर्म का रहस्य पता चल जाएगा। बड़ी अजीब बात कह रहा हूं आपसे। अगर आपने जिंदगी में एक बार सच में हंस लिया हो, तो आपको सामायिक का अनुभव हो जाएगा, ध्यान का अनुभव हो जाएगा। लेकिन हम कभी हंसे ही नहीं--भीतर रोते हैं, बाहर हंसते हैं! क्यों हंसते हैं बाहर? ताकि भीतर के रोने को छिपाए रखें, किसी को पता न चल जाए।
जितना दुखी आदमी होता है, उतना ही हंसता मालूम होता है।
दुख को छिपाने की तरकीब है। आमोद-प्रमोद में कौन जाता है? मनोरंजन करने कौन जाता है गांव के बाहर? सिनेमा में, मनोरंजनगृह में कौन प्रवेश करता है? जो दुखी है। दुनिया जितनी दुखी होती जाती है, उतने ही मनोरंजन के साधन ईजाद करने पड़ रहे हैं; क्योंकि दुखी आदमी को भुलाने की जरूरत है कि कहीं भूले। एक आदमी दुखी होता है। लोग कहते हैं, चलो ताश खेलें भाई; चलो गपशप करें, रेडियो सुनें, कुछ गपशप करें, कुछ हंसें। कुछ बातचीत करते हैं, ताकि वह हंसी में भूल जाए दुख को।
हमारी हंसी एस्केप है, भुलाती है।
लेकिन इस डर से कि कहीं हमारी हंसी के कारण महापुरुष छोटा न हो जाए, तो महापुरुष में हंसी ही पोंछ देते हैं, मिटा देते हैं, समाप्त कर देते हैं। महापुरुष हंसता ही नहीं! उसकी मूर्ति बना देते हैं गुरु-गंभीर। वह बच्चे जैसा सहज नहीं मालूम पड़ता; वह बनावटी, बैठा हुआ ढोंगी मालूम पड़ने लगता है। महावीर रहे होंगे बच्चे जैसे सहज, क्योंकि इतने जीवन के सत्य को जानने वाला बच्चे जैसा सरल हो जाता है। लेकिन क्या हमारी बनाई हुई तस्वीर से वे बच्चों जैसे सरल मालूम होते हैं? नहीं; हमारी तस्वीर में तो वे बड़े जटिल, बड़े सधे हुए मालूम होते हैं। हमारी मूर्ति में तो--वह हमारी बनाई हुई मूर्ति है--बिल्कुल सधे हुए मालूम पड़ते हैं, बिल्कुल तैयार मालूम पड़ते हैं। सरलता नहीं दिखाई पड़ती, वह बच्चे जैसा भाव नहीं दिखाई पड़ता, वे बच्चे जैसे हंसते हुए नहीं मालूम पड़ते। हंसे होंगे जरूर, क्योंकि अगर महावीर बच्चों जैसे नहीं हंस सकते तो कौन हंसेगा? अगर उतनी इनोसेंस, अगर उतना निर्दोष उस आदमी में नहीं आ सकता, और मैं मानता हूं कि जरूर आया होगा, क्योंकि महावीर नग्न हो गए बच्चों जैसे, खड़े हो गए सरल, सहज, स्पांटेनिअस। हंसे होंगे, खूब हंसे होंगे। लेकिन हमारा भय--हमारा भय... ।

मैं एक जगह एक घर में ठहरा हुआ था। घर के लोग मुझसे अपरिचित थे। सांझ
हम बैठे थे। घर के दो-चार बच्चे थे, पत्नी थी, पति थे, गपशप होती थी, मैं खूब हंस रहा था। तभी घर के वृद्धजन ने बाहर से आकर कहा, हंसिए मत, दो-चार लोग आ रहे हैं।
तो मैंने कहा, क्या बात है? उन्होंने कहा, वे क्या कहेंगे कि आप और हंसते हैं? वे आपको एक महान संन्यासी समझ कर दर्शन करने आ रहे हैं।
तो मैंने कहा, हद हो गई। जब तुम जिंदा आदमी से कह सकते हो कि मत हंसो,
तो तुमने मर गए तीर्थंकरों और महावीरों के साथ क्या किया होगा, कहना बहुत मुश्किल है। क्योंकि अब तो वे बेचारे इनकार भी नहीं कर सकते कि नहीं, हम हंसेंगे।
हमने ढाल ली है तस्वीर। सरलता को हमने जटिल ढांचे में खड़ा कर दिया है। महावीर का तीसरा सूत्र और अंतिम बात आपसे कहूं। पहली बात मैंने कही, त्याग नहीं, ज्ञान; दुख नहीं, आनंद। और तीसरी बात आपसे कहना चाहता हूंः सधा हुआ साधना का व्यक्तित्व नहीं; सहज, सरल, जल की भांति तरल। सधा हुआ, कल्टीवेटेड, एक और तरह का आदमी होता है, जो कल्टीवेट करता है; जो एक-एक चीज को साध लेता है--बोलने को, उठने को, बैठने को, खाने को, कपड़े को--सब चीज को साध कर बैठ जाता है। उसको हम साधक कहते हैं! महावीर साधक नहीं हैं; महावीर सरल हैं।
सरल साधक कैसे हो सकता है? साधक का मतलब है फोर्स्ड, जिसने एक-एक चीज
को नियंत्रण में लेकर खड़ा हुआ है--सांस रोक कर खड़ा हुआ है; आंख थाम कर खड़ा हुआ है; जिसने हर चीज को नियंत्रण में रखा हुआ है--कंट्रोल्ड। ऐसा आदमी झूठा आदमी होता है, अभिनेता होता है। महावीर तो अत्यंत सरल हैं। उनके जीवन में जो भी है, वह सीधा है और सरलता से निकल रहा है। लेकिन जब दूसरे लोग अनुकरण करने लगते हैं किसी सीधे और सरल आदमी का, तब मुश्किल शुरू होती है। समझ लीजिए कि मैं सरलता से हंस रहा हूं, अब मेरा कोई अनुयायी पैदा हो जाए; हालांकि ऐसा पाप मैंने अब तक किया नहीं कि किसी को कहूं कि तुम मेरे अनुयायी हो, या मेरे शिष्य हो। हालांकि कई पागल मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हमें अपना शिष्य बनाइए, हम तो पीछा छोड़ेंगे ही नहीं। हमको शिष्य बनाइए! ऐसे ही पागलों ने शायद महावीर और बुद्ध और सबका पीछा करके उनको पकड़ लिया होगा कि हम तो शिष्य बनेंगे।
अगर कोई अनुयायी देख ले कि मैं हंस रहा हूं और हंसना चाहिए, तो वह भी हंसेगा, लेकिन उसका हंसना पोज्ड होगा, साधक का हंसना होगा। वह भी मुस्कुराएगा; लेकिन वह मुस्कुराहट झूठी होगी, ऊपर से थोपी हुई होगी। महावीर अत्यंत स्पांटेनिअस, सहज-स्फूर्त व्यक्तित्व हैं; जी रहे हैं, जैसा उन्हें आनंदपूर्ण मालूम हो रहा है। और हम उनके पीछे पकड़-पकड़ कर नियम खोज रहे हैं कि वे कैसे जी रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या कर रहे हैं! महमूद गजनी में था--सम्राट गजनी का। एक दिन सुबह निकल रहा है गजनी के रास्ते से, एक मजदूर एक बहुत बड़ी पत्थर की चट्टान को लेकर ढो रहा है। महमूद ने देखा कि यह चट्टान ले जा रहा है। उसका पसीना-पसीना चू रहा है। उसकी आंखों में आंसू हैं। बूढ़ा आदमी है, जर-जर देह उसकी कंपती है। न मालूम किस दीनता में, किस दुख में, चट्टान ढोनी पड़ रही है उसे किस मजबूरी में। महमूद अपने घोड़े पर है। उसने चिल्ला कर कहा कि ऐ मजदूर! पत्थर को नीचे गिरा। गिरा दे इसी वक्त!
अब सम्राट ने आज्ञा दी, मजदूर ने पत्थर नीचे बीच सड़क पर गिरा दिया राजपथ पर। महमूद तो अपने घोड़े पर बैठ कर अपने घर चला गया। अब उस पत्थर को कौन हटाए, क्योंकि बादशाह ने पत्थर गिरवाया! तो बादशाह के वजीर, अनुयायी, बादशाह के अधिकारी कहने लगे जरूर कोई मतलब होगा। जब पत्थर गिराया तो मतलब होना चाहिए, क्योंकि महमूद कोई नासमझ तो नहीं है। जरूर कोई राज है इसमें। पत्थर हटाना मत। पत्थर जहां गिराया गया था, वहीं पड़ा रहा।
अब महमूद पत्थर गिरवा कर भूल-भाल गया। वह तो कोई और बात थी, इतनी बात
थी कि मजदूर इतना थका-मांदा मालूम पड़ता था, तो उसने कहा, गिरा दो! वह तो अपने घर चला गया, बात खतम हो गई। अब वह पत्थर वहीं पड़ा रहा। एक साल बीत गया। रास्ते पर टै्रफिक में दिक्कत होती है, निकलने में मुसीबत होती है, लेकिन पत्थर को हटाए कौन? महमूद ने गिराया है! महमूद से कहे कौन? उसकी विजडम पर,

उसकी बुद्धिमत्ता पर शक कौन करे? कोई महमूद से कुछ कहता नहीं, महमूद को कुछ पता नहीं। महमूद बीस साल जिंदा रहा और वह पत्थर वहीं पड़ा रहा।
महमूद मर गया। उसका लड़का गद्दी पर बैठा। वजीरों ने कहा, पत्थर के बाबत क्या किया जाए? राजधानी में बड़ी तकलीफ है।
उसने कहा कि जिसको पिता ने किया था, मैं उसे कैसे इनकार कर सकता हूं? कोई राज होगा, कोई सीक्रेट होगा, कोई बात होगी। इतने बुद्धिमान आदमी थे! नहीं, उनके प्रति सम्मान के कारण पत्थर नहीं हटाया जा सकता। पत्थर वहीं रहेगा।
लड़का भी मर गया। तीसरी पीढ़ी आ गई, लेकिन पत्थर वहीं है। आगे का मुझे पता नहीं है। जहां तक सौ में निन्यानबे मौके हैं, पत्थर अभी भी वहीं होगा, क्योंकि वह महमूद ने गिरवाया था।
जीवन के सहज कृत्य, जिनका उस क्षण में कोई मूल्य होता है, पीछे चलने वाले पागल की तरह पकड़ लेते हैं और फिर उन्हीं के साथ बंधे रह जाते हैं, उन्हीं के साथ बंधे रह जाते हैं और उन्हीं को साधना बना लेते हैं।
किसी महापुरुष के जीवन को समझिए जरूर, अनुयायी कभी मत बनिए। समझिए; उसके जीवन में प्रवेश करिए; उसके जीवन के दबे हुए पर्दे उघाड़िए, खोलिए राज; पहचानिए उसकी आत्मा को; उतरिए शब्दों के भीतर, हटाइए सिद्धांतों को; जाइए उसके व्यक्तित्व में, उसके मनस में, उसकी साइकोलाजी में। अनुयायी मत बनिए, सिर्फ प्रवेश करिए।
और आप हैरान होंगे, किसी भी महापुरुष की आत्मा से एनकाउंटर, साक्षात्कार आपकी आत्मा को बदलने के लिए, आपकी अपनी आत्मा में क्रांति लाने के लिए एक अनूठी प्रेरणा बन कर उपस्थित हो जाता है।
अनुयायी बनने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी के पीछे जाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि हर आदमी को अपने भीतर जाना है, किसी के पीछे नहीं जाना है। लेकिन अपने भीतर जाने के लिए जो लोग अपने भीतर गए हों, उनके जीवन के रास्ते को ठीक से जानना और पहचानना। और केवल वही पहचान सकता है, जिसे अनुयायी बनने की जल्दी न हो; क्योंकि अनुयायी बनने की जल्दी में विचार करना संभव नहीं होता।
पक्षपात, संप्रदाय के भाव से, सामर्थ्य, समझ की, साक्षी बनने की, नहीं होती। फिर तो जल्दी पकड़ कर अनुगमन करने का भाव होता है कि जैसा वे करते हैं, वैसा हम करें। उनके सहज कृत्य हमारे लिए साधना बन जाते हैं। सीधी सी बात समझ लें, महावीर हैं निर्दोष, सीधे, बच्चे जैसे सरल-तरल, ऐसा व्यक्तित्व है उनका। साधक, महायोगी, योगी, महान तपस्वी, बारह वर्ष तक तपश्चर्या कर रहे हैं, भारी पराक्रम कर रहे हैं। इन सारी बातों में हमने उनके व्यक्तित्व की जो सहजता, उसको जीर्ण-शीर्ण कर दिया, और एक ऐसा व्यक्तित्व खड़ा कर लिया जो हमारा देखा हुआ ढांचा तो है लेकिन महावीर की आत्मा नहीं।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातें हो भी सकती हैं सब गलत हों। क्योंकि महावीर से मेरा मिलना नहीं हुआ, कोई बातचीत नहीं हुई। हो सकता है यह मेरे देखने का ढंग हो, यह मेरी अपनी दृष्टि हो। लेकिन मैं मजबूर हूं। महावीर को मैं वैसा ही तो देख सकता हूं, जैसा मैं देख सकता हूं। तो जो मैंने कहा, कोई जरूरी नहीं है कि उसमें सोचने-विचारने जाएं कि शास्त्र में लिखा है कि नहीं लिखा है। यह मेरी अपनी सोचने की दृष्टि हो सकती है। आप से मेरा यह भी आग्रह नहीं है कि मेरी बात को सच मान लें। कोई आग्रह नहीं। मैंने ये बातें कहीं। आपने सुनीं। इतना काफी है।
इनको थोड़ा सोच और लें तो काफी से थोड़ा ज्यादा हो जाएगा। उतनी कृपा बहुत है कि इन पर थोड़ा सोचें, विचार करें। महापुरुष को हम अपने बंधे हुए ढांचों में नहीं बांधें, मुक्त करें। और उस मुक्त चेतना के साथ खुले आकाश में उड़ें।
तो शायद हमारी आत्मा को भी पंख मिल सकते हैं। और हम भी वहां पहुंच सकते हैं जहां कोई भी कभी पहुंचा है।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

महावीर या महाविनाश
आठवां प्रवचन

जीवन-चर्या के तीन सूत्र

एक घटना से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा। एक संन्यासी किसी अजनबी देश से गुजरता था। वह देश अग्निपूजकों का देश था। संन्यासी जब देश के भीतर प्रविष्ट हुआ तो पहले ही उसे जो गांव मिले--वह देख कर दंग रह गया--उन गांवों में रात अंधेरा था। उन गांवों में घरों में चूल्हे नहीं जलते थे। उन गांवों के लोग आग जलाना भी नहीं जानते थे। वह तो चकित रह गया। उसने सुना था, वह अग्निपूजकों का देश है। वहां अग्नि को लोग पूजते जरूर थे, लेकिन अग्नि को जलाना नहीं जानते थे।
उसने लोगों से बात की। उन लोगों ने कहा, अग्नि अब नहीं जलती, वह सतयुग
की बात है, पहले जलती थी। वे दिन बीत गए। यह कलियुग है, अब अग्नि जलने का कोई उपाय नहीं है। और फिर अग्नि सभी तो नहीं जला सकते! कोई महापुरुष, कोई तीर्थंकर, कोई ईश्वरपुत्र, कोई अवतार अग्नि को जलाने में समर्थ होता है। हम साधारणजन अग्नि को कैसे जला सकते हैं! हम तो सिर्फ अग्नि की पूजा करते हैं।
वह संन्यासी बहुत हैरान हुआ, अग्नि तो कोई भी जला सकता है। और जब उसने
यह कहा कि अग्नि तो कोई भी जला सकता है, तो वे गांव के लोग बहुत नाराज हो गए। उन्होंने कहा, तुम हमारे महापुरुषों का अपमान करते हो! यह सिर्फ अलौकिक महापुरुषों के लिए संभव है कि वे आग जला सकें। हम सिर्फ अग्नि की पूजा कर सकते हैं। और अग्नि की पूजा करने को भी वे अग्नि नहीं जला सकते थे। उनके पास अग्नि के संबंध में लिखे हुए शास्त्र थे। मंदिर में रख कर उनकी ही वे पूजा करते थे।
फिर वह संन्यासी और उस देश के भीतर प्रविष्ट हुआ। दूसरे गांव आए। वहां भी अंधकार था, वहां भी अग्नि जलाना कोई भी नहीं जानता था। लेकिन उनके पास अग्नि के चित्र थे। उन चित्रों की वे पूजा करते थे। वह संन्यासी और भीतर प्रविष्ट हुआ, वह उन गांवों में पहुंचा जो देश के और भीतरी हिस्सों में थे, वहां भी अग्नि को जलाना कोई नहीं जानता था। लेकिन उनके पास अग्नि को जलाने के उपकरण थे, उनके पास पत्थर थे, जिनके घर्षण से अग्नि पैदा हो जाए। लेकिन वे कभी उन पत्थरों का घर्षण नहीं करते थे। शायद भूल गए थे। शायद उन्हें पता भी नहीं था। लेकिन उनके मंदिर में वे पत्थर रखे थे और वे उनकी पूजा कर लेते थे। फिर वह संन्यासी और भीतर प्रविष्ट हुआ और देश के केंद्र पर राजधानी में पहुंचा। वहां जरूर एक आदमी अग्नि को जलाना जानता था।
वह उस देश का महापुरोहित था, धर्मगुरु था। और उसकी, उस आदमी की लोग पूजा करते थे, क्योंकि वह चमत्कार था कि वह आदमी अग्नि जला लेता था। वर्ष में एक बार वह अग्नि जलाता था। सारे देश के करोड़ों लोग इकट्ठे होते थे और पूजा करते थे। जब वह संन्यासी राजधानी में पहुंचा तो वैसा ही अग्नि का दिवस मनाया जा रहा था। करोड़ों लोग इकट्ठे थे। और उस पुजारी की पूजा चलती थी, क्योंकि वह अग्नि जला सकता था। यह महाशक्ति का कार्य था। यह परमात्मा का विशेष आदमी था जिसको यह अधिकार मिला था। कोई और अग्नि जलाना नहीं जानता था। उसने भीड़ में चिल्ला कर उस संन्यासी ने कहा, यह क्या पागलपन कर रहे हो! अग्नि कोई भी जला सकता है। मैं तुम्हें अग्नि का जलाना बता सकता हूं। यह क्या विक्षिप्तता फैली हुई है!
पुजारियों ने उस संन्यासी को पकड़ लिया और लोगों ने कहा, यह हमारे धर्म
का शत्रु है। यह हमारे धर्म का दुश्मन है। यह हमारे धर्म का अनादर करता है। यह अश्रद्धा फैलाता है। और उन्होंने उस संन्यासी को सूली पर लटका दिया। और वे प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्होंने एक अधार्मिक नास्तिक की हत्या कर दी थी और उसे पृथ्वी से मुक्त कर दिया था।
इस कहानी से मैं क्यों शुरू करना चाहता हूं? मनुष्य की इस पृथ्वी पर धर्म की वही गति हो गई है जो अग्नि की उस देश में हो गई थी। सब तरफ धार्मिक लोग हैं जैसे उस देश में अग्नि-पूजक थे। मंदिर हैं, मस्जिद हैं, शिवालय

हैं, शास्त्र हैं, मूर्तियां हैं, चित्र हैं, पूजा है, प्रार्थना है, अर्चना है। लेकिन जैसे उस देश में अग्नि नहीं थी और लोग अंधकार में जीते थे, ऐसे ही पृथ्वी पर धर्म नहीं है और लोग अंधकार में जीते हैं। हां, कभी- कभी हम पूजा कर लेते हैं। और कभी-कभी स्मरण कर लेते हैं उन लोगों का जिनके जीवन में धर्म की ज्योति जली थी।
जैसे आज ही हम यहां इकट्ठे हो गए हैं एक ऐसे ही व्यक्ति के स्मरण के लिए, महावीर के स्मरण के लिए। कभी हम कृष्ण के स्मरण के लिए इकट्ठे होते हैं, कभी राम के, कभी क्राइस्ट के, कभी मोहम्मद के। और हम उन लोगों की गुण-गाथाएं कर लेते हैं जो अग्नि जलाना जानते थे--जीवन की अग्नि, प्रेम की अग्नि, परमात्मा की अग्नि। उनकी पूजा करते हैं। उनका स्मरण करते हैं। लेकिन हम यह भूल ही गए हैं कि यह अग्नि तो हर कोई जला सकता है। यह तो प्रत्येक आदमी का अधिकार है कि वह प्रभु की ज्योति को उपलब्ध हो जाए। लेकिन अगर कोई हमसे यह कहेगा तो हम कहेंगे, हमारे महापुरुषों का अपमान मत करो, हमारे धर्म का विरोध मत करो, हम धर्म के पूजक हैं। ऐसी अश्रद्धा की बातें मत फैलाओ। जो उस संन्यासी के साथ हुआ था, वह हमेशा संन्यासी के साथ होता रहा है। इसीलिए तो हम जीसस को सूली पर लटका देते हैं। क्योंकि वह उन लोगों का विरोध करता है, जो केवल पूजा कर रहे हैं। पूजा करने वाले लोग धर्म के शत्रु हैं। जीना! धर्म को जीना पड़ता है, पूजा नहीं करनी पड़ती। लेकिन जीसस अगर लोगों से कहता है कि तुम पूजा करने वाले लोग पागल हो, धर्म को जीओ। अग्नि को जलाओ और घर के अंधेरे को मिटाओ। न कि अग्नि के चित्रों की और शास्त्रों की पूजा करो। अग्नि तो उपयोग करने के लिए है। धर्म भी उपयोग करने के लिए है। तो फिर पुजारियों ने जीसस को सूली पर लटका दिया।
और सुकरात ने--यूनान में लोगों से कहा सुकरात ने यही कि धर्म तो जीने
के लिए है। सत्य तो जीने के लिए है। उसे जीओ! तो एथेंस की अदालत ने उसे जहर पीने की आज्ञा दे दी। कि यह लोगों को बिगाड़ रहा है। लोगों की श्रद्धा को खंडित कर रहा है। और मंसूर ने जब कहा, तो यही मंसूर के साथ हुआ। और अभी हम गांधी की हत्या करके निपटे भी नहीं हैं, अभी उसकी छाया हम पर मौजूद है। बड़े आश्चर्य की बात है कि जब महापुरुष जिंदा होते हैं, तो हम पत्थर मारते हैं, अपमान करते हैं, गोली चलाते हैं, जहर पिलाते हैं। और जब महापुरुष मर जाते हैं और हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तो हम उनकी पूजा करते हैं। शायद यह पूजा पश्चात्ताप के लिए है। शायद हमने उनके जीवित उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया है उसके लिए प्रायश्चित्त कर लेना चाहते हैं। फिर हजारों साल तक प्रायश्चित्त चलता है। गांधी की पूजा चलेगी, मूर्तियां बनेंगी। महावीर की पूजा चल रही है, मूर्तियां बन रही हैं, मंदिर बन रहे हैं, स्मरण किया जा रहा है। महावीर के साथ कोई बहुत अच्छा व्यवहार हमने किया हो, ऐसा स्मरण नहीं आता।
महावीर को पत्थर मारे गए। गांव से निकाल कर बाहर किया गया। जंगली कुत्ते महावीर पर छोड़े गए। महावीर के कानों में लोहे की कीलियां ठोक दी गईं। महावीर के साथ यह हमने व्यवहार किया, जब महावीर जिंदा हैं। और जब महावीर मर जाते हैं, तब हम उनकी मूर्ति बनाते हैं, उनके चरणों में सिर रखते हैं।
आदमी पागल मालूम होता है। पूजा प्रायश्चित्त है। शायद मर जाने पर ख्याल आता है, बीत जाने पर ख्याल आता है। अरे, यह क्या हुआ! और फिर और भी कुछ कारण हैं शायद। शायद जिंदा तीर्थंकर, जिंदा पैगंबर, जिंदा विचारक, जिंदा सुकरात, जिंदा महावीर, जिंदा बुद्ध हमारे झेलने के बाहर होते हैं, अनबियरेबल होते हैं। वे जिस सत्य को दिखाते हैं, उसे देख कर हमारे सारे असत्य प्राण कंप जाते हैं। लेकिन जब मर जाता है कोई महापुरुष, तो उसे हम अपनी मुट्ठी में बंद कर लेते हैं। फिर हम अपने मन के हिसाब से उसकी व्याख्या कर लेते हैं। फिर हम उसके कोनों को झाड़ देते हैं। फिर हम उसकी तीखी बातों को मिटा देते हैं। फिर हम उसकी जिंदगी में जो तीर थे, उनको समाप्त कर देते हैं। हम उसे चिकना, साफ-सुथरा, अपने काम का बना लेते हैं। फिर हम उसकी पूजा करते हैं।

इसलिए मुर्दा पैगंबरों की पूजा होती है, जिंदा पैगंबरों को पत्थर मारे जाते हैं। और जब तक पृथ्वी पर यह होता रहेगा तब तक पृथ्वी पर धर्म का कोई अवतरण संभव नहीं है। जिस दिन जीवित व्यक्तित्व का समादर उत्पन्न होगा, मृत व्यक्तित्व का नहीं, उस दिन शायद पृथ्वी पर धर्म उतर सकता है। मुर्दा, मृत, अतीत महापुरुष धर्म को कैसे ला सकते हैं!
लेकिन हम उनकी ही पूजा किए चले जाते हैं। और उनकी पूजा करने की हमारी तरकीब यह है कि हम पहले उनके तीखे कोनों को झड़ा देते हैं। जहां से हमें चोट लग सकती है, वे हम मिटा देते हैं। हम अपने मतलब की व्याख्या कर लेते हैं। और फिर जब व्याख्या हमारे मतलब की हो जाती है तब हम निश्चिंत हो जाते हैं। एक आदमी समुद्र में यात्रा करता था। तूफान आया, आंधी आई और उसकी नाव डगमगाने लगी। वह करोड़ों रुपए की संपत्ति लेकर लौट रहा था प्रदेशों से। हीरे-जवाहरात थे, मोती-माणिक थे, वह संपत्ति डूब जाएगी। वह घबरा गया। उसने हाथ जोड़े, प्रार्थना की और परमात्मा से कहा, हे प्रभु! अगर मेरा जीवन बच जाए और मेरी नाव बच जाए, तो मेरा जो महल है राजधानी में, मैं उसे बेच कर गरीबों को बांट दूंगा।
ऐसे तो वह धोखा दे रहा था और सस्ता सौदा कर रहा था। महल मुश्किल से पांच लाख रुपए का था और करोड़ों रुपए की संपत्ति थी उस नाव में। उसने सोचा कि भगवान को चकमा दे दे। और वह कोई बड़ा धोखा नहीं दे रहा था। आप चले जाते हैं कि हे भगवान, हम पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। मेरे लड़के की शादी करवा दो। मेरा मुकदमा जितवा दो। मेरी बीमारी दूर करवा दो। पांच आने तो अदालत का चपरासी भी रिश्वत लेने को तैयार नहीं होता। भगवान को बहुत सस्ते में... लेकिन फिर भी उसने तो, कोई इतना सस्ता नहीं था सौदा, पांच लाख का महल था उसका। पांच लाख और दस लाख के बीच में उसकी कीमत थी।
संयोग की बात, नाव बच गई। कोई भगवान पांच लाख के लोभ में आ गया हो, ऐसा
तो नहीं माना जा सकता। संयोग ही रहा होगा कि नाव बच गई, वह किनारे पर लग गया। किनारे पर लगते ही उसके प्राण संकट में पड़ गए। अब क्या करूं? पांच लाख का मकान गरीबों को बांट दूं?
नींद हराम हो गई। सोचने लगा, इससे तो नाव डूब जाती तो अच्छा था। न होते हम, न रहता बांस न बजती बांसुरी। न यह चिंता आती, न यह परेशानी आती। और रात नींद खराब हो गई। मकान! और कहीं नहीं दिया गरीबों को तो कहीं भगवान नाराज न हो जाए। क्योंकि जो भगवान प्रशंसित होता है प्रार्थना से, उस भगवान से डर भी होता है कि भूल से नाराज हो जाए। उसने देखा कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता, नींद खराब हो गई, स्वास्थ्य खराब हो गया।
फिर वह गांव के धर्म-गुरु के पास गया। क्योंकि ऐसे मामलों में धर्म-गुरु ही व्याख्या कर सकते हैं ठीक-ठीक कि क्या किया जाए। उनसे ज्यादा कनिंग, उनसे ज्यादा चालाक जमीन पर कोई दूसरा आदमी नहीं है। क्योंकि उनसे ज्यादा अनजान धंधा कोई करता ही नहीं। बाकी सब धंधे पार्थिव हैं, वे परमात्मा का धंधा करते हैं। वह बड़ी अंधेरी अज्ञात दुनिया का धंधा है। वह दूकान ऐसी है कि दिखाई नहीं पड़ती। वहां बहुत चालाक और होशियार आदमी चाहिए। वे ऐसा सामान बेचते हैं जिसको हाथ में पकड़ा नहीं जा सकता, जिसको आंख से देखा नहीं जा सकता। और उसके बदले में ऐसा सामान लेते हैं जो हाथ में पकड़ा जा सकता है, आंख से देखा जा सकता है। उसने कहा धर्म-गुरु के पास चले जाएं। वह धर्म-गुरु के पास गया।
धर्म-गुरु ने कहा, क्या चिंता की बात! ऐसे मसले तो रोज शास्त्रों में आते रहते हैं, हम व्याख्या करते रहते हैं। व्याख्या करना हमारा धंधा है। उसने कान में व्याख्या बता दी।
दूसरे दिन उस करोड़पति ने राजधानी में डुंडी पिटवा दी कि महल मुझे बेचना है, जिसको खरीदना हो सुबह आ जाए। सुबह उस महल को बहुत खरीदने वाले लोग उत्सुक थे, वे आ गए। महल के सामने जो स्तंभ था, स्मृति-स्तंभ, उसमें उसने एक बिल्ली बांध दी। और कहा कि पांच लाख रुपया बिल्ली के दाम और महल का दाम एक रुपया।
लोगों ने कहा, पागल हो गए हो? बिल्ली के दाम पांच लाख रुपए! और बिल्ली खरीदनी किसको है! हम बिल्ली खरीदने नहीं आए। पर उसने कहा कि नहीं, मुझे तो

बिल्ली और मकान साथ बेचना है। मकान का दाम एक रुपया और बिल्ली के दाम पांच लाख रुपए, जिसको लेना हो! इकट्ठे ही बेचूंगा एक ही ग्राहक को।
लोगों को समझ में नहीं आया। लेकिन उन्होंने कहा इससे क्या प्रयोजन है! पांच लाख का मकान था, ज्यादा का मकान था। एक आदमी ने पांच लाख की बिल्ली खरीद ली, एक रुपए में मकान खरीद लिया। पांच लाख रुपए उसने तिजोरी में बंद कर दिए, एक रुपया गरीबों में बांट दिया। व्याख्या कर ली अपने मतलब की, अपने काम की, अपने प्रयोजन की, निश्चिंत हो गया। नींद उसे गहरी आने लगी। स्वास्थ्य उसका ठीक हो गया।
महापुरुषों की, उनके जीवन की भी पीछे से हम ऐसी होशियार चालाक व्याख्या करते हैं कि उनका जीवन अपने हिसाब से निर्मित कर लेते हैं। अपना जीवन नहीं निर्मित करते, उनके जीवन को अपने हिसाब से ढाल लेते हैं। इसीलिए मुर्दा तीर्थंकर, मरे हुए अवतार, जा चुके महापुरुष अंगीकृत हो जाते हैं, पूज्य हो जाते हैं, आदृत हो जाते हैं। अभी फिर से आ जाएं वे आपके सामने, फिर विरोध शुरू हो जाएगा। इसी वक्त इनकार शुरू हो जाएगा।
जीसस क्राइस्ट को ऐसा एक बार ख्याल आ गया, मैंने सुना। अठारह सौ वर्ष बीत गए हैं। उन्हें ख्याल आ गया कि अब तो जमीन पर कोई एक तिहाई लोग ईसाई हो गए हैं। मेरे चर्च में पूजा करते हैं। मेरे गीत गाते हैं। मेरी तरफ हाथ जोड़ते हैं। मैंने गलती की जो मैं पहले पहुंच गया जमीन पर, अठारह सौ वर्ष पहले। अब अगर जाऊं तो मेरा ठीक स्वागत हो सकता है। जमीन तैयार है, लोग मेरे स्वागत को आतुर हैं, रोज करोड़ों प्रार्थनाएं आती हैं।
तो जीसस जेरुसलम में, अठारह सौ वर्ष बाद सूली पर लटकाए जाने के, जेरुसलम के बाजार में एक दिन सुबह-सुबह रविवार के दिन उतर आए। क्योंकि रविवार के दिन ईसाइयों को पहचानना आसान होता है। बाकी दिन कोई पता नहीं चलता कि कौन ईसाई है, कौन ईसाई नहीं है। जैसे महावीर जयंती आ जाए तो जैनियों को पहचानना आसान होता है। वैसे पता नहीं चलता कि कौन जैनी है, कौन जैनी नहीं है। तो सोचा रविवार ठीक दिन होगा, क्योंकि रविवार को ईसाई मंदिर जाता है, चर्च जाता है। चर्च के सामने ही बाजार में वह उतर कर एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए। चर्च से ईसाई लौटते थे, धार्मिक लोग। छह दिन जो पाप करते हैं, वे एक दिन धर्म भी कर लेना भूलते नहीं हैं। सोचते हैं कि एक दिन का धर्म छह दिन के पाप को अगर मिटा देता हो तो हर्जा क्या है! फिर छह दिन पाप करने की सुविधा मिल जाती है। ऐसे निपटारा भी होता चला जाता है, झंझट भी पैदा नहीं होती।
जीसस उतरे हैं, मंदिर से निकलते हुए लोग हैं चर्च से, भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग हंसने लगे और लोगों ने कहा कि कोई बहुरूपिया मालूम होता है, बिल्कुल जीसस क्राइस्ट की शक्ल बनाए हुए खड़ा है! जीसस ने कहा कि नहीं, मैं कोई बहुरूपिया नहीं हूं! मैं खुद हूं जीसस क्राइस्ट। मुझे भूल गए? मेरी प्रार्थना करते हो। मेरे चर्च से आ रहे हो।
वे लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, नासमझ जल्दी भाग जा यहां से। अभी पादरी भी आने को है बाहर। अगर उसने देख लिया तो खैरियत नहीं। भागो यहां से, यहां मत रुको।
तो जीसस ने कहा कि वह पादरी तो मेरा है। यहूदियों के पादरियों ने मुझे फांसी दी थी। यह तो अपना आदमी है। यह तो मेरा--वह तो कहता है, सर्वेंट ऑफ जीसस क्राइस्ट--वह तो मेरा सेवक है। उन लोगों ने कहा कि तुम गड़बड़ आदमी मालूम होते हो, तुम्हारा दिमाग खराब है। तभी पादरी आ गया वहां पर। बच्चे पत्थर फेंक रहे हैं, कोई छिलके फेंक रहा है, लोग हंसी उड़ा रहे हैं, कि यह कौन अभिनेता आ गया है जीसस क्राइस्ट बन कर। लेकिन मालूम बिल्कुल जीसस क्राइस्ट जैसा होता है!
पादरी आ गया, उसके लिए सम्मान से लोगों ने दरवाजा दे दिया। भीड़ छंट गई। लोग उसके पैरों में झुकने लगे। जीसस क्राइस्ट सामने खड़े हैं, उनके पैर में एक आदमी नहीं झुका है। यह पादरी जीसस क्राइस्ट के नाम पर उनका एजेंट है, स्वयं निर्मित, क्योंकि जीसस क्राइस्ट ने किसी को अपना एजेंट तय नहीं किया। यह खुद, सेल्फ-एप्वाइंटेड, उसके लिए लोगों ने दरवाजा छोड़ दिया। लोग भीड़ झुक कर हाथ-पैर जोड़ने लगे। और उसने जीसस को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा, बदमाश नीचे उतर! यह क्या ढोंग रच रखा है?

जीसस कहने लगे, तुम भी नहीं पहचानते? भीड़ नहीं पहचानती तो ठीक। उनको पसीना आ गया कि यह तो मुश्किल हो गई। मैं कहां आ गया, मैं तो सोचता था अपने लोग हैं। वह आज प्रीस्ट है, वह सबसे बड़ा पुरोहित है जेरुसलम का। तुम भी नहीं पहचानते मुझे? तू भी नहीं पहचाना मुझे? उस आदमी ने कहा, मैंने ठीक से पहचान लिया। नीचे उतरो! और चार आदमियों को कहा, पकड़ो इस आदमी को। जीसस क्राइस्ट एक बार आ चुके। अब उनके आने की न कोई जरूरत है, न कोई सवाल है। अभी एक आदमी आकर खड़ा हो जाए और कहे कि मैं महावीर हूं। जैनी कहेंगे, पकड़ो इसको इसी वक्त! क्योंकि महावीर हो चुके, अब कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। अंतिम तीर्थंकर हो चुका। ईश्वर का पुत्र आ चुका एक बार, अब दुबारा आने की क्या जरूरत है! मुसलमान कहते हैं कि मोहम्मद के बाद अब कोई पैगंबर नहीं। क्रिश्चियंस कहते हैं जीसस के बाद अब कोई ईश्वर का पुत्र नहीं। जैन कहते हैं महावीर के बाद अब कोई तीर्थंकर नहीं।
चार आदमियों ने पकड़ लिया है उसे और जाकर चर्च की एक कोठरी में बंद कर दिया, एक अंधेरी कोठरी में। जीसस तो बड़े हैरान हो गए कि क्या फिर से सूली लगेगी! क्या अपने ही लोग अब की बार सूली लगाएंगे! पहली सूली फिर भी समझने जैसी थी, क्षम्य थी। लेकिन इस सूली की तो व्याख्या करना भी मुश्किल हो जाएगा। क्या अपने लोग भी सूली लगाएंगे!
आधी रात बीत गई है। फिर चर्च के पादरी ने कोठरी का द्वार खोला। अंधेरे में लालटेन लेकर भीतर गया। क्राइस्ट की आंखों से आंसू टपक रहे हैं। उस पादरी ने लालटेन नीचे रखी। गिर कर क्राइस्ट के पैर छुए और कहा, क्षमा करें! जीसस ने कहा, क्या तू मुझे पहचान गया? अंततः पहचान गया न!
उस पादरी ने कहा, पहचान तो मैं वहां भी गया था। लेकिन भीड़ में स्वीकार करना उचित नहीं है। पहचान तो मैं तब भी गया था। लेकिन बाजार में पहचानना ठीक नहीं है। अकेले में ठीक है। आपके आने की कोई जरूरत नहीं है। हम आपकी तरफ से अच्छी तरह से काम चला रहे हैं। ठीक से काम चला रहे हैं। अठारह सौ साल में हमने मुश्किल से व्यवस्था जमाई है। तुम आए तो सब गड़बड़ हो जाएगा। ये पुरानी आदतें हैं तुम्हारी कि तुम जब भी आते हो, पादरियों की, पुरोहितों की, साधुओं की, संन्यासियों की, पंडितों की सारी परंपरा गड़बड़ कर देते हो। ओल्ड डिस्टरबर! तुम पुराने विध्वंसकारी हो। तो तुम्हें हम भीड़ में नहीं पहचान सकते। भीड़ में अगर तुमने गड़बड़ की तो हमें भी सूली देनी पड़ेगी। क्षमा करना, उसके सिवा कोई रास्ता नहीं है। लेकिन हां, तुम न आओ, तुम आकाश में रहो। हम तुम्हारी प्रार्थना और तुम्हारे चरणों में अर्चना करते रहेंगे। हमेशा-हमेशा हम तुम्हारे भक्त हैं, हम तुम्हारे सेवक हैं। जीसस को कुछ समझ में आया कि नहीं, मुझे पता नहीं, कि क्या हालत थी उनकी। लेकिन यही हालत है। पूजा करने तक ठीक है। लेकिन जीवंत घटना हमारे जीवन को बदलने के लिए तीव्र चैलेंज, चुनौती पैदा कर देती है। और जीवन को हम बदलना नहीं चाहते। हम धर्म को जीना नहीं चाहते। हम केवल पूजा करना चाहते हैं। इसलिए हम जब कोई महापुरुष मर जाता है... ।
महावीर को शरीर छोड़े पच्चीस सौ वर्ष हो गए। पच्चीस सौ वर्ष से जयंती
चल रही है। हर वर्ष स्मरण करने वाले लोग याद करते हैं। और ऐसी व्यवस्था कर ली है कि इन महावीर की जो हमने शक्ल बना ली, जो इमेज हमने क्रिएट कर ली बिल्कुल झूठी, उसका असली महावीर से कोई भी नाता नहीं है, कोई भी संबंध नहीं है। बिल्कुल झूठी इमेज, मुर्दा, हमारे काम की, जो हमारे हाथ की कठपुतली है। वह इमेज हमको नहीं बदली है। उस प्रतिमा ने महावीर की, उस महावीर की जीवन-दृष्टि ने हमें नहीं बदला है। हमने महावीर की जीवन-दृष्टि को अपने अनुकूल कर लिया है, बदल लिया है।
ऑस्कर वाइल्ड एक घर में मेहमान था। उस घर की सुंदर गृहिणी ने वाइल्ड
को कहा, मेरे पास आपकी एक तस्वीर है। बिल्कुल आप जैसी! इतनी आप जैसी कि कभी- कभी तो मैं इतनी अभिभूत हो जाती हूं कि उस तस्वीर का चुंबन कर लेती हूं। ऑस्कर वाइल्ड ने शंका से सिर हिलाया और कहा, तस्वीर लौट कर चुंबन उत्तर में देती है कि नहीं? उस स्त्री ने कहा कि नहीं, तस्वीर तो नहीं देती। तो वाइल्ड ने कहा, फिर मेरे जैसी नहीं है। मैं तो लौट कर उत्तर देता। वह तस्वीर फिर मेरे जैसी नहीं है। वह तस्वीर है और मुर्दा है, जीवंत से तो उत्तर आता। मृत से कोई उत्तर नहीं आता।

हम उत्तर चाहते भी नहीं हैं। हम पूजा कर लेते हैं, अपने घर चले जाते हैं। उस तरफ से हम कोई रिस्पांस, उस तरफ से हम कोई उत्तर नहीं चाहते।
क्योंकि उस तरफ का अगर कोई उत्तर होगा तो हमारे प्राण संकट में पड़ जाएंगे। हमें अपने को बदलना पड़ेगा।
तो हम कैसे महावीर... जिस महावीर का हम स्मरण करते हैं। वह हमारा बनाया हुआ महावीर है, उस महावीर का नहीं जो था। जिस मोहम्मद को हम स्मरण करते हैं वह हमारा बनाया हुआ है। जिस राम को हम स्मरण करते हैं वह हमारा बनाया हुआ है। असली राम को, असली मोहम्मद को, असली महावीर को तो हम स्मरण कर ही नहीं सकते, क्योंकि उसकी स्मृति तो हमारे सारे जीवन का रूपांतरण सिद्ध होगी। हम अग्निपूजक हैं। हम अग्नि को जलाना नहीं चाहते और न जलाना जानते हैं। और कुछ पुजारी हैं जो जलाना जानते हैं, तो वे नहीं चाहते कि कोई और जान ले। क्योंकि जब तक यह ज्ञान सीक्रेट है, यह रहस्य है, तब तक उनका भी मूल्य है और आदर है। हमने कैसे महावीर की तस्वीर अपने हिसाब से बना ली है, उसकी मैं चर्चा करना चाहूंगा।
अगर हमें यह ख्याल आ जाए कि महावीर जैसे वे हैं, और महावीर जैसे हमने बना लिए हैं, इन दोनों में बुनियादी फर्क है, तो हमारी जिंदगी में चिंतन का और परिवर्तन का एक मौका पैदा हो सकता है। कैसी हमने तस्वीर बना ली है! और हजारों वर्षों से तस्वीर में नई-नई तस्वीरें जुड़ती चली जाती हैं। पच्चीस सौ वर्ष की यात्रा के बाद असली महावीर में और हमारे महावीर में कोई संबंध, कोई मेल-जोल नहीं रह गया। पच्चीस सौ वर्ष में इतनी प्रतिध्वनियां गूंज गईं, इतना गंगा का पानी बह गया, किनारे इतने छिल गए और बिखर गए, रेत इतनी नई आई और चली गई। और इतने लोगों ने व्याख्याएं जोड़ीं, व्याख्याएं जोड़ीं, व्याख्याएं जोड़ीं कि अब हमारे पास एक झूठी व्याख्या के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया। लेकिन वह झूठी व्याख्या हमें प्रीतिकर है, क्योंकि वह बिल्कुल डेड है, मुर्दा है। वह हममें कुछ भी नहीं कर सकती। हम जैसा चाहें उसका अर्थ निकाल सकते हैं।
गीता पर एक हजार टीकाएं हैं। बड़ी अजीब बात है। कृष्ण ने अर्जुन से जो कहा उसका अर्थ एक ही रहा होगा, हजार अर्थ नहीं हो सकते। कि हो सकते हैं? अगर हो सकते हों, तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा तो ही हो सकते हैं। पागलों की बात का एक अर्थ नहीं होता, हजार, पचास हजार हो सकते हैं। पागल को खुद भी पता नहीं होता कि क्या अर्थ है। लेकिन कृष्ण पागल नहीं हैं। फिर ये एक हजार गीता की टीकाएं कैसे खड़ी हो गईं? ये एक हजार अर्थ करने वाले लोग कौन हैं? ये क्यों अर्थ किए जा रहे हैं? यह हर वर्ष, दो वर्ष के बाद फिर कृष्ण की तस्वीर को हमें अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। फिर नई व्याख्या करनी पड़ती है।
शंकर व्याख्या करते हैं, वह व्याख्या कृष्ण का अर्थ नहीं है, शंकर का आरोपण है। शंकर को जो सिद्ध करना है वह कृष्ण पर थोपते हैं। रामानुज व्याख्या करते हैं, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। रामानुज को जो कहना है, वह कृष्ण पर थोपते हैं। तिलक व्याख्या करते हैं, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। उनको कर्म-योग थोपना है, तो कृष्ण के ऊपर कर्म-योग थोप देते हैं। गांधी को व्याख्या करनी है, तो अदभुत बात है, गांधी को अहिंसा थोपनी है। कृष्ण युद्ध में ले जाने का आह्वान कर रहे हैं। गांधी इसके ऊपर भी अहिंसा थोप देते हैं। अभी विनोबा को भूदान थोपना है, तो उसी में से भूदान भी निकल सकता है। जिसकी जो मर्जी हो निकाला जा सकता है। लेकिन इनको किसी को भी कृष्ण से कोई मतलब नहीं है। ये कृष्ण के इमेज को निर्मित करते चले जा रहे हैं, एक नई प्रतिमा गढ़ते चले जा रहे हैं। हर कवि को अपने अनुकूल आदमी चाहिए। वह अपने अनुकूल बना लेता है। फिर पूजा जारी हो जाती है।
हजार, दो हजार वर्षों में चीज इतनी दूर चली जाती है, इतनी अफवाह रह जाती है फिर कि उसका सच्चाई से कोई भी संबंध नहीं रह जाता। अंगारे और राख में जितना फर्क है, उतना ही असली महावीर में और हमारे महावीर में फर्क है। अंगारा जला देगा, राख को मजे से मुट्ठी में पकड़े हुए बैठे रहो। हालांकि राख अंगारे से ही आई है, इसलिए तृप्ति रहती है कि यह भी अंगारा ही है। लेकिन राख को मुट्ठी में पकड़ा जा सकता है। अंगारे को मुट्ठी में नहीं पकड़ा जा सकता। तो राख प्रीतिकर है, उसकी पूजा की जा सकती है। अंगारे की पूजा

नहीं की जा सकती। अंगारे का उपयोग किया जा सकता है। अंगारे के हम मालिक नहीं हो सकते। राख के हम मालिक हो सकते हैं। राख को हम पजेस कर सकते हैं। अंगारा जिंदा चीज है। जिंदा महापुरुष अंगारा होता है। हम जिनकी पूजा करते हैं वे राख हो जाते हैं। और हजारों वर्षों में प्रतिध्वनियां होती रहती हैं, व्याख्याएं होती रहती हैं, और सब परिवर्तित हो जाता है।
एक गांव में दो पैरेलल, समानांतर रास्ते थे। दोनों रास्तों पर पूरी बस्ती आबाद थी। और जैसा अक्सर होता है, दो पड़ोसियों में कोई मेल नहीं होता, दो मोहल्लों में कोई मेल नहीं होता, दो गांवों में कोई मेल नहीं होता, दो मुल्कों में कोई मेल नहीं होता, जहां दो है वहां झगड़ा एकदम शुरू हो जाता है। पति-पत्नी में कोई मेल नहीं होता। वहां दो आए कि झगड़ा शुरू हुआ। उन दोनों समानांतर रेखाओं पर बसे हुए मोहल्लों में भी कोई मेल नहीं था। उनके धर्म अलग थे, उनकी राजनीति अलग थी, उनकी श्रद्धा अलग थी, उनके सिद्धांत अलग थे, शास्त्र अलग थे, पैगंबर अलग थे, तीर्थंकर अलग थे।
लेकिन एक-दूसरे को देखते रहते थे। एक-दूसरे के आस-पास गुजरते भी थे। मिलते तो कभी नहीं थे, पास से गुजर जाते थे। जैसे हिंदू-मुसलमान गुजर जाते हैं। जैसे ईसाई-जैन गुजर जाते हैं। जैसे श्वेतांबर-दिगंबर गुजर जाते हैं। एक से एक पागलपन हैं। दो आदमी एक-दूसरे के पास से गुजर जाते हैं, बीच में एक अनदिखी दीवाल खड़ी रहती है और मिलने नहीं देती। वैसा उन दोनों के बीच था। लेकिन एक दिन एक फकीर आ गया। और फकीरों को कोई वास्ता नहीं होता कि तुम किस बस्ती के रहने वाले हो, किस मंदिर के पूजने वाले हो। वह दोनों में आता-जाता था। एक दोपहर वह एक बस्ती से दूसरी बस्ती में निकल रहा था। उसकी आंखों से आंसू झर-झर टपक रहे थे। उस दूसरी बस्ती के लोगों ने समझा कि पहली बस्ती में कोई मर गया। उससे पूछा भी नहीं किसी ने कि क्या हुआ।
लोग इतने समझदार हैं कि बिना पूछे भी समझ लेते हैं। कृष्ण से कोई नहीं पूछता कि तुम्हारा मतलब क्या है। लोग इतने समझदार हैं कि अपने घर में गीता रख कर अर्थ निकाल लेते हैं, व्याख्या छपा देते हैं विचारक, खर्च करके बंटवा भी देते हैं लोगों में। कृष्ण से कोई नहीं पूछता, हम अपना अर्थ निकाल लेते हैं।
फकीर को देखा कि उसकी आंख से आंसू टपकते हैं, दूसरी गली से आता है, मोहल्ले के लोगों ने समझा कि वहां कोई खतरा हो गया, कोई मर गया। यह तो पहली घटना थी समझ की। अब समझ की प्रतिध्वनियां होनी शुरू हुईं। सांझ होते-होते उस बस्ती में खबर फैल गई कि दूसरे मोहल्ले में महामारी फैली हुई है। न मालूम कितने लोग मर चुके हैं। स्वभावतः, सांझ होते-होते पच्चीस कदम आगे बढ़ गई थी बात, पच्चीस मुंह तक पहुंच गई थी। और वह आदमी ही क्या जो एक खबर को सुने और कुछ उसमें जोड़ न दे। नहीं तो दुनिया में न्यूज पैदा होने बंद हो जाएं, न्यूजपेपर बंद हो जाएं।
आदमी बड़ा क्रिएटिव है, बड़ा सृजनात्मक है, बड़ा कंसट्रक्टिव, बड़ा रचनात्मक। जरा सी चीज मिलती है, कंसट्रक्ट करता है उसको, बनाता है, ट्रेस करता है। फिर दूसरा आदमी कुछ और कंसट्रक्ट करता है। फिर आगे बढ़ती चली जाती है।
सुबह जो बात चली थी, सांझ पहचानना मुश्किल है कि यह वही बात है। सांझ
तक खबर पहुंच गई गांव भर में, उस गांव में दूसरे में कि दूसरे हिस्से में महामारी फैली है, गांव खाली कर देना चाहिए। कोई जनसेवक मिल गया होगा, उसने यह भी जोड़ दिया कि गांव खाली करो, नहीं तो महामारी यहां आ जाएगी। रात गांव खाली करने में स्वयंसेवक जुट गए। स्वयंसेवक हमेशा मिल जाते हैं। कोई भी बेवकूफी करवानी हो, वे हमेशा उपलब्ध हैं। वालंटियर्स! वे कहते हैं, हम स्वेच्छा से सब कर देंगे। उन्होंने गांव खाली कर दिया।
जब एक गांव खाली होने लगा पड़ोस का तो बगल की बस्ती में जो समानांतर बसी थी, वहां भी खबर पहुंची। वहां भी पत्रकार थे, वहां भी संवाददाता थे, वहां भी मैसेंजर्स थे। उन्होंने कहा, सुनते हो, क्या सो रहे हो! हम मर जाएंगे, दूसरा हिस्सा खाली हो रहा है, वहां महामारी फैली हुई है। सुबह होते-होते उस हिस्से ने भी गांव खाली कर दिया। दोनों नदी के पार जाकर सामान ढोकर ले गए।

हजारों साल हो गए इस बात को हुए। वे गांव अब भी नदी के किनारे बसे हैं।
और असली बस्ती वीरान, उजाड़, टूटी-फूटी पड़ी है--खंडहर। उनसे कोई पूछता है कि वह बस्ती क्यों बर्बाद हो गई? तुम सब यहां छोड़ कर क्यों चले आए? तो वे कहते हैं, हमारे शास्त्रों में लिखा है, और हमारे पंडित-पुरोहित बताते हैं, और हमारे पिता और उनके पिता कहते थे कि एक बार एक अज्ञात बीमारी फैली थी, और उस बीमारी के कारण असली बस्ती को छोड़ कर हम यहां आ गए थे। अज्ञात काल में कभी वह घटना घटी थी।
और कुल घटना इतनी घटी थी--काश कोई उस फकीर से पूछ लेता तो इतनी झंझट की कोई जरूरत नहीं थी--वह फकीर प्याज छीलता रहा था और प्याज छीलने की वजह से आंख में आंसू आ गए थे। लेकिन उससे किसी ने पूछा नहीं कि यह हुआ क्या।
सारी परंपराएं इस भांति पैदा होती हैं। कोई प्याज छीलता है, आंख में आंसू आ जाते हैं। महामारियां फैल जाती हैं। गांव उजड़ जाते हैं। बस्तियां बदल जाती हैं। आदमी कुछ से कुछ हो जाता है। महावीर की जिंदगी में भी यही हुआ। सभी महापुरुषों की जिंदगी में यह होता है। महापुरुष वह है, उतना ही बड़ा महापुरुष, जितना ज्यादा मिसअंडरस्टैंड किया जा सके। जितना ज्यादा हम नासमझी कर सकें किसी आदमी के प्रति, वह उतना बड़ा आदमी है। छोटा आदमी वह है जिसको मिसअंडरस्टैंड करने की कोई गुंजाइश नहीं है। जो जैसा है वैसा है। असल में छोटे आदमी की हम कोई व्याख्या नहीं करते। साधारण आदमी की हम कोई व्याख्या नहीं करते। व्याख्या करें तो साधारण आदमी के साथ भी यही हो जाए। महापुरुषों की व्याख्या की जाती है।
महावीर के तीन-चार सूत्रों पर मैं बात करना चाहता हूं जिनकी व्याख्या
ने महावीर की एक झूठी, फाल्स इमेज, एक मिथ्या प्रतिमा हमारे सामने उपस्थित कर दी। और वैसा सभी महापुरुषों के साथ हुआ है। तो जो मैं महावीर के बाबत कहता हूं, वह सब महापुरुषों के बाबत शत-प्रतिशत वैसा का वैसा सच है।
पहली बात, सारी दुनिया में यह कहा जाता है कि महावीर अहिंसा के जन्मदाता हैं। यह बात सरासर झूठ है। महावीर प्रेम के तो पुजारी हैं, अहिंसा का महावीर से कोई भी संबंध नहीं। और प्रेम और अहिंसा एक ही बात नहीं हैं। प्रेम तो जीवंत घटना है, अहिंसा व्याख्या है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और प्रेम और अहिंसा दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है।
प्रेम तो पाजिटिव है। प्रेम तो विधायक संबंध है। और अहिंसा निगेटिव है, नकारात्मक बात है। प्रेम का अर्थ है, मैं दूसरे का मंगल चाहूं, दूसरे का कल्याण चाहूं, दूसरे के जीवन में आनंद बनूं, दूसरे के मार्ग पर फूल बिछाऊं। अहिंसा का मतलब है, मैं दूसरे का दुख न करूं, दूसरे को दुख न दूं। दूसरे को दुख न दूं, तो अहिंसा पूरी हो जाती है, प्रेम पूरा नहीं होता। प्रेम जब तक दूसरे को सुख न दे सके तब तक चुप नहीं बैठ सकता। प्रेम दूसरे के रास्ते पर फूल बिछाता है। अहिंसा केवल दूसरे के रास्ते पर कांटे न बिछाऊं, इतने भर तक जाती है। अहिंसा कहती है, दूसरे के रास्ते पर कांटे मत बिछाना। लेकिन अगर दूसरे के रास्ते पर कांटे बिछे हों, तो अहिंसा का इससे कोई संबंध नहीं कि उनको तुम बीनना कि मत बीनना।
अगर दूसरे का रास्ता खाली हो और तुम्हारे हाथ में फूल हों, तो अहिंसा
का इससे कोई संबंध नहीं कि तुम उसके रास्ते पर फूल रखना कि नहीं रखना। अहिंसा निगेटिव बात है। मैं दूसरे को दुख न दूं बस इतना पर्याप्त है। इसके आगे अहिंसा की प्रेरणा नहीं है। लेकिन प्रेम की प्रेरणा अनंत है। दूसरे के रास्ते पर कांटे न बिछाऊं, यह तो है ही। दूसरे के रास्ते पर बिछे कांटे उठाऊं, यह भी है। लेकिन दूसरे के रास्ते पर कांटे न हों, यह भी पर्याप्त नहीं है। दूसरे के रास्ते पर फूल भी बिछने चाहिए, यह भी जरूरी है।
प्रेम में तो अहिंसा सम्मिलित है। प्रेम का पहला चरण अहिंसा है। दूसरे के रास्ते पर कांटे न बिछाऊं। दूसरे को दुख न दूं। तो प्रेम के बड़े विस्तार में अहिंसा तो मौजूद है। लेकिन अहिंसा का विस्तार बहुत संकीर्ण है, उसमें पूरा प्रेम मौजूद नहीं होता।
महावीर के जीवन में है प्रेम और महावीर के अनुयायियों ने पकड़ रखी है अहिंसा। तो फिर अहिंसा इस तरह के रास्ते पकड़ लेती हैः पानी छान कर पीऊं, रात खाना न खाऊं, मांस न खाऊं; बस इस तरह की शक्ल पकड़ लेती है। यह निगेटिव है तो पकड़ेगी। अगर महावीर सिर्फ अहिंसक थे, कोई मूल्य की बात नहीं रह जाती

फिर। महावीर अहिंसक नहीं, महावीर एक महाप्रेमी हैं। लेकिन महावीर के प्रेम को अगर हम समझेंगे, तो हमारे जीवन में क्रांति हुए बिना नहीं हो सकता। हमें जीवन को बदल लेना पड़ेगा।
प्रेम जीवन की बदलाहट की सबसे बड़ी कीमिया है, और प्रेम जीवन का सबसे बड़ा दांव है, और प्रेम जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है। लेकिन अहिंसा कोई दांव नहीं है। अहिंसा कोई चुनौती नहीं है। आपकी जिंदगी को बदलने की कोई खास जरूरत नहीं है। आप एक नकारात्मक रुख ले लें, बस काफी है। अगर एक रास्ते पर एक आदमी गिर पड़ा और आप उस रास्ते से गुजर रहे हैं, तो अगर आप प्रेमी हैं तो आपको उस आदमी को उठाना पड़ेगा और अगर आप अहिंसक हैं तो आपको कोई संबंध नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। आपने गिराया नहीं है, आपका कोई वास्ता नहीं है। प्रेम की तो अदभुत पुकार है आपसे, इसलिए प्रेम का कृत्य कभी पूरा नहीं होता, हमेशा अधूरा रहता है; और शेष रह जाता है, और शेष रह जाता है करने को। प्रेमी हमेशा अनुभव करता है कि जितना मुझे करना था वह मैं नहीं कर पाया हूं, जो मैंने किया वह ना-कुछ है, जो नहीं किया वह बहुत कुछ है।
लेकिन अहिंसा को यह चिंता करने की जरूरत नहीं है। महावीर तो प्रेमी हैं, महावीर के अनुयायी अहिंसक हैं। और इतनी होशियारी से बात की गई है कि ऐसा मालूम होने लगा कि अहिंसा यानी प्रेम। अहिंसा यानी प्रेम नहीं है, अहिंसा बुनियादी भूल है। और इसलिए यह परिणाम हुआ कि महावीर का अनुयायी अहिंसा की बातें भी करता रहा, लेकिन उसके जीवन में कोई प्रेम पैदा नहीं हो सका। अहिंसा होगी, प्रेम बिल्कुल नहीं है। और अहिंसा बिल्कुल थोथी है। फिर यह भी ध्यान रखें, कि प्रेम के परिणाम और हैं, अहिंसा के परिणाम और हैं। जब मैं प्रेम करता हूं, जब मेरा जीवन प्रेम की एक धारा बने, तो मुझे यह फिक्र ही छूट जाती है कि प्रेम करने में मेरा क्या हो रहा है। फिक्र यह रह जाती है कि जिससे मैं प्रेम कर रहा हूं, उस पर क्या हो रहा है। जब प्रेम परिपूर्ण होता है तो व्यक्ति का अहंकार शून्य हो जाता है। उसे ख्याल ही भूल जाता है कि मैं हूं भी। वही रह जाता है जिसके प्रति प्रेम है। और अगर सारे जगत के प्रति प्रेम है, जैसा कि महावीर का है--सर्व प्रेम, सर्व मंगल, सर्व करुणा की भावना--तो सबके प्रति, अनंत के प्रति जब प्रेम है, तो व्यक्ति अपने को निपट शून्य पाता है कि मैं हूं ही नहीं। क्योंकि प्रेम में स्वयं को स्मरण करने की फुरसत कहां, मौका कहां! स्वयं को तो केवल वे ही स्मरण कर पाते हैं जो प्रेम में नहीं हैं।
क्या आपको पता है, जब भी आप प्रेम में होते हैं--छोटे से प्रेम में ही सही, एक व्यक्ति से प्रेम में ही सही--जितनी देर प्रेम का क्षण आपके प्राणों को आंदोलित करता है, उतनी देर के लिए आप मौजूद नहीं रह जाते। आप नहीं हैं फिर। प्रेमी रह गया, आप नहीं हैं। आप न हो गए, आप समाप्त हो गए। वही रह गया जिसके प्रति प्रेम बहा जा रहा है। और जिसका प्रेम सर्व के प्रति बहता हो, वह तो मिट गया। वह तो न हो गया। वह शून्य हो गया। उसका अहंकार समाप्त हो जाता है।
प्रेम अहंकार की मृत्यु है। लेकिन अहिंसा अहंकार की मृत्यु नहीं है, बल्कि अहिंसा अहंकार की नई तरह से पूजा है। कैसे?
अहिंसक का यह विचार नहीं है कि दूसरे को दुख न मिले। अहिंसक का मूल विचार यह है कि मैं दूसरे को दुख दूंगा तो मुझे पाप कर्म होगा। मुझे पाप कर्म होगा मैं दूसरे को दुख दूंगा तो। मैं दूसरे को दुख दूंगा तो मुझे बुरे फल भोगने पड़ेंगे। मुझे! दूसरे का इससे कोई संबंध नहीं है। मैं दूसरे को दुख दूंगा, दूसरे की हिंसा करूंगा, हत्या करूंगा, तो मुझे नरक जाना पड़ेगा--मुझे! इससे दूसरे का कोई संबंध नहीं है। मैं अगर दूसरे को दुख न दूं, अहिंसक रहूं, तो मुझे स्वर्ग मिल सकता है। मुझे! इसमें दूसरे से कोई संबंध नहीं है। और अगर मैं सर्व हिंसा का त्याग कर दूं, बिल्कुल अहिंसक हो जाऊं, किसी तरह की हिंसा मेरे जीवन में न हो, तो मुझे मोक्ष मिलेगा--मुझे! इससे दूसरे का कोई संबंध नहीं है।
अहिंसा की प्रेरणा, अहिंसा शब्द की प्रेरणा, अहंकार, स्वार्थ के अतिरिक्त दूसरी नहीं है। इसलिए तो यह अदभुत घटना दिखाई पड़ती है कि एक आदमी अहिंसक भी है और साथ ही स्वार्थी भी है। प्रेमी स्वार्थी नहीं हो सकता। प्रेमी के स्वार्थ का कोई सवाल नहीं है। प्रेमी तो स्वार्थ को छोड़ता है,

खोता है, विलीन करता है। विलीन हो जाता है प्रेम में। छोड़ना भी नहीं पड़ता, खोना भी नहीं पड़ता। लेकिन अहिंसक सूक्ष्म स्वार्थ की चेष्टा में लगा हुआ है। अपना मोक्ष खोज रहा है। अपना स्वर्ग खोज रहा है। आत्मा पाने की कोशिश कर रहा है। अनंत आनंद की कोशिश कर रहा है। और चूंकि हिंसा इसमें बाधा बनती है, इसलिए हिंसा भी छोड़नी पड़ रही है। हिंसा छोड़ने में दूसरा विचारणीय नहीं है, मेरा ही हित विचारणीय है।
एक आदमी रामकृष्ण के पास आता था। उसके घर पर काली का जलसा होता, और वर्ष में दो-चार बार सैकड़ों बकरे कटते, मांस बनता, सैकड़ों लोग भोजन पर आमंत्रित होते। फिर वह बूढ़ा हो गया। फिर उसके यहां काली की पूजा बंद हो गई। तो रामकृष्ण ने पूछा कि सुनता हूं मैं कि अब काली की वह पूजा बंद हो गई। क्या हुआ? क्या तुम्हारा मन बदल गया? क्या काली से मन फिर गया? उस आदमी ने कहा कि नहीं, मेरे दांत गिर गए। रामकृष्ण ने कहा, दांत गिर गए! इससे काली की पूजा का संबंध? वह आदमी हंसने लगा, उसने कहा, असल में काली की पूजा तो बहाना था। असली मतलब तो भोज, आमोद-प्रमोद, आनंद था। बकरे कटते थे, मांस बनता था, उसका मजा था। अब दांत ही न रहे तो क्या काली की पूजा! और क्या उत्सव! और क्या समारोह! वह सब बंद हो गया।
लेकिन काली की पूजा करते वक्त अगर कोई कहता कि इस आदमी के दांतों की वजह से यह पूजा कर रहा है, तो वह आदमी पकड़ लेता कि कैसी झूठ बात कर रहे हो! दांत से इसका क्या संबंध! आदमी के मोटिव्स, आदमी की प्रेरणाएं बड़ी अजीब हैं। यह हो सकता है कि एक आदमी दांतों के स्वस्थ होने की वजह से काली की पूजा कर रहा है। यह हो सकता है कि एक आदमी निपट स्वार्थ की वजह से अहिंसा की बातें कर रहा है। निपट स्वार्थ--मेरा सुख, मेरा मोक्ष, मेरा पुण्य। मैं बच जाऊं, सारी दुनिया जाए नरक में, सारी दुनिया का कुछ भी हो। मैं बच जाऊं, मैं बच जाऊं, मैं बच जाऊं। यह जो सेल्फ, यह जो स्व है, प्रेम में इसके लिए कहां गुंजाइश है!
महावीर के जीवन में अहिंसा नहीं है। महावीर के जीवन में है प्रेम। प्रेम है सर्व-मंगल का भाव। अहिंसा है स्व-मंगल की कामना। ये दोनों विरोधी बातें हैं। प्रेम यानी अहिंसा नहीं, अहिंसा यानी प्रेम नहीं। हां, प्रेम में अहिंसा तो सम्मिलित हो जाती है। वह उसकी वृहत्तर परिधि में एक छोटा सा कोना बन जाती है। लेकिन अहिंसा के छोटे से कोने में प्रेम नहीं समाता है। लेकिन व्याख्याकारों ने होशियारी कर ली। महावीर के प्रेम को अहिंसा
का नाम देते ही बुनियादी कीमत, बुनियादी कीमत बदल गई, बेसिक वैल्यू बदल गई। और फिर ढाई हजार साल से अहिंसा परम धर्म! अहिंसा परमो धर्मः! इसका उदघोष चल रहा है। साधु-संत, पंडित-पुरोहित चिल्ला रहे हैं, अहिंसा परमो धर्मः! और चिल्लाते चले जा रहे हैं। और बड़ा अदभुत है, इस नारे ने सब नष्ट कर दिया। वह महावीर के जीवन का बुनियादी स्वर, वह संगीत की खास चोट, जहां से वे मनुष्य के प्राण को छू लेना चाहते हैं, कि प्रेम हो, वह खत्म हो गई। लेकिन कौन इस बात को कहे? क्योंकि पंडित शब्दों के अर्थ करने में कुशल होते हैं। वे कहेंगे, अहिंसा यानी प्रेम। वे कहेंगे, अहिंसा का मतलब प्रेम ही होता है। अगर अहिंसा का मतलब प्रेम ही होता है, तो प्रेम ही कहने में हर्ज क्या है! लेकिन एक छोटे से शब्द का फर्क इतने क्रांतिकारी फर्क लाता है जिसका हमें कोई हिसाब नहीं, ख्याल नहीं, पता नहीं।
एक यहूदी साधु अपनी मोनेस्ट्री में, अपने आश्रम में अध्ययन के लिए गया हुआ था। उसका एक मित्र भी उसके साथ है। वे दोनों जवान हैं, वे दोनों साधना के लिए गए हुए हैं। लेकिन दोनों को सिगरेट पीने की आदत है। और बड़े परेशान हैं कि आश्रम में क्या होगा! सिगरेट पीने तो मिलेगी नहीं वहां! और मोनेस्ट्री चारों तरफ से बंद है। चौबीस घंटे भीतर रहना होता है। बाहर जाने की आज्ञा भी नहीं है। लेकिन सांझ को एक घंटे के लिए नदी के किनारे घूमने की आज्ञा मिलती है। वह भी ईश्वर-चिंतन के लिए कि जाओ नदी के किनारे घंटे भर ईश्वर-चिंतन करो। सोचा कि चलो वहीं सिगरेट पी लेंगे। लेकिन फिर ख्याल आया कि साधु बनने आए हैं, आश्रम में प्रवेश लिया है, झूठ करें, चोरी करें, यह तो ठीक नहीं। सोचा गुरु से पूछ लें, आज्ञा ले लें। दोनों अपने गुरु के पास गए।

एक व्यक्ति गुरु के पास गया और गुरु ने फौरन कहा कि नहीं-नहीं, सिगरेट पीने की आज्ञा नहीं मिल सकती। वह दुखी वापस लौटा। अब तो चोरी करने का भी उपाय न रहा। वह जब वापस लौटा नदी के किनारे तो देखा कि घास पर बैठा हुआ उसका पहला मित्र तो सिगरेट पी रहा है। तो उसने पूछा कि क्या तुमने बिना पूछे सिगरेट पीनी शुरू कर दी? उसने कहा कि नहीं, मैंने पूछा और गुरु ने कहा, हां पी सकते हो। उसकी आंख से तो चिंगारी गिरने लगी जिससे इनकार किया गया था। उसने कहा, यह क्या, यह क्या भेद है! मैंने पूछा, मुझे तो एकदम गुस्से में कहा कि नहीं-नहीं, नहीं पी सकते हो। तुम्हें कैसे आज्ञा दी! चलो उठो मेरे साथ वापस।
वह दूसरा युवक हंसने लगा। और उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं तुमने गुरु से क्या पूछा था? उस युवक ने कहा, मैंने पूछा था--पूछना क्या था, सीधी बात थी--मैंने पूछा कि क्या मैं ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकता हूं? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। तुमने क्या पूछा था? उस युवक ने कहा, मैंने पूछा था क्या मैं सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन कर सकता हूं? उन्होंने कहा, हां!
इतना सा फर्क! कोई फर्क भी नहीं है। क्या फर्क है इसमें कि एक आदमी ईश्वर-चिंतन करते वक्त सिगरेट पीता है कि सिगरेट पीते वक्त ईश्वर-चिंतन करता है! यह बात तो बिल्कुल एक है। लेकिन नहीं, फर्क है। बुनियादी फर्क है। और एक के उत्तर में हां मिल सकता है और दूसरे के उत्तर में न मिल सकता है। जमीन पर कौन होगा जो कहेगा कि आप ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पीएं! कोई भी नहीं कहेगा। लेकिन कोई पूछता है क्या मैं सिगरेट पीते वक्त ईश्वर-चिंतन कर सकता हूं, कौन मना करे! कौन मना करे, इसमें मना करने की बात क्या है! अच्छा ही है, सिगरेट पी रहे हो वह तो ठीक है, कम से कम ईश्वर-चिंतन तो कर रहे हो।
अहिंसा और प्रेम में ऐसा ही फर्क है। भाषा-कोश में फर्क नहीं है। व्याकरण में फर्क नहीं होगा। शब्द के जो जानकार हैं, वे कहेंगे एक ही बात है। लेकिन एक ही बात नहीं है।
प्रेम के उत्तर में जीवन और हो जाएगा। अहिंसा के उत्तर में जीवन और हो जाएगा। अहिंसा के उत्तर में स्वार्थ पैदा होगा। प्रेम के उत्तर में परार्थ पैदा होगा। अहिंसा के उत्तर में व्यक्ति अहंकारी होगा--अपनी खोज, मेरी खोज, मैं। और प्रेम की खोज में व्यक्ति मिटता चला जाएगा, शून्य हो जाएगा, न हो जाएगा।
तो प्रेम के रास्ते से चल कर तो कोई परमात्मा तक पहुंच सकता है, लेकिन अहिंसा के रास्ते से नहीं। यह तो पहली बात ध्यान लेने की है कि महावीर के इमेज में, महावीर की प्रतिमा में बुनियादी फर्क कर दिया। शब्द-शास्त्री बहुत कुशलता से फर्क कर सकते हैं, हमें हजारों साल तक पता न चले कि क्या फर्क हो गया! क्या फर्क कर दिया उन्होंने, क्या व्याख्या कर दी उन्होंने, पता न चले।
महावीर की दूसरी मूलभूत धारणा है, जिसको शास्त्री, पंडित, व्याख्याकार ब्रह्मचर्य कहते हैं। वह महावीर का दूसरा बुनियादी तत्व है। ब्रह्मचर्य का उनके मन में अर्थ है अमैथुन, नॉन-सेक्सुअलिटी। अमैथुन उनका अर्थ है, कि महावीर किसी तरह के शरीर संबंध में, कामुक संबंध में नहीं बंधते हैं। स्त्री-त्याग, गृह-त्याग, समस्त शारीरिक संबंधों का त्याग, समस्त कामुकता का त्याग, यह उनका अर्थ है अमैथुन का।
यह फिर वही भूल, फिर वही बात, फिर वही नकार से चीजों को पकड़ना, निगेशन
से चीजों को पकड़ना। महावीर किसी को छोड़ते नहीं हैं--न स्त्री को, न शरीर को, न कामुकता को, महावीर किसी चीज को उपलब्ध होते हैं। आत्म-ऐक्य को, ब्रह्म-भाव को, सबके बीच स्वयं को अनुभव करने लगते हैं। तो जो स्वयं ही हो जाता है, उसके साथ मैथुन असंभव है। जब मैं ही हूं, सारा जीवन मेरा ही रूप है, जो आत्मा मेरे भीतर प्रवाहित हो रही है, वही दूसरे के भीतर भी प्रवाहित हो रही है। मैं ही हूं, जब यह भाव जीवन में प्रविष्ट होता है, तो भोग की संभावना समाप्त हो जाती है। भोग दूसरे का किया जा सकता है। सेक्स, काम का संबंध अन्य से हो सकता है, आत्म से नहीं, स्वयं से नहीं। उसके लिए पराए का

होना जरूरी है, उसके लिए दूसरे का होना जरूरी है। पुरुष का होना जरूरी है, स्त्री का होना जरूरी है।
लेकिन महावीर जब आत्म-ऐक्य को उपलब्ध होते हैं, न कोई स्त्री रह जाती है, न कोई पुरुष रह जाता है। वहां दो नहीं रह जाते, वहां दुई नहीं रह जाती। बुद्ध एक जंगल में बैठे थे। उस पास की राजधानी के कुछ युवक एक वेश्या
को पकड़ कर जंगल में ले आए। उन्होंने शराब पी ली है, नाच-गाना किया है। और वेश्या को सता रहे हैं, परेशान कर रहे हैं। उनको नशे में डूबा देख कर, जब वे ज्यादा नशा कर गए हैं, वेश्या भाग खड़ी हुई। जब उन्हें थोड़ा होश आया, तो उन्होंने खोजा कि वेश्या कहां गई! तो उसे खोजने निकले। तो खोजने निकले, जंगल में बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। चांदनी रात है, शायद वे किसी ब्रह्म-भाव में लीन होंगे। शायद वे न मालूम किस मैत्री की कामना में डूबे होंगे। न मालूम कौन सी शांति उनके भीतर प्रविष्ट हो रही होगी। उन लोगों ने जाकर बुद्ध को हिलाया और कहा, सुनते हैं जी! यहां से एक वेश्या, एक स्त्री तो भागी नहीं गई है? नग्न थी, क्योंकि कपड़े तो हमने उससे छीन लिए थे। यहां आपने देखा तो नहीं, हम उसे खोजने निकले हैं।
बुद्ध कहने लगे, कौन निकला, कौन नहीं निकला, कहना कठिन है। क्योंकि मैं इतना शांत था, क्योंकि मैं इतना शून्य था, क्योंकि मैं इतना मौन था, कि कौन सी लहर बाहर आई और गई, मुझे बताना कठिन है। लेकिन यह भी हो सकता है कि मुझे दिखाई पड़ जाता कि कोई निकला, तो यह कहना मुश्किल था कि वह कपड़े पहने है कि नंगा है। क्योंकि जब तक किसी को नंगे देखने की कामना न हो तब तक किसी को नंगा देखना बहुत मुश्किल है, चाहे वह नंगा ही क्यों न हो। और जब तक मन में किसी को नग्न देखने की कामना हो तब तक नग्न देखना बिल्कुल आसान है, चाहे वह वस्त्र ही क्यों न पहने हो। वस्त्र पहनने से किसी के नग्न सत्ता को देखने में कोई बाधा पड़ती है! कहीं वस्त्र किसी की नग्नता को रोक पाते हैं! बल्कि सच्चाई उलटी है, नग्न आदमी इतना नग्न कभी नहीं होता जितना वस्त्र पहन कर उसके शरीर की नग्नता प्रकट होने लगती है, जितना उघड़ कर शरीर प्रकट होने लगता है। वस्त्रों की ईजाद शरीर को छिपाने के लिए नहीं, उघाड़ कर प्रकट करने के लिए आदमी ने कर ली है।
अगर शरीर छिपाना हो तो कपड़े ढीले से ढीले होते चले जाएंगे। शरीर उघाड़
कर प्रकट करना हो तो कपड़े चुस्त से चुस्त होते चले जाएंगे। स्वभावतः! शरीर की नग्नता इतनी नग्न नहीं है जितनी वस्त्रों से प्रकट होकर नग्न और प्रखर और मुखर हो जाती है, बोलने लगती है। वस्त्रों ने आदमियों को, स्त्रियों को जितना नग्न किया है उतना किसी और चीज ने नहीं किया। नंगा आदमी इतना नंगा होता ही नहीं।
हो सकता है, तो बुद्ध ने कहा, कि मैं नहीं कह सकता। देख भी लेता तो पता लगाना मुश्किल था कि नग्न है कि वस्त्र पहने है, क्योंकि मेरे भीतर वह डिस्क्रिमिनेशन, वह पता लगाने का ख्याल जा चुका। जब से नग्न देखने की आकांक्षा गई तब से वह भी चला गया। फिर यह भी हो सकता है कि मैं यह भी देख लेता--दिन की रोशनी होती, खाली बैठा होता, दिखाई पड़ जाता--तो भी यह पता लगाना बहुत मुश्किल था कि वह स्त्री है या पुरुष है।
क्योंकि बाहर स्त्री दिखाई पड़ती है, यह भीतर के पुरुष को मिली हुई चुनौती के कारण। वह जो भीतर पुरुष है, वह बाहर की स्त्री से आंदोलित होता है, तो बाहर की स्त्री दिखाई पड़ती है। वह जो बाहर पुरुष दिखाई पड़ता है, तो वह जो भीतर स्त्री है वह जब आतुर, आकांक्षित होती है, तब बाहर का पुरुष दिखाई पड़ता है। यह पोलैरिटी है, ये एक विद्युत के दो टुकड़े हैं। एक हिस्सा भीतर आंदोलित होता है, तो दूसरा बाहर दिखाई पड़ता है। वह दूसरा बाहर चालित होता है। उसमें मूवमेंट शुरू होते हैं।
तो बुद्ध ने कहा, बहुत मुश्किल है। तुम किसी और से पूछो मित्रो, जो खोज-बीन तुम करने निकले हो, मैं उसमें साथी-सहयोगी नहीं हो सकता हूं। मुझे क्षमा करो! लेकिन एक बात जरूर तुमसे कह सकता हूं कि तुम कब तक दूसरे को खोजते रहोगे? अपने को खोजने की कोई इच्छा नहीं है? छोड़ो भी! किसकी खोज में निकल पड़े हो! इतनी देर में तो अपने को ही खोज ले सकते हो। इतनी तन्मयता से खोज, इतनी पागल दौड़, इस अंधेरे जंगल में भागना, खोजना--किसी और को, एक वेश्या को, एक स्त्री को--इतनी खोज में तो तुम अपने को ही खोज ले सकते हो।

और वेश्या को खोज कर क्या पा लोगे? इतना ही कि वह वेश्या व्यर्थ हो जाएगी और नई वेश्या खोजनी पड़ेगी। और उसको पाकर क्या पा लोगे? वह व्यर्थ हो जाएगी और नई वेश्या खोजनी पड़ेगी।
रोज हम यही कर रहे हैं। एक मकान खोजते हैं, वह व्यर्थ हो जाता है। फिर दूसरा खोजना पड़ता है। एक तिजोरी खोजते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है खोजते ही, फिर दूसरी तिजोरी, बड़ी तिजोरी खोजनी पड़ती है। एक देश जीत लेते हैं, जीतते ही व्यर्थ हो जाता है, फिर बड़ा देश जीतना पड़ता है।
तो बुद्ध ने कहा, मैं उसकी बात करता हूं अपने को ही खोज लो। उस खोज के बाद कोई खोज शेष नहीं रह जाती।
महावीर या बुद्ध या कृष्ण अमैथुन, नो-सेक्सुअलिटी को उपलब्ध नहीं होते। उनकी चेष्टा स्त्री से बचने की, इस शरीर से बचने की नहीं, उनकी चेष्टा आत्मा को फैलाने की विकसित करने की चेष्टा है। जितनी आत्मा फैलती है, आत्म-ऐक्य होता है, उतना ही काम, उतना ही सेक्स, उतनी ही भोग की कामना क्षीण और विलीन हो जाती है। पर, दूसरा, दि अदर जब मौजूद नहीं रह जाता, जब मैं ही विस्तीर्ण हो जाता हूं और फैल जाता हूं, तब कैसी वासना! तब कैसी कामना! तब प्रेम ही शेष रह जाता है, वासना नहीं शेष रह जाती। यह बड़े आश्चर्य की बात है, वासना के लिए पोलैरिटी चाहिए, ध्रुवता चाहिए। वासना के लिए दो चाहिए। दो न हों तो वासना संभव नहीं है। जितनी दूरी हो, वासना उतनी तीव्र होती है।
एक स्त्री और पुरुष को न मिलने दें। बीच में एक दीवार खड़ी कर दें। संतरी, पहरेदार लगा दें। फिर उनकी वासना जितनी तीव्र होगी उसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। यह दुनिया में जितनी सेक्सुअलिटी दिखाई पड़ रही है, इसीलिए कि स्त्री और पुरुष के बीच दीवार, बंदूक खड़ी है। बंदूक की वजह से दूरी, डिस्टेंस ज्यादा है। डिस्टेंस ज्यादा है तो खिंचाव ज्यादा है, खिंचाव ज्यादा है तो कामुकता ज्यादा है। एक आदमी अपनी प्रेयसी से जितना खिंचता है उतना अपनी पत्नी से नहीं खिंचता। पत्नी और उसके बीच कोई दीवार नहीं है, कोई फासला नहीं, कोई संतरी नहीं खड़ा, कोई पिता नहीं खड़े, कोई भाई नहीं खड़ा, कोई समाज नहीं खड़ा, कोई धर्मगुरु नहीं खड़े। छोड़ दिया समाज ने उनको, लाइसेंस दिया कि अब तुम एक हो जाओ, हम छोड़ते हैं तुमको। अब मजा गया, अब आकर्षण गया। पत्नी बेरस मालूम होती है, पति बेहूदा मालूम होता है, सब बोरडम मालूम होती है। कुछ मतलब नहीं। दूसरी स्त्री निकलती है सड़क से, आंखें चौंकती हैं, तेज हो जाती हैं। अपनी पत्नी को देख कर फीकी हो जाती हैं, ठंडी हो जाती हैं। वहां कुछ रस नहीं मालूम होता। पोलैरिटी टूट गई, फासला टूट गया।
वासना के लिए दूरी चाहिए, और प्रेम के लिए एकता चाहिए। प्रेम वहां होता है जहां दूरी मिट जाती है। वासना वहां होती है जहां दूरी तीव्र होती है, बड़ी होती है। तो वासना और प्रेम के सूत्र अलग हैं। प्रेम ब्रह्मचर्य पर ले जाता है, प्रेम आत्म-ऐक्य पर ले जाता है। तो महावीर का ब्रह्मचर्य अमैथुन नहीं है, महावीर का ब्रह्मचर्य ब्रह्म-भाव है।
लेकिन पीछे की व्याख्या कहती है कि महावीर का ब्रह्मचर्य अमैथुन है।
तो साधु-संन्यासी स्त्री को छोड़ते, आंख बंद करके बैठते, कि स्त्री न दिखाई पड़ जाए, स्त्री न छू जाए, उसका वस्त्र न छू जाए। स्त्री साध्वियां छोड़ती हैं पुरुषों को देखना, दर्शन, छूना, स्पर्श। स्त्री-पुरुष को छोड़ने से मजा यह है कि जितना स्त्री-पुरुष को छोड़िए उतनी दूरी बढ़ेगी, जितनी दूरी बढ़ेगी उतनी सेक्सुअलिटी बढ़ेगी। इसलिए साधु-संन्यासियों में जितनी सेक्सुअलिटी है, उतनी जमीन में किसी आदमी में नहीं होती। नहीं हो सकती है, होने का कारण टूट गया।
मैं एक साध्वी से मिल रहा था। समुद्र की हवाएं चलती थीं, समुद्र के किनारे हम बैठे थे। मेरे चादर को समुद्र की हवा उड़ा कर ले गई और साध्वी को छू गया। अब समुद्र की हवाओं को क्या पता कि एक स्त्री बैठी है, एक पुरुष बैठा है। समुद्र की हवाएं बड़ी निर्दोष, नासमझ। उनको धर्म का कोई ज्ञान नहीं है, उनको शास्त्रों का कोई पता नहीं है। कि स्त्री साध्वी को पुरुष का वस्त्र नहीं छूना चाहिए, इस किताब को शायद समुद्र की हवाओं ने नहीं पढ़ा होगा। अब समुद्र की हवा ले गई चादर को, जब तक मैं देखता-देखता चादर तो छू

गया है। अब मैंने कहा चादर छू ही गया है तो छू जाने दो, चादर को भी कोई पता नहीं शास्त्रों का। लेकिन साध्वी घबड़ाई। आत्मा की बात चलती थी, परमात्मा की बात चलती थी। बात खत्म हो गई, चेहरा बदल गया। मैंने पूछा, आप कुछ परेशान हो गईं अचानक! उन्होंने कहा, हां, पुरुष का वस्त्र नहीं छूना चाहिए। आपका वस्त्र मुझे छू गया। तो मैंने कहा, अभी तो आप कह रही थीं कि आत्मा ही सत्य है, शरीर माया है। लेकिन मालूम होता है, चादर आत्मा से भी ज्यादा सत्य है। शरीर माया है, चादर सत्य है! शरीर माया है, पुरुष सत्य है! और मेरा चादर क्या पुरुष हो गया मैंने ओढ़ लिया तो? और स्त्री ओढ़ लेती तो स्त्री हो जाता? बड़े मजे हैं।
हिंदू पानी होता है, मुसलमान पानी होता है, यह मुझे पहली दफा पता चला।
कि पुरुष चादर होती है, स्त्री चादर होती है। चादर सिर्फ चादर होती है। लेकिन वे कहने लगीं कि नहीं, पुरुष के चादर छूने से कामुकता के पैदा होने का डर होता है। मैंने कहा, वह डर पुरुष के चादर से नहीं होता। वह डर पुरुष से साधी गई दूरी के कारण होता है। जितनी दूरी साधी जाती है, उतना पुरुष का जरा सा संपर्क दूरी को तोड़ता है और भीतर छिपी वासना को प्रकट करता है। जितनी दूरी साधी जाती है जीवन से, उतनी ही जीवन के प्रति कामुकता विकसित होती है।
ब्रह्मचर्य चीजों का फासला नहीं साधता, चीजों के भीतर जो एक है उसको साधता है। सबके भीतर जो एक का विस्तार है, उसका अनुभव करता है, उसका स्मरण करता है, उसमें लीन होता है, उसका साक्षात करता है। और जिस दिन सबके भीतर एक का अनुभव शुरू होता है उस दिन जो घटना घटती है वह ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का संबंध अमैथुन से जरा भी नहीं है। ब्रह्मचर्य घटित होता है तो अमैथुन आता है, लेकिन अमैथुन का नाम ब्रह्मचर्य नहीं है। वह जैसा मैंने कहा प्रेम घटित हो तो अहिंसा आती है, ब्रह्मचर्य घटित हो तो अमैथुन आता है। लेकिन उलटी बात सच नहीं है, कि आपने अमैथुन साध लिया, आपने नो- सेक्सुअलिटी साध ली और आप ब्रह्मचारी हो गए।
तीसरी और अंतिम बात, वह भी ठीक ऐसी ही, क्योंकि वह तो हमारा जो हम इमेज बनाते हैं, उसके सीक्रेट वही हैं, महावीर का तीसरा सूत्र है, अपरिग्रह। सब छोड़ देना--घर, द्वार, धन-संपत्ति, वस्त्र भी--सब छोड़ देना। सब छोड़ने की इस अपरिग्रह भावना को बहुत जोरों से चिल्लाया गया कि महावीर अपरिग्रही हैं। यह वही गलती निरंतर चलती है। महावीर अपरिग्रही हैं, उन्होंने छोड़ा, इस बात में ही बुनियादी भूल हो गई। क्योंकि छोड़ वह समझ सकता है जो जानता हो कि यह मेरा है, छोड़ने के पीछे मेरे का भाव मौजूद है। मैं कहूं कि मैं यह चादर छोड़ता हूं, दो बातें तय हो गईं। पहली बात कि मैं मानता था कि चादर मेरी थी।
मेरी थी तो छोड़ सकता हूं, जो मेरी नहीं थी उसे छोड़ कैसे सकता हूं।
महावीर छोड़ते नहीं, यह अनुभव करते हैं कि मेरा तो कुछ भी नहीं है।
छोड़ने के पीछे, त्याग के पीछे तो अहंकार मौजूद होता है। मैं कहता हूं, यह मकान मैंने त्याग किया, यह मैंने मकान दान किया, यह धन मैं दान करता हूं।
मैं तो मौजूद हूं। जहां मैं मौजूद है, वहां दान कैसा! वहां त्याग कैसा! क्योंकि मैं की तो यह घोषणा है कि मैं पजेस करता हूं, मैं इसका मालिक हूं। दान करने वाला भी मालकियत नहीं छोड़ता, ओनरशिप नहीं छोड़ता। वह यह कहता है, मैं दान करता हूं, मालिक मैं हूं। लेकिन महावीर कहते हैं कि मैं मालिक नहीं हूं, इसका मुझे पता चल गया। मैं दान क्या करूं! मैं किस चीज का दान करूं! कोई मेरी चीज होती तो मैं दान करता। कोई मेरी चीज होती तो मैं बांट देता। कोई मेरी चीज होती तो मैं छोड़ देता। मैं तो इस अनुभव पर पहुंचा हूं कि मेरी कोई चीज नहीं। असल में मैं ही कुछ नहीं हूं, मेरी चीज कुछ नहीं है। तो मैं कैसे दान, कैसा त्याग, कैसा अपरिग्रह!
लेकिन ढाई हजार साल से यह समझाया जा रहा हैः अपरिग्रह! छोड़ो! पता नहीं हमें कि छोड़ने के पीछे मेरे होने का भाव मौजूद है।
एक संन्यासी से मुझे बात होती थी, वह मुझसे कहते थे कि मैंने लाखों रुपए पर लात मार दी। मैं हैरान हो गया। मैंने कहा, यह लात कब मारी? वह कहने लगे, कोई तीस साल हो गए। मैंने कहा, तीस साल हो गए! तो फिर लात ठीक से लग नहीं पाई। कहने लगे, क्यों? मैंने कहा, इसलिए कि तीस साल तक फिर उसकी याद कैसे रह सकती थी! याद अब तक बनी है। याद ओनरशिप है। स्मृति इस बात की गवाही

है कि मैं मालिक था तीस साल पहले। और मेरी मालकियत की ही हैसियत से मैंने त्यागा। उस त्याग में मेरी मालकियत मौजूद थी। उस त्याग के बाद भी मौजूद है। मैं त्यागी हूं अब भी कि मैंने उन्हें छोड़ा था। मालकियत खत्म नहीं हुई।
महावीर मालकियत नहीं देखते हैं जीवन में। कोई मालिक नहीं है, कोई मालिक नहीं है। इसलिए कैसा परिग्रह, कैसा अपरिग्रह! कैसा जोड़ना, कैसा त्यागना! अपरिग्रह परिग्रह की ही छाया है। त्याग संग्रह की ही छाया है। लेकिन महावीर कहते हैं, न संग्रह, न परिग्रह है, न अपरिग्रह है, न त्याग, मेरा कुछ भी नहीं है। यह भाव, यह बोध, यह समझ, यह गहराई जब जीवन में उपलब्ध होती है... ।
अहिंसा, अमैथुन, अपरिग्रह, ये तीन गलत शब्द गलत इमेज पैदा करते हैं। प्रेम, ब्रह्म-भाव, अहंकार-शून्यता, मैं नहीं हूं, मेरा कुछ नहीं है, ये महावीर की ठीक प्रतिमा को उपस्थित करते हैं। और ठीक प्रतिमा दिखाई पड़े तो उस प्रतिमा के कारण हमारे मन में भी, जीवन में भी एक नया आंदोलन, एक नई दृष्टि, एक नया दर्शन शुरू हो सकता है। हम एक नई यात्रा पर निकल सकते हैं। तो मैं प्रार्थना करता हूं, अग्निपूजक मत बने रहें। पूजा का धर्म से कोई संबंध नहीं। अग्नि के उपभोक्ता बनें, कंज्यूमर्स! अग्नि को जलाएं, घर को रोशन करें, रोटी बनाएं। मकान को गर्म करें, दीया जलाएं, अंधेरे रास्तों पर रोशनी करें--अग्नि के उपभोक्ता बनें। धर्म के भी पूजक नहीं, धर्म के भी उपभोक्ता, कंज्यूमर्स, धर्म को भी पी जाएं घोल कर, रोटी बनाएं, खाएं उसे। जीएं, श्वास-श्वास में पीएं और जीवन में उसको फैलने दें। धार्मिक लोग चाहिए दुनिया में, धर्म-पूजक नहीं। धार्मिक जीवन चाहिए, धर्म-मंदिर नहीं। धर्म-चेतना चाहिए, धर्म-शास्त्र नहीं। धार्मिकता चाहिए--धार्मिकता--लेकिन धर्म नहीं। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई नहीं।
महावीर न तो जैन हैं, मोहम्मद न मुसलमान हैं, जीसस क्राइस्ट न क्रिश्चियन हैं, राम न हिंदू हैं, लेकिन हमारी नासमझी, मूढ़ता के कारण हमने घेरे बना रखे हैं। महावीर किसी घेरे में हो सकते हैं? राम किसी घेरे में हो सकते हैं? क्राइस्ट किसी घेरे में हो सकते हैं? लेकिन हम, हम जो घेरों को प्रेम करने वाले लोग हैं, न केवल हम अपना घेरा बनाते हैं, हम उनको भी घेर कर खड़े हो जाते हैं। इसकी वजह से सारी मनुष्य-जाति सारे मनुष्य-जीवन के जो अनुभव थे उनसे जितनी लाभान्वित हो सकती थी, सारे जीवन के जो संपदा प्रसून थे, जो फूल थे सुगंध वाले, उनसे जितनी लाभान्वित हो सकती थी, नहीं हो सकी। हमारे दायरे तोड़ दें! धार्मिक व्यक्ति का कोई दायरा नहीं है, कोई मंदिर नहीं है, कोई पूजा नहीं है। धार्मिक व्यक्ति का तो एक जीवन जीने का ढंग है, फिलासफी ऑफ लाइफ, जीवन को जीने का एक दर्शन है। जीवन को जीने के दर्शन में तीन सूत्रों पर ध्यान रखें और तीन गलत सूत्रों को विस्मरण करें।
अहिंसा विस्मरण करें, प्रेम को स्मरण करें। प्रेम विधायक है, अहिंसा नकारात्मक। प्रेम--सर्वभाव, सर्वमंगल। अहिंसा--निषेध, अहंकार। अमैथुन भूलें, ब्रह्म-भाव, ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का मतलब ही यह होता है कि ईश्वर जैसी चर्या, ईश्वर जैसा जीवन। ईश्वर जैसे जीवन का अर्थः एक अद्वैत भाव। सबके भीतर जो एक है उसकी प्रतीति और अनुभूति। अमैथुन का भाव छोड़ें, अमैथुन की शिक्षा ने हिंदुस्तान को कामुक बनाया।
आज जमीन पर हमारी कौम से ज्यादा कामुक कोई कौम नहीं है। आज हमसे ज्यादा मैथुन की भाषा में सोचने वाले लोग नहीं हैं। हमारी कविताएं, हमारी किताबें, हमारे उपन्यास, हमारी फिल्में, हमारा उठना-बैठना, हमारा बोलना, सोचना, हमारे ढंग, सारे के सारे सेक्सुअलिटी से भरे हैं। और हमने अमैथुन की शिक्षा दी। हमने अहिंसा की शिक्षा दी। और हमसे ज्यादा हिंस-भाव और हमसे ज्यादा कायर लोग कहां हैं! हमसे ज्यादा मृत्यु से डरने वाले लोग कहां हैं! जिसके जीवन में प्रेम होगा वह कायर नहीं होगा। जिसके जीवन में प्रेम होगा वह मृत्यु से भयभीत नहीं होगा। जिसके जीवन में प्रेम होगा उसका जीवन तो एक सर्व समर्पण की निरंतर प्रक्रिया होगी।

महावीर या महाविनाश
नौवां प्रवचन

सत्य का अनुसंधान

मेरे प्रिय आत्मन्,
भगवान महावीर की पुण्य-स्मृति में थोड़े से शब्द आपसे कहूंगा तो मुझे आनंद होगा। सोचता था, क्या आपसे इस संबंध में कहूं! महावीर के संबंध में इतना कहा जाता है, इतना आप जानते होंगे, इतना लिखा गया है, इतना पढ़ा जाता है। लेकिन फिर भी कुछ दुर्भाग्य की बात है, जो ऐसे व्यक्ति पैदा होते हैं जिन्हें हमें जानना चाहिए, उन्हें हम करीब-करीब जानने से वंचित रह जाते हैं। उनसे हम परिचित नहीं हो पाते। और उनके अंतस्तल को भी हम नहीं देख पाते। पूजा करना एक बात है। आदर देना एक बात है। श्रद्धा से स्मरण करना एक बात है। लेकिन ज्ञान से, समझ से, विवेक से जान लेना, पहचान लेना बड़ी दूसरी बात है। महावीर की पूजा का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य है महावीर को समझने का।
लेकिन दुनिया पूजा करती है और समझने की कोई चिंता नहीं करती। यह हमारी तरकीब है अपने आप को धोखा देने की। समझने से बचना चाहते हैं, इसलिए पूजा करके निपट जाते हैं। आदर देकर बच जाते हैं, नहीं तो अपने को बदलने की तैयारी करनी पड़ेगी। जो अपने को नहीं बदलना चाहता वह पैर छूकर झंझट छुड़ा लेता है। और दुनिया में सारे लोगों ने इस तरह की मानसिक तरकीबें, आत्म-वंचनाएं विकसित कर ली हैं जिनके द्वारा हम पूजा भी करते जाते हैं, याद भी करते जाते हैं, और ठीक उन्हीं के विपरीत जीवन भी जीते चले जाते हैं।
यह इतनी आश्चर्यजनक घटना है। इससे बड़ा और कोई चमत्कार इस दुनिया में नहीं हो सकता। स्मरण करते हैं महावीर का, जीते हैं ऐसा जीवन जो महावीर के बिल्कुल विपरीत होगा। और ऐसा भी नहीं है कि यह बहुत सचेतन रूप से जान कर हो रहा हो। अनजाने हम समझने से वंचित रह जाते हैं।
तो मैंने ठीक समझा कि इस संबंध में कुछ आपसे बात करूं, कि महावीर के हृदय को समझना आपको आसान हो जाए। उनके हृदय की थोड़ी सी भी झांकी आपको मिल सके। उनके जीवन से कोई वास्ता नहीं है। वे कहां पैदा हुए, किसके घर में पैदा हुए, ये सब सांयोगिक बातें हैं। कहीं भी पैदा हो सकते हैं। किसी के भी घर में पैदा हो सकते हैं। कोई भी दिन पैदा हो सकते हैं। कोई भी वर्ष पैदा हो सकते हैं। ये सब बहुत मूल्य की बात नहीं हैं। मूल्य की बात यह है कि उनके हृदय में क्या हुआ कि वे यह निश्चित रूप से कह सके और अनुभव कर सके कि मैंने आनंद को और ज्ञान को उपलब्ध कर लिया है। आश्वस्त हो सके कि जीवन का जो लक्ष्य है वह आ गया। निर्णीत रूप से यह अनुभव कर सके कि जो भी जानने जैसा है वह मैंने जान लिया है। वह कौन सी घटना उनके भीतर घटी और कैसे घटी, उस क्रांति से वे कैसे गुजरे, उनके हृदय की कुछ थोड़ी सी बातें आपसे कहना चाहूंगा।
सबसे पहली बात जो मुझे दिखाई पड़ती है, वह यह--और वह हममें से बहुत कम लोगों को दिखाई पड़ती है, और जब किसी को दिखाई पड़ जाती है उसका जीवन कुछ और हो जाता है--सबसे पहली बात महावीर के संबंध में विचार करें तो दिखाई पड़ती हैः वे बहुत सुख में थे, बहुत सुविधा में थे, बहुत संपत्ति में थे। किसी तरह की असुविधा उन्हें नहीं थी। किसी प्रकार का कष्ट उन्हें नहीं था। किसी प्रकार की चिंता का कोई कारण नहीं था। कोई दरिद्रता में, दीनता में, अस्वास्थ्य में, बीमारी में, रुग्णता में वे नहीं थे। स्वस्थ थे, संपत्ति के बीच थे, सुख और सुविधा के बीच थे।
फिर क्या कारण इस सारी व्यवस्था के बीच उनके चित्त में बना कि यह सारी व्यवस्था उन्हें तृप्त न कर पाई, कुछ और खोज उनके भीतर पैदा हो गई? जब कोई भी कष्ट न था तो फिर कौन सा दुख था जिसके कारण वे सत्य की, स्वयं की या आत्मा की खोज में गए होंगे? और अगर इस बिंदु पर विचार करेंगे तो एक बहुत सूक्ष्म भेद जो मैं करना चाहूंगा वह यह कि कष्ट और दुख अलग बातें हैं। एक आदमी हो सकता है बिल्कुल कष्ट में न हो और दुख में हो। कष्ट और दुख एक ही बात नहीं हैं।

महावीर किसी कष्ट में नहीं थे, लेकिन जरूर किसी दुख में थे। अगर दुख न होता तो कोई खोज की बात पैदा नहीं होती थी; किसी आत्मा की तलाश में, साधना में जाने का कोई कारण नहीं रह जाता था। तो आपसे मैं यह कहूं, आप में से बहुत लोगों ने कष्ट का अनुभव किया होगा, ऐसे सौभाग्यशाली कम हैं जो दुख का अनुभव करते हैं। और जो दुख का अनुभव करता है वह सत्य की खोज में अनिवार्यरूपेण चला जाता है। कष्ट का अनुभव समस्त लोग करते हैं, दुख का अनुभव बहुत थोड़े लोग करते हैं। आप कष्ट को ही दुख समझ लेते हैं तो भ्रांति हो जाती है। कष्ट दुख नहीं है। इसे थोड़ा समझाऊं तो फिर कुछ और आगे उनके हृदय में प्रवेश आसान हो जाएगा, क्योंकि यह बुनियादी बात है। अगर यह समझ में न आए तो फिर हम महावीर में प्रवेश नहीं कर सकते। उनके हृदय के फिर और पर्दे नहीं उठाए जा सकते हैं।
कष्ट का क्या अर्थ है? कष्ट का अर्थ है कोई शारीरिक असुविधा, कोई भौतिक असुविधा। दुख का यह अर्थ नहीं है। एक आदमी भूखा है तो कष्ट में है, एक आदमी नंगा है तो कष्ट में है, एक आदमी बीमार है तो कष्ट में है। यह दुख नहीं है। और जब कोई कष्ट में होता है तो उसकी खोज सुख के लिए होती है, उसकी खोज सत्य के लिए नहीं होती। जो आदमी कष्ट में है वह सुख का अनुसंधान करेगा, वह सुख को खोजेगा, क्योंकि कष्ट सुख से मिट जाता है। कष्ट, असुविधा सुविधा के जुड़ने से मिट जाती है। कष्ट की अनुभूति अगर चित्त में है तो हमारी खोज सुख के लिए होगी।
लेकिन जब सुख व्यक्ति को मिलता है, कष्ट कोई भी नहीं रह जाता, सुख सब उपलब्ध हो जाते हैं, तब पहली दफा उसे दर्शन होता है कि कष्ट बहुत बाहरी कष्ट था, एक और कष्ट भी है अंतस में जिसका नाम दुख है। वह सुख के बाद अनुभव होना शुरू होता है। जब सब सुख पास होते हैं और फिर भी दिखाई पड़ता है कि मैं रिक्त हूं, खाली हूं, अधूरा हूं, अज्ञान में हूं। सारा सुख बाहर होता है, फिर भी भीतर लगता है जीवन में कोई अर्थ नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। सब सुख बाहर होता है, फिर भी भीतर अनुभव में आता है कि इस तरह जीते चले जाने में कोई भी कारण नहीं है। इस जीने का कोई प्रयोजन नहीं है, कोई अभिप्राय नहीं है। एक मीनिंगलेसनेस मालूम होती है, एक अर्थहीनता मालूम होती है। तब दुख का जन्म होता है।
कष्ट और दुख में भेद है। कष्ट भौतिक असुविधा है, दुख आत्मिक पीड़ा है। दुख है एक आंतरिक पीड़ा। इसलिए कष्ट को तो सुविधाएं जुटा कर मिटाया जा सकता है, लेकिन दुख को सुविधाएं जुटा कर नहीं मिटाया जा सकता। कितनी ही सुविधाएं हों दुख उससे समाप्त नहीं होता है। दुख समाप्त नहीं हो सकता, क्योंकि दुख आंतरिक पीड़ा है।
सुख से दुख नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि सुख बाह्य उपलब्धि है, बाह्य संपत्ति है और दुख आंतरिक पीड़ा है। जो आंतरिक पीड़ा है वह बाहर की किसी भी व्यवस्था से नष्ट नहीं हो सकती है। बाहर हम सब इकट्ठा कर लेंगे और भीतर दुख का घाव वैसा का वैसा बना रहेगा, बल्कि जितना बाहर इकट्ठा होता जाएगा उतना वह घाव तीव्र रूप से दंश देने लगेगा। क्योंकि कष्ट कम हो जाएंगे और ध्यान एकदम दुख पर जाने लगेगा। जिनके पास कष्ट बहुत हैं उन्हें दुख का दर्शन नहीं हो पाता। कष्ट में ही उलझा हुआ चित्त रह जाता है और दुख के दंश का बोध नहीं होता।
महावीर के पास सब सुख था इसलिए दुख का दर्शन हो सका। जरूरी नहीं है कि सभी लोगों के पास जब सब सुख हों तभी उन्हें दुख का दर्शन हो। जो जानते हैं, विचार करते हैं, विवेक करते हैं, वे केवल विचार के मार्ग से भी इस सत्य को अनुभव कर सकते हैं कि मैं कितने ही सुख उपलब्ध कर लूं, मेरा दुख उससे समाप्त नहीं होगा। लेकिन हम सारे लोगों की दौड़ ही यह होती है कि हम सुख इकट्ठा कर लें ताकि दुख नष्ट हो जाए। इससे ज्यादा गलत और कोई दौड़ नहीं हो सकती।
एक बादशाह हुआ। एक छोटे से राज्य का राजा था। रात को उसने देखा कि उसके भवन की खपरैल पर कोई चल रहा है। वह सोया हुआ है। खपरैल पर किसी को चलते हुए देख कर उसे लगाः क्या? कौन पागल है? और राजा के भवन पर ऊपर खपरों पर चलता है आधी रात में, अंधेरी रात में! उसने चिल्ला कर पूछा कि कौन है ऊपर?

ऊपर से एक आवाज आई कि मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं।
उस राजा ने कहा, कोई पागल मालूम होते हो। ऊंट खो गया हो तो मकानों की छतों पर खोजा जाता है? और खोया हुआ ऊंट किसी की छप्पर पर मिलेगा? कौन हो, नीचे आओ!
उस आदमी ने कहा, अगर मैं पागल हूं तो मैं तुम्हें भी बता दूं तुम भी कुछ कम पागल नहीं हो। धन में, सिंहासन में और राज्य में कहीं सुख मिलता है! और अगर धन में कोई सुख खोजता हो तो फिर किसी के छप्पर पर ऊंट खोजने में कोई असंगति नहीं है।
राजा भागा हुआ बाहर आया, कौन था यह आदमी! बहुत खोजा, वह आदमी मिला नहीं। लेकिन उस रात राजा का एक सपना टूट गया। उस रात उसकी नींद ही नहीं टूटी उस ऊपर चलने वाले आदमी से, उसकी और भी गहरी नींद टूट गई। रात उसे खोजा, वह नहीं मिला। सुबह राजा को खोजा, राजा भी नहीं मिला। वह महल में वह आदमी तो मिला ही नहीं जिसने रात यह कहा था, सुबह लोगों ने खोजा, राजा भी महल में नहीं था। वह लिख कर रख गया था कि मेरी समझ में आ गया कि छप्पर पर ऊंट नहीं मिल सकता तो संसार में सुख नहीं मिल सकता है।
महावीर को भी ऐसा दिखाई पड़ा। जिनके पास भी आंखें हैं, उन्हें यह दिखाई पड़ेगा। और इस दिखाई पड़ने में कोई बड़ी सूक्ष्म, कोई बहुत बड़ी गहरी तार्किक या कोई बड़ी बौद्धिक बात नहीं है। थोड़ी भी आंख खुली हो और होश हो तो यह हम सबको दिखाई पड़ना ही चाहिए। यह इसलिए दिखाई पड़ना चाहिए कि इसके राज को थोड़ा समझने की जरूरत है।
हम सारे लोग ही सुख को खोजते हैं। ऐसा मनुष्य जमीन पर पैदा नहीं होता
जो सुख को न खोजता हो। सभी सुख को खोजते हैं और सभी कष्ट से और पीड़ा से बचना चाहते हैं। सभी दुख से बचना चाहते हैं। हमारे प्राण का कुछ स्वभाव ऐसा होगा। हमारी कुछ आत्मा की, बहुत स्वरूप की आकांक्षा ऐसी होगी कि हम दुख से बचना चाहते हैं और सुख की आकांक्षा करते हैं।
महावीर में और हममें या किसी और में इस बात में कोई भेद नहीं है कि हम सुख को खोजना चाहते हैं। लेकिन भेद एक सीमा पर शुरू हो जाता है कि जिस दिशा में हम सुख को खोजना चाहते हैं, एक सीमा पर हम पाते हैं कि महावीर उस राजपथ को छोड़ कर किसी अकेली पगडंडी पर चल पड़े। जिस पर हम सारे लोग चल रहे हैं राजपथ पर सुख की खोज में, इक्का-दुक्का लोग कभी-कभी उस राजपथ से नीचे उतर जाते हैं और जंगल में अकेले भटकने लगते हैं। इस तथ्य को देखना जरूरी है कि एक सीमा तक हम सारे लोग सुख खोजते हैं, लेकिन इस सुख की खोज के मार्ग पर कुछ लोग रास्ता नीचे छोड़ देते हैं और अकेली पगडंडियों पर चले जाते हैं। ये लोग कुछ अदभुत हमें मालूम पड़ते हैं, इसलिए हम इनकी पूजा करते हैं। ये कुछ बड़े अजीब मालूम पड़ते हैं, इसलिए इनका आदर करते हैं और लंबे समय तक स्मरण रखते हैं। लेकिन पूछना जरूरी यह है कि क्या यह राजपथ जिस पर हम सब हैं गलत है? अगर महावीर सही हैं तो यह राजपथ गलत होना चाहिए जिस पर हम हैं।
इसको स्मरण रखें। अगर महावीर को सही मानते हैं तो अपने को गलत मानना
ही होगा, और कोई उपाय नहीं है। और या फिर अपने को सही मानते हों तो महावीर का पीछा छोड़ देना चाहिए, वे फिर गलत होंगे। ये पगडंडी से जो लोग उतर जाते हैं, राजपथ से भटक जाते हैं, या तो ये लोग गलत हैं, एकबारगी इन्हें हटा देना चाहिए मन से। तो इनसे छुटकारा हो जाए। इनकी स्मृति से, इनकी याद से, हजारों वर्षों तक इनके ख्याल से हम मुक्त हो जाएं। और या फिर दूसरे तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि यह जो राजपथ पर भीड़ चल रही है, यह जरूर कुछ गलत होगी। क्योंकि इस भीड़ में सारे लोगों का आदर और सम्मान उन लोगों को मिलता है जो कि इस भीड़ के पथ को छोड़ कर किनारे पर हट जाते हैं।
उनके जीवन में जो क्रांति होती है, वह क्या है? आखिर हम भी सुख को चाहते हैं, महावीर भी सुख को चाहते होंगे। दुख को चाहने वाला तो कोई पैदा नहीं होता। तो फिर क्या घटना घट जाती है कि जिस पथ पर हम खोजते हैं उससे महावीर हट जाते हैं? उन्हें एक तथ्य का दर्शन हो जाता है कि सुख की कोई भी खोज दुख को मिटाने में असमर्थ है। और भी इससे गहरे में उन्हें एक दर्शन होता है कि जिसे हम सुख जानते हैं वह दुख का ही छिपा हुआ रूप है, वह सुख भी नहीं है। जिसे हम सुख जानते हैं वह दुख का ही छिपा हुआ रूप है, वह सुख भी नहीं है। यह भी कभी हमने विचार नहीं किया होगा। हमने सुख अनुभव किए हैं,

दुख अनुभव किए हैं। लेकिन हमने विचार नहीं किया होगा कि ये सुख और दुख जिन्हें हम सुख और दुख करके जानते हैं, इनमें फर्क क्या है? कोई फर्क है या नहीं है फर्क?
क्या आपको ज्ञात है कि सुख और दुख में कोई बुनियादी एकता है? दोनों के भीतर कोई एक ही सूत्र पिरोया हुआ है? एक छोर पर सुख है, दूसरे छोर पर दुख है, दोनों भीतर से कहीं जुड़े हैं, यह आपको शायद ख्याल में न आया हो। लेकिन यह ख्याल में आ सकता है। दो-तीन बिंदुओं पर विचार करेंगे तो यह ख्याल में आ सकता है।
पहला तो यह कि कोई भी सुख दुख में परिवर्तित हो सकता है और कोई भी दुख सुख में परिवर्तित हो सकता है। और परिवर्तन दो चीजों में तभी हो सकता है जब स्वरूप में उन दोनों में समानता हो, नहीं तो परिवर्तन नहीं हो सकता। पानी भाप बन सकता है, भाप पानी बन सकती है; बर्फ पानी बन सकता है, पानी बर्फ बन सकता है। क्यों? क्योंकि मूलतः पानी, भाप और बर्फ एक ही चीज की अवस्थाएं हैं, इसलिए उनमें परिवर्तन हो सकता है। दो विरोधी चीजों में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। दो विरोधी चीजों में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई एक्सचेंज नहीं हो सकता। वे स्थितियां आपस में बदल नहीं सकती हैं। जिनका भी परिवर्तन होता है वे एक ही चीज के दो रूप होते हैं।
क्या आपको ख्याल है, जिस सुख से आप परिचित हो जाते हैं वह धीरे-धीरे दुख हो जाता है? क्या कभी आपने विचार किया है कि जिस सुख को हम पा लेते हैं, पाते क्षण जो सुख मालूम होता है थोड़े ही दिन बीतने पर वह सुख नहीं रह जाता और बहुत ज्यादा दिन बीत जाने पर दुख भी हो सकता है? बहुत ज्यादा दिन बीत जाने पर दुख हो सकता है--वही सुख! क्या आपको पता है कि बहुत सुख की तीव्रता में किसी की मृत्यु भी हो सकती है!
और निश्चित ही, मृत्यु कोई सुख नहीं होगी। बहुत सुख का आवेग हो तो आदमी का हृदय भी बंद हो सकता है चलना। सुख भी इतनी गहरी अशांति है कि अगर उसकी मात्रा ज्यादा हो तो प्राण ले सकती है। और क्या आपको यह भी ख्याल है कि जो चीज थोड़ी मात्रा में सुख देती है, थोड़ी मात्रा और बढ़ाएं, एक सीमा पर जाकर दुख शुरू हो जाएगा?
जो भोजन प्रीतिकर लगता है, उसे सीमा के बाहर करते चले जाएं, आप पाएंगे
कि वही भोजन अप्रीतिकर हो गया; और ज्यादा किए चले जाएं, पाएंगे दुख हो गया; और ज्यादा किए जाएं, पाएंगे कि मृत्यु का कारण हो गया। तो जो शुरू में सुख था वह थोड़ी देर बाद अप्रीतिकर हुआ और दुख हो गया और थोड़ी देर बाद मृत्यु बन सकता है। तो यह तो एक ही चीज का विकास हुआ, ये कोई दो चीजें न हुईं।
सुख और दुख दो अलग-अलग बातें नहीं हैं जैसा हम उन्हें जानते हैं, वरन
वे एक ही चीज की तारतम्यताएं हैं, एक ही चीज की अलग-अलग क्रमिक स्थितियां हैं। और इसलिए यह भी हो जाता है कि जिसे हम दुख की तरह जानते हैं पहली दफा, अगर उसमें ही हमें रहना पड़े तो थोड़े दिनों में वह दुख नहीं रह जाता, हम उसके आदी और परिचित हो जाते हैं। यहां तक हो सकता है कि हम इतने आदी और परिचित हो जाएं कि वह सुख हो जाए।
मैं एक छोटी सी कहानी जगह-जगह कहता रहा। सीरिया के किन्हीं प्रांतों में एक छोटी सी कहानी प्रचलित है। एक छोटे से गांव में एक बड़ी सुंदर बगिया है, एक मालिन है। खूब फूलों में उसके गंध है। और उसकी एक सहेली एक दिन बाजार में अपना सामान बेचने आई है। वह मछलियां बेचती है। दोनों बचपन में एक ही गांव में पली थीं। बाजार में मिलना हो गया। तो उस मालिन ने मछली बेचने वाली स्त्री को कहा कि आज तुम वापस मत लौटो। पूर्णिमा की रात है, मेरे झोपड़े में रुक जाओ। सुबह चली जाना। बहुत दिन बाद मिलना हुआ था इसलिए वह मछली बेचने वाली औरत मालिन के घर रात रुक गई।
मालिन यह सोच कर कि बहुत दिनों बाद मेरी सहेली आई है, उसने बहुत सारे फूल तोड़े और जहां वह मछली बेचने वाली औरत को सुलाया उसके चारों तरफ फूल बिछा दिए। उस दरवाजे पर उसे सुलाया जिसके करीब से फूलों की गंध बगिया के भीतर आती थी। लेकिन मछली बेचने वाली औरत करवट बदलने लगी। उसे नींद आना कठिन हो गया। वह सुगंध जो थी उसे कष्टप्रद थी, बिल्कुल अपरिचित थी, अनजान थी। रात जब आधी बीतने लगी मालिन ने कहा, ज्ञात होता है कोई पीड़ा है, कोई परेशानी है, नींद नहीं आती?

उसने कहा, कोई भी पीड़ा नहीं है, कोई भी परेशानी नहीं है। ये फूल तकलीफ दिए दे रहे हैं। ये फूल हटा दो, दरवाजा बंद कर दो। और जिस टोकरी में मैंने मछलियां बेची हैं उसे उठा लाओ, उस पर थोड़ा पानी छिड़क दो, मेरे पास रख दो। थोड़ी मछलियों की गंध आएगी तो शायद मुझे नींद आ जाए। तो टोकरी पर पानी छिड़क दिया गया और टोकरी रख दी गई। फूल हटा दिए गए। और द्वार बंद कर दिया गया। थोड़ी देर में उसने घर्राटे की सांस लेनी शुरू कर दी और वह गहरी नींद में चली गई। मछलियों की गंध सुखद हो गई थी निरंतर आदत, निरंतर निकटता से। और फूलों की गंध दुखद थी, अपरिचय के कारण, अनजान होने के कारण। उसका आघात नया था, तीव्र था और वेदना देता था।
हम भी अपने बहुत से कष्टों से धीरे-धीरे परिचित हो जाते हैं।
क्या आपको पता है, जो आदमी पहली दफा सिगरेट पीता है उसमें कोई सुख होता है? पहली घटना दुख की होती है। ऐसा एक भी मूर्ख इस जमीन पर नहीं है जो सिगरेट पीए और पहली घटना सुख की हो जाए। जो आदमी पहली दफा शराब पीता है, आप सोचते हैं, पहली घटना सुख की होती है? पहली घटना तिक्त कड़वाहट की, दुख की होती है। लेकिन निरंतर उसके प्रयोग से धीरे-धीरे जो दुखद था वह सुखद हो जाता है। उसे छोड़ना कठिन हो जाता है। क्या आपको ज्ञात है कि बहुत से कष्ट हमने इसी भांति सुख बना लिए हैं और बहुत से दुखों को परिचय से हमने सुख में परिवर्तित कर लिया है? फिर क्या आपको यह पता है कि जो चीज आज सुख देती है कल वही दुख दे सकती है?
मेरे एक मित्र हैं। कोई आठ-दस वर्ष पहले उनके पास लाख या डेढ़ लाख रुपए थे, वे बहुत खुश थे। काफी था उनके पास, अकेले हैं, कोई बच्चा नहीं है। बहुत था, तृप्त थे। फिर दुर्भाग्य से संपत्ति बढ़नी शुरू हुई। संपत्ति उनके पास ज्यादा हो गई। अब फिर सौभाग्य से संपत्ति कम हुई और वे फिर डेढ़ लाख के करीब आकर रुक गए। डेढ़ लाख पर दस वर्ष पहले वे खुश थे, डेढ़ लाख पर आज बहुत दुखी हैं। डेढ़ लाख की संपत्ति वही की वही है। एक दिन डेढ़ लाख उनके लिए बहुत थे। फिर उनके पास पांच लाख हो गए, तो डेढ़ लाख ना-कुछ हो गए। अब फिर कुछ रुपए खो गए, डेढ़ लाख बच गए। अब वे बहुत दुखी हैं। तो मैंने उनसे कहा, मैं कुछ परेशान हूं, डेढ़ लाख सुख देते थे दस साल पहले, वही डेढ़ लाख कष्ट देते हैं। डेढ़ लाख सुख देते हैं कि दुख देते हैं? हमारे देखने का कोण है, हमारी देखने की दृष्टि है। जिस चीज में आज सुख लेती है, कल उसी चीज में दुख ले सकती है।
एक नए मकान में कोई व्यक्ति जाए। नया मकान बड़ा सुख देता है। लेकिन क्या उसे पता है कि जिस पुराने में वह पहली दफा गया था तब वह नया था और उसने सुख दिया था! और क्या उसे पता है कि जिस पुराने को वह छोड़ कर आया है, कल यह नया भी पुराना हो जाएगा! यही का यही मकान होगा और कल यह पुराना हो जाएगा। और तब दूसरा नया सुख देगा। हम जिन चीजों से सुख लेते हैं उन्हीं से दुख ले लेते हैं, जिन से दुख लेते हैं उन्हीं से सुख ले लेते हैं। तो सुख और दुख में कोई बहुत बुनियादी भेद नहीं हो सकता। वे कुछ एक ही सिक्के के दो पहलू होंगे। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
मेरी दृष्टि में महावीर को यह दिखाई दिया और जिसके पास भी आंख होगी उसे यह दिखाई देगा। और यह जैसे ही दिखाई देगा उसे यह ख्याल में आ जाएगा कि दुख भी एक अशांति है। चित्त विह्वल हो जाता, चित्त उद्वेलित हो जाता है। चित्त कंपने लगता है, पीड़ा से भर जाता है। कंपन और आंधी चित्त पर आ जाती है। और सुख भी एक अशांति है, वहां भी चित्त कंप जाता है। वहां भी कंपन आ जाता है। एक अशांति वहां भी आ जाती है। फर्क क्या है? जिस अशांति को हम प्रीतिकर मानते हैं वह सुख मालूम होती है और जिस अशांति को हम अप्रीतिकर मानते हैं वह दुख मालूम होती है। दोनों अशांतियां हैं। न तो दुख और न सुख, दोनों ही शांति नहीं हैं। दोनों का ही रूप अशांति का है। फिर जिसकी तरफ हमारी दृष्टि होती है कि यह प्रीतिकर है... ।
एक गांव में एक रात संध्या को एक आदमी आया। उसने अपना घोड़ा बांधा और
सो गया। ऐसा कुछ घोड़ा था उसके पास कि दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। चोर उस घोड़े के पीछे लगे थे। बड़े-बड़े राजा और बड़े-बड़े सम्राट उत्सुक थे कि घोड़ा उनका हो जाए। रात वह सवार सोया। सुबह उसने देखा घोड़ा नदारद है, घोड़ा वहां नहीं है।

आप होते तो क्या करते? कोई भी होता तो क्या करता? लेकिन वह आदमी दौड़ा
और गांव के लोगों ने देखा उसकी खुशी का अंत नहीं है, वह गांव में गया। उसने जितनी मिठाई मिल सकती थी खरीदी और सारे गांव में प्रसाद बांटा।
लोगों ने पूछा, क्या खुशी की बात हो गई है? कैसे पागल हुए जा रहे हो?
उसने कहा, रात मेरा घोड़ा चोरी चला गया। उसकी खुशी में प्रसाद बांटता हूं।
तो लोगों ने कहा, पागल हो! ऐसा घोड़ा था कि उसका चोरी चले जाना तो बहुत दुख का कारण है। वह सवार कहने लगा, खुश इसलिए हूं कि मैं घोड़े पर नहीं था। नहीं तो मुश्किल में पड़ जाता।
तो देखने की दृष्टि है चीजों को। मैं बच गया यही क्या कम है! इस खुशी में बांटता हूं। घोड़ा ही गया, मैं बच गया। मैं भी घोड़े पर हो सकता था और चोर आ सकते थे, व्यर्थ का उपद्रव होता। लेकिन हमें यही बात दुख की हो सकती थी। हम कैसे जीवन को लेते हैं और देखते हैं!
एक कवि को एक चोर के साथ एक कारागृह में बंद कर दिया गया था। दोनों सीखचों को पकड़ कर खड़े थे। और चांदनी रात थी और आकाश छोटे-छोटे तैरते हुए बादलों में चमक रहा था। छोटी-छोटी बदलियां चांद में चमक रही थीं। और सामने ही सीखचों के बाहर एक झाड़ी पर खूब खूबसूरत फूल खिले हुए थे। एक कवि और एक चोर दोनों बंद थे। दोनों सीखचों के पास खड़े थे और उस चोर ने कहा कि कैसी रद्दी जगह है! एक तो सीखचे, दूसरे पास में ही एक डबरा था। उस पर मच्छर घूमते थे और कीच थी और पुराना सामान उस डबरे के आस-पास भरा था। उसने कहा, यह डबरा! और इसी से तो परमात्मा पर विश्वास उठ जाता है। और उस कवि ने उसके पास ही खड़े होकर कहा, कैसी अदभुत रात है! कैसा चांद! कैसे चमकते हुए बादल! इसी से तो परमात्मा पर विश्वास आ जाता है।
वे दोनों एक ही कारागृह में एक ही सीखचे के पास खड़े थे। उनके देखने की बात थी। एक था कि उसने डबरा देखा, और एक था कि उसने चांद देखा और बादल देखे। और एक था कि अनुगृहीत हो गया और एक था कि परमात्मा पर कुपित हो गया। सुख और दुख हमारे देखने के दृष्टिकोण हैं। वहां कहीं वस्तुओं में नहीं हैं। वहां कहीं स्थितियों में नहीं हैं। और इसीलिए हमारे हाथ में है कि हम किसी चीज में आज सुख लेते हैं, कल दुख लेने लगें। आज किसी को हम प्रेम करते हैं और पागल हो सकते हैं और कल हमारी आंख उठ जाए तो जैसे हम उसे पाने को पागल थे वैसे ही उससे बचने को पागल हो सकते हैं।
महाकवि बायरन हुआ। उसने शादी की। बहुत मुश्किल से शादी की, बहुत बदनाम हुआ। सारे यूरोप में बदनामी हुई। अनैतिक आचरण के कारण न मालूम कितनी स्त्रियों को प्रेम किया। लेकिन प्रेम कभी किसी को कर नहीं पाया। दिन, दो दिन, और उसका मन उखड़ गया, मन भाग गया। एक स्त्री ने उसे मजबूर ही कर दिया। और उसे शादी करनी पड़ी। शायद पुरुषों ने कभी भी शादी न की होती अगर स्त्रियां उन्हें मजबूर ही न कर देतीं। शायद सारी सभ्यता, सारे घर-द्वार स्त्रियों ने मजबूर होकर बसवा दिए होंगे। वह बायरन को एक स्त्री ने मजबूर कर दिया। उसे विवाह कर लेना पड़ा।
विवाह करके वह चर्च से नीचे उतर रहा था। अभी चर्च की घंटियां बज रही हैं। अभी जो मोमबत्तियां जलाई गई हैं उसके विवाह की खुशी में, अभी वे जल रही हैं। अभी लोग विदा हो रहे हैं। और वह अपनी पत्नी का हाथ पकड़ कर सीढ़ियां उतरा और उसने एक अदभुत बात अपनी पत्नी से कही। उसने कहा, यह कैसा अदभुत है। अभी सांझ तक मेरा हृदय धड़क रहा था कि तुमसे विवाह हो जाए तो मैं सब कुछ पा लूंगा। और अब मैं पाता हूं कोई बात ही नहीं है। और तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में है और मुझे ऐसा लग रहा है कि इसमें कुछ भी नहीं है। और अभी मैं तुम्हारा हाथ हाथ में लेकर सीढ़ियां उतरता था, वहां सामने से एक स्त्री जाती थी, एक क्षण को मैं तुम्हें भूल गया और वह स्त्री ही मेरी नजर में थी और मेरे मन में हुआ, काश यह स्त्री मुझे मिल जाए!
स्त्री तो घबड़ा गई होगी कि यह कैसे पागल आदमी से मिलना हो गया है। जो
कल तक पागल था कि विवाह कर लो और जो आज विवाह की घंटियां बज रही हैं, विवाह हुआ है और वह हाथ पकड़ कर यह कह रहा है कि मेरा मन तुम पर से चला गया। वह जो स्त्री जाती थी उसे देख कर मुझे लगा कि काश इससे मेरा विवाह हो जाए। इससे

दुख मत मानना। क्योंकि वह स्त्री भी होती और मेरा विवाह उससे हुआ होता, तो यही मेरे साथ होना था। इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, मेरा मन ऐसा है। हमारा मन ऐसा है। स्थितियों का कोई कसूर नहीं है कि वे दुख देती हैं
और स्थितियों का कोई कसूर नहीं है कि वे सुख देती हैं, हमारा मन ऐसा है। जो व्यक्ति इस मन की इस स्थिति के प्रति सजग नहीं होगा वह दुख से बचना चाहेगा और सुख खोजना चाहेगा, जो कि दुनिया में सबसे गहरा पागलपन का लक्षण है। दुख से बचना चाहना और सुख की खोज करना। क्योंकि दुख से आप बच रहे हैं वह सुख का ही रूप है और जिस सुख को आप खोज रहे हैं वह दुख का ही रूप है। इसलिए दुख से आप बच कर अगर सुख को पाएंगे तो आप पाएंगे उसमें भी सुख नहीं है, भीतर से उसमें से भी दुख के दर्शन होंगे।
इसलिए सब सुखों की यह खूबी है कि पाते ही से व्यर्थ हो जाते हैं। जब तक
आप नहीं पाते--कामना में, आशा में, आकांक्षा में सुख होते हैं--और जैसे ही आप पा लेते हैं, आप पाते हैं हाथ में राख आ गई, वहां कुछ भी नहीं है। जिनको फूलों समझ कर, फूल समझ कर जिनके पीछे दौड़े थे, जब हाथ मुट्ठी हम बांध पाते हैं और खोलते हैं तो पाते हैं, फूल तो दूर हो गए हैं वहां राख हाथ में रह गई है। फूल कभी भी किसी आदमी के हाथ में नहीं आते, राख ही आती है। फूल फिर दूर दिखाई पड़ने लगते हैं कि वे लगे हुए हैं। और तब फिर हमारी यात्रा शुरू हो जाती है। दुनिया में यदि कोई व्यक्ति सुख के भ्रम से जाग जाए, तो राजपथ से उतर जाता है और पगडंडियों पर, निजी, व्यक्तिगत पगडंडियों पर उसकी खोज शुरू हो जाती है। और जो आदमी सुख के भ्रम में चलता चला जाता है, वह भीड़ में और राजपथ पर होता है।
महावीर एक दिन राजपथ को छोड़ दिए और उतर गए। और यह उतरे इसलिए कि यह दिख गया कि सुख जिसे हम कहते हैं, वह छिपा हुआ दुख है। और जिसे हम दुख कहते हैं, वह छिपा हुआ सुख है। वे दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं। उनमें बहुत बुनियाद में कोई अंतर नहीं है। और जब किसी को यह दिखाई पड़ जाए कि सुख और दुख एक ही चीजें हैं, तो फिर उसकी नई खोज शुरू होती है। और वह खोज शांति की होती है। वह खोज सुख और दुख के बीच चुनाव की नहीं होती, बल्कि दोनों से हट जाने की और दोनों से मुक्त हो जाने की होती है।
महावीर को सुख का भ्रम टूट गया तो सत्य की खोज शुरू हुई। सुख के भ्रम
के टूटने का क्षण ही सत्य के अनुसंधान की यात्रा का प्रारंभिक चरण है। तो जिनकी सुख की खोज की यात्रा चल रही हो वे स्मरण रखें कि सत्य से उन्हें अभी कोई संबंध नहीं है। और ऐसा न समझें कि जो दूकान पर बैठा है उसकी सुख की खोज की यात्रा चल रही है अकेले। जो धन कमा रहा है उसकी यात्रा चल रही है। नहीं, ऐसा नहीं है। जो मंदिर में प्रार्थना कर रहा है, जो भगवान के चरण पकड़ कर कामना कर रहा है, जो उपवास कर रहा है, भूखा हो रहा है, जप-तप कर रहा है, हो सकता है उसकी भी सुख की ही यात्रा चल रही हो।
यही तो वजह है कि सारी दुनिया के धर्मों ने स्वर्ग की कल्पना कर रखी है। और वहां सारे सुख की व्यवस्था कर दी है उन सबके लिए जो यहां सुख की कामना में दुख उठाने को तैयार होंगे। जो यहां स्त्रियों का त्याग कर देंगे, स्वर्ग में अप्सराओं की उनके लिए व्यवस्था है। और जो यहां शराब को छोड़ देंगे, स्वर्ग में शराब के झरने बहते हैं। वहां कोई मनाही नहीं है, वहां की हुकूमत की कोई रुकावट नहीं है। वहां झरने ही बहते हैं, पानी मिलना कठिन है। शराब ही मिलती है। और यहां तो कामनाएं हम करते हैं तो पूरी नहीं होतीं। बड़ा कष्ट उठाते हैं, फिर भी अधूरी रह जाती हैं। तृष्णा दुष्पूर है, यह अनुभव आता है। लेकिन जो यहां कही हुई बातों को मानने को, गंगा में, यमुना में स्नान करने को, तीर्थों की यात्रा करने को, पंडों को, पुरोहित को मानने को, पूजने को, मंदिर और मस्जिद की दूकानों में साझेदारी करने को, चलते हुए धर्म के नाम पर शोषित होने को तैयार होंगे, उनके लिए व्यवस्था है स्वर्ग में कल्प-वृक्षों की। उनके नीचे बैठ कर ही कामनाएं तृप्त हो जाएंगी। कामनाएं करते ही तृप्त हो जाएंगी। करने में और उनकी तृप्ति में कोई क्षण का भी अवकाश और अंतर नहीं होगा। किया और भाव किया और कामना पूरी हो जाएगी।
तो सुख के खोजी दूकान पर ही बैठे हैं, ऐसा मत सोचना। उन्होंने मंदिरों
और मस्जिदों को भी दूकानों में बदल दिया है। सुख के खोजी इस संसार में ही

सुख खोजते हैं, ऐसे ख्याल में मत रहना। ऐसी गहरी निद्रा के लोग भी हैं कि परलोक में भी सुख की कामना और व्यवस्था यहीं से करना शुरू कर देते हैं।
मध्य युग में ईसाई पादरी और पोप टिकट तक बेचते रहे स्वर्ग के, यहीं खरीद लिए जाएं।
हमें हंसी आती है, लेकिन यहां भी यही होता है। यहां भी हम ब्राह्मण को मरते वक्त गाय दान कर देते हैं कि वह वैतरणी पार करा देगी वहां परलोक में। यहां हम ब्राह्मण देवता को देते हैं ताकि वहां बैठा हुआ देवता हमें बहुत दे। यहां हम किसी भगवान के पैरों में सिर रख कर झुकते हैं, नमस्कार करते हैं, स्तुति करते हैं। ताकि वह प्रसन्न हो, खुशामद से प्रसन्न हो और वहां कुछ दे।
यह लेन-देन की कल्पना दूकानदार की दूकान पर समाप्त नहीं होती, धर्म में भी प्रविष्ट हो जाती है। और जैसे दूकानदार बड़ी तपश्चर्या करता है, धूप में भी बैठता है, भूखा भी बैठता है, कष्ट भी सहता है, उपद्रव भी सहता है, सब सह कर भी सुख की खोज करता रहता है। वैसे ही अगर यह दूकानदार कभी संन्यासी हो जाए--और दुनिया में बहुत से दूकानदार संन्यासी हो गए हैं--तो वह वहां भी यही सब कष्ट झेलने को तैयार है। बड़े कष्ट झेलने को तैयार है। क्योंकि उसकी कामना और आशा का सुख अगर निश्चित हो तो वह सब करने को तैयार है। आप छोटे- मोटे सुख से तृप्त हो जाते हैं, उसे बड़ा शाश्वत सुख चाहिए। उसे ऐसा सुख चाहिए जो फिर नष्ट न हो। उसे ये छोटे-मोटे सुख जो नष्ट हो जाते हैं, इनकी कामना नहीं है। उसे तो बड़ा स्थायी सुख चाहिए। उसके लोभ का अंत नहीं है। उसकी सुख की कामना बड़ी गहरी और प्रगाढ़ है।
इसलिए यह मैं नहीं कहता हूं कि दूकान पर हों, धंधे में हों, तो आप सुख
के आकांक्षी हैं। सुख की आकांक्षा चित्त की एक रुग्णता है जो कहीं भी हो सकती है। संन्यासी में भी हो सकती है, गृहस्थ में भी हो सकती है।
इसलिए सुख की रुग्णता पर मेरा जोर है, आप कहां हैं यह सवाल नहीं है। क्या सुख पाने की कामना आपके मन में है? क्या आप चाहते हैं कि मैं सुख पाऊं? अगर आप सुख पाना चाहते हैं और उसी कामना के वशीभूत होकर कुछ भी करते हैं--चाहे धन कमाते हैं, चाहे पुण्य कमाते हैं--दोनों स्थितियों में अभी सत्य की खोज आपकी प्रारंभ नहीं हुई।
महावीर की खोज स्वर्ग की खोज नहीं है, नहीं तो वह सुख की खोज होती है। महावीर की खोज मोक्ष की खोज है। मोक्ष सुख का स्थान नहीं है, इस ख्याल में कोई न रहे। मोक्ष में न तो सुख है, न दुख। वह जो मुक्त चित्त की अवस्था है वहां न सुख है, न दुख। इसलिए महावीर की खोज स्वर्ग की खोज नहीं है।
और जहां भी धर्म स्वर्ग की बातें करता हो वह फैली हुई दूकान की ही शक्ल है। वह कोई धर्म नहीं है, वह राजपथ पर चलने वाले लोगों की ही तृप्ति है। वह पगडंडी पर अकेली हिम्मत से खोजने वालों का मार्ग नहीं है। लेकिन हम सोचते हैं कि महावीर धर्म बनाते होंगे, तो गलती में हैं। महावीर से धर्म का जन्म तो होता है, लेकिन उनके आस-पास जो दूकानदार इकट्ठे हो जाते हैं वे धर्म बनाते हैं। धर्म बनाने वाले दूसरे और जिनसे धर्म का जन्म होता है वे बहुत दूसरे लोग हैं। जिनसे जन्म होता है वे तो समाप्त हो जाते हैं और धर्म को जो बनाने वाले दूकानदार हैं उनकी संततियां सम्हालती चली जाती हैं दूकान को। और धीरे-धीरे धर्म भी मोक्ष की खोज न होकर सुख की और स्वर्ग की खोज हो जाती है। और तब हमें सब को अपील करने लगती है, क्योंकि सुख की तो हम सबकी कामना है कि वह मिल जाए--कहीं भी, इस जमीन पर मिले, उस जमीन पर मिले। मैं एक दिन एक रास्ते से गुजरता था। और एक महिला मेरे पास आई और उसने मुझे एक किताब दी। किताब के ऊपर एक बड़ा सुंदर भवन था। एक बहुत सुंदर नदी पीछे बहती थी। बड़े ऊंचे चिनार के दरख्त थे। बड़ा सुंदर ऊपर! तो मैं उस चित्र को देखा, पन्ना पलटाया, पीछे लिखा था, क्या आप ऐसे भवन में, ऐसे सुंदर स्थान में, ऐसी सुंदर नदी के किनारे रहना पसंद करेंगे? मैं हैरान हुआ कि क्या बात है! दूसरा पन्ना उलटा, उस पर लिखा था कि जो भी प्रभु ईसा में विश्वास करेंगे, स्वर्ग में उनके लिए ऐसी व्यवस्था है।
कितने लोलुप हैं जमीन पर जो इस पर विश्वास नहीं कर लेंगे! आखिर कौन है ऐसा जो बड़ा मकान और नदी के किनारे नहीं चाहता! और कौन है ऐसा, जहां सारी

व्यवस्था और सुविधा न हो! और फिर इस जमीन पर जो सुविधा नहीं जुटा पाते उनकी कामना तो बहुत बनी रहती है कि वहां मिल जाए।
सुख की खोज की तृष्णा अर्थ पर समाप्त नहीं होती, धर्म में प्रविष्ट हो जाती है। और इसलिए धर्म विकृत हो जाता है और पतित हो जाता है।
जमीन ऐसे धर्मों से भरी है जो सुख की खोज की आकांक्षा के किनारे पर संयोजित किए गए हैं। और यही वजह है--ख्याल रखें, यही वजह है--कि एक धर्म दूसरे धर्म से लड़ता है। सत्य की खोज हो तो इस दुनिया में किसी से लड़ाई का कोई कारण नहीं है। लेकिन अगर सुख की खोज हो तो लड़ाई तो जरूरी है। क्योंकि सुख में तो छीना-झपटी करनी होती है। सुख की खोज में तो काम्पिटीशन होगा, प्रतियोगिता होगी। अगर हम इतने सारे लोग सुख की खोज करेंगे तो सब एक-दूसरे के दुश्मन हो जाएंगे और सुख की खोज करेंगे, क्योंकि हमें सुख छीनना पड़ेगा। सत्य किसी से छीनना नहीं पड़ता। सत्य की खोज वैयक्तिक है, कोई प्रतिस्पर्धा, कोई काम्पिटीशन नहीं है। किसी से कोई झगड़ा, कोई संघर्ष नहीं है। लेकिन सुख की खोज झगड़ा है, युद्ध है। इसलिए बहुत ठीक से समझेंगे तो जो सुख का आकांक्षी है, वह अहिंसक नहीं हो सकता। क्योंकि सुख की आकांक्षा में ही हिंसा छिपी हुई है। उसका तो वायलेंस होगी ही उसके मन में, नहीं तो वह दूसरे से सुख छीनेगा कैसे! सुख की आकांक्षा में हिंसा छिपी है और सत्य की आकांक्षा में अहिंसा का जन्म हो जाता है।
महावीर को दिखाई पड़ गया कि सुख की आकांक्षा व्यर्थ है। क्योंकि सुख
एक दुख का छिपा हुआ रूप है। सुख भी एक अशांत स्थिति है। सुख भी मन की शांत, अनुत्तेजित दशा नहीं है। जब आप सुख में होते हैं, तो मन आंदोलित हो जाता है। वह भी चित्त की सहज अवस्था नहीं है, चित्त आंदोलित हो रहा है। चित्त की सहज अवस्था तो वही है जहां कोई भी आंदोलन न हो, जहां चित्त शांत और संयत हो। जहां चित्त ऐसे हो जैसे हमने किसी भवन में सारे द्वार-दरवाजे बंद कर दिए हों और दीए को जलाया हो। कोई हवा का झोंका न आता हो, और दीए की अकंप लौ जलती हो। वैसी जब चित्त की स्थिति होती है अकंप और उसमें कोई कंपन नहीं होते, वैसी अकंप स्थिति को शांति कहा है। वैसी अकंप स्थिति को!
तो वैसी अकंप स्थिति न तो सुख में होती है और न दुख में होती है। दुख
की हवाएं भी कंपा जाती हैं और सुख की हवाएं भी कंपा जाती हैं। वे एक ही तरह की हवाएं हैं। हम जब उन्हें प्रेम करते हैं या प्रेम करने की भूल में होते हैं तो सुख कहते हैं और जब उन्हें प्रेम नहीं करते तो उन्हें दुख कहने लगते हैं। वे हवाएं तो एक ही हैं। वही हवा कभी हमें सुख जैसी लगती है और वही हवा कभी दुख जैसी लगती है। लेकिन दोनों स्थितियों में, चाहे सुख लगे चाहे दुख, चित्त कंप जाता है। चित्त का कंपन, बहुत गहरे में समझिए तो चित्त का कंपन ही आध्यात्मिक पीड़ा है, आध्यात्मिक दुख है। आंतरिक दुख है चित्त का कंपन और अगर चित्त निष्कंप हो जाए तो आंतरिक आनंद उपलब्ध होता है।
अब यह फर्क समझ लेना आप! बाहरी कंपन प्रीतिकर लगे तो सुख मालूम होता है, बाहरी कंपन अप्रीतिकर लगे तो दुख मालूम होता है। और जैसा मैंने कहा, ये दोनों कंपन एक ही जैसे हैं, हमारी व्याख्या का, देखने की दृष्टि भर का भेद है। लेकिन अगर कंपन भीतर मालूम हो--तो कंपन दोनों स्थितियों में मालूम होगा, सुख में भी और दुख में भी--कंपन अगर मालूम हो तो कंपन आंतरिक दुख है, आंतरिक पीड़ा है, आंतरिक संताप, एंग्विश और एंग्जाइटी की स्थिति है। वह आंतरिक पीड़ा और चिंता है, अगर कंपन है। और अगर चित्त निष्कंप है तो वह आंतरिक आनंद है।
जो बाहर सुख-दुख की खोज के भ्रम से मुक्त हो जाता है और जानता है कि यह
तो मैं कंपन ही खोज रहा हूं और सब कंपन अंतस में पीड़ा को ही जन्म देंगे, वह फिर निष्कंप अवस्था को खोजने लगता है। मैंने कहा कि राजपथ से वह कब उतरता है? उस क्षण उतरता है, जब किसी भांति का कंपन उसे प्रीतिकर नहीं रह जाता। सब तरह के कंपन व्यर्थ और कष्ट और पीड़ा मालूम होने लगते हैं, तब वह मार्ग से नीचे उतरता है--उस मार्ग से जिस पर हम सब सेंसेशंस को और कंपन को खोजने में लगे हुए हैं, सुख को खोजने में लगे हुए हैं, दुख से बचने में लगे हुए हैं। दुख से बचते हैं, दुख पाते हैं; सुख खोजते हैं, सुख पा नहीं पाते। जहां हम खोजने में लगे हैं कंपन को, वहां से वह नीचे उतर जाता है और निष्कंप की

खोज शुरू कर देता है। कंपन की खोज संसार है और निष्कंप की खोज सत्य की खोज है या मोक्ष की खोज है। उस निष्कंप अवस्था में वह जाना जाता है जो मैं हूं। महावीर को किसी दिन यह दिखा और उन्होंने मार्ग छोड़ दिया। फिर उन्होंने कैसे निष्कंप को खोजा, उस संबंध में थोड़ी सी बातें और आपसे कहूं। एक तो वे निष्कंप की खोज में गए कंपन को व्यर्थ जान कर, सब भांति के कंपन के इल्यूजन से मुक्त होकर। कोई भी हो सकता है। जो भी जरा सुख-दुख के रूप को समझेगा, जागेगा और देखेगा, विचार करेगा और निरीक्षण करेगा, वह मुक्त हो जाएगा। यह तो मैं वही खोज रहा हूं जिससे मैं बचना चाहता हूं। जिससे मैं बचना चाहता हूं उसको ही खोजना चाहता हूं। यह तो मैं अपने ही हाथ से एक उपद्रव में लगा हूं जिसका कोई अंत नहीं हो सकता है। पर हम जल्दी से व्याख्या कर लेते हैंः यह सुख है, वह दुख है। खोज नहीं करते, देखते नहीं, निरीक्षण नहीं करते, आब्जर्वेशन हमारे मन में नहीं होता। इस आब्जर्वेशन को महावीर के शब्दों में मैं सम्यक दर्शन कहूंगा। जीवन के तथ्यों को ठीक-ठीक रूप से देख लेने से व्यक्ति सुख और दुख से मुक्त हो जाता है।
एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं, जिससे ख्याल आ जाए कि हम कितने जल्दी निरीक्षण नहीं करते और निर्णय ले लेते हैं। एक घोड़े की मैंने आपसे कहानी कही जो चोरी चला गया। एक और घोड़े की कहानी कहता हूं वह भी चोरी चला गया। लाओत्से चीन में एक विचारक हुआ। वह एक गांव में गया था। उसने गांव के लोगों से पूछा, यहां कोई अदभुत आदमी है जिसके मैं दर्शन करूं? लोगों ने कहा, है! लोग उसे ले गए एक बूढ़े के पास।
उसने पूछा, इसमें क्या खूबी है? तो उन लोगों ने कहा, अभी-अभी एक घटना
घट गई है। इसके पास एक घोड़ा था और ऐसा घोड़ा था कि दूर-दूर प्रांतों में नहीं था। बहुत उसकी मांग थी। लोग उसे दर्शन करने, देखने आते थे। एक जमाना था कि घोड़ों की इज्जत हुआ करती थी। इसका घोड़ा एक रात चोरी चला गया। तो हम सब गांव के लोग गए और इससे हमने कहा कि यह तो बड़ी दुख की बात हो गई कि घोड़ा चोरी चला गया। यह बूढ़ा हंसने लगा। और इसने कहा, इतना ही कहो कि घोड़ा चोरी चला गया। यह मत कहो कि दुख की बात हो गई। व्याख्या मत करो, तथ्य इतना है कि घोड़ा चोरी चला गया।
तो हम बहुत हैरान हुए। फिर यह बोला कि हो भी सकता है, क्या आखिर में निकले कुछ कहा नहीं जा सकता है, सुख निकले कि दुख निकले। कुछ कहा नहीं जा सकता, जल्दी निर्णय मत करो। फिर लोग वापस लौट गए। कोई आठ दिन बाद घोड़ा वापस लौट आया और जंगल से आठ-दस घोड़ों को साथ ले आया। गांव के लोगों ने कहा, बूढ़े ने ठीक कहा था कि यह मत कहो कि दुख है, वह तो घटना सुख की निकली। दस घोड़े मुफ्त घर आ गए। वे वापस गए और उस वृद्ध से कहा कि बड़ी खुशी की बात है, बड़े सुख की कि घोड़ा भी लौट आया और दस घोड़े भी ले आया। उस बूढ़े ने कहा, जल्दी निर्णय मत करो, तथ्य इतना है कि घोड़ा लौट आया और दस घोड़े भी साथ लौट आए। इससे ज्यादा कुछ पता नहीं है कि सुख है कि दुख, कुछ कहा नहीं जा सकता। लोगों ने कहा, अब इसमें शक की ही बात क्या है! दस घोड़े मुफ्त हाथ पड़ गए। उसने कहा, यह मत कहो। बस इतना तथ्य है, इससे आगे मत जाओ। इसके आगे जाना संभव नहीं है। और यही हुआ कि पांच-छह दिन बाद उसका इकलौता लड़का था बूढ़े का, वह एक जंगली घोड़े पर बैठ कर उसे चलना सिखा रहा था, गिर पड़ा। उसके दोनों पैर टूट गए। लोगों ने कहा, वह बूढ़ा बहुत होशियार है। हमसे बहुत समझदार है। उसने ठीक ही कहा था कि कुछ मत कहो। अब यह दुख की घटना घट गई। लड़के का पैर टूट गया। अकेला लड़का है, बुढ़ापे का सहारा है। वे सांझ उसके पास गए, उन्होंने कहा कि सच में ही दुख की बात हो गई।
उस बूढ़े ने कहा, तुम मानते ही नहीं हो। तुम व्याख्या ही किए जाते हो। तथ्य इतना है कि घोड़ा चला, लड़का बैठा था, गिरा और पैर टूट गया। इससे आगे निर्णय मत करो। लोगों ने कहा, अब इसमें शक ही क्या रहा कि यह तो दुख की बात साफ ही है! अब इसमें और कौन सा सुख निकलेगा! इस लड़के के पैर टूट जाने से कौन से सुख की संभावना है! बूढ़े ने कहा, यह मैं कुछ नहीं जानता। इस जगत में अनंत संभावनाएं हैं। और जो अंधे हैं वे ही केवल नतीजे ले सकते हैं। जिनकी आंख खुली है वे नतीजे कभी नहीं लेते। तथ्य तथ्य हैं, उनमें सुख और दुख कुछ भी नहीं है। क्योंकि कुछ भी हो सकता है।

और सच में ही गांव को हारना पड़ा और बूढ़े को जीत जाना पड़ा। महीने भर बाद पड़ोस के राज्य ने बूढ़े के गांव वाले राज्य पर हमला कर दिया। सारे जवान लड़के जबरदस्ती मिलिट्री में भरती कर लिए गए। सिर्फ उसका लड़का छूट गया। उसके पैर में चोट थी। तो गांव के लोगों ने कहा, तुम ठीक ही कहते थे। यह तो सुख ही निकला। बूढ़े ने कहा, तुम मानते नहीं हो, पुरानी आदत को पकड़े ही चले जाते हो। इतना ही कहो कि लड़का बच गया, मिलिट्री में नहीं जा सका। लेकिन सुख है या दुख, यह कहा नहीं जा सकता।
जिनकी आंख सजग है, इसको कहेंगे, राइट विजन, यह है सम्यक दृष्टि। यह है चीजों को, तथ्यों को जैसे हैं, वैसे देखना। सम्यक दर्शन का अर्थ है तथ्य जैसे हैं, फैक्ट्स, बिना व्याख्याओं के उनको वैसा ही देखना। अगर कोई जीवन को देखे तो वह पाएगा कि वहां न सुख है, न वहां दुख है। वहां घटनाएं हैं और हमारी व्याख्याएं हैं। हमारी व्याख्याओं में सुख और दुख है। घटनाएं सिर्फ घटनाएं हैं, वहां कोई भी सुख नहीं है और कोई भी दुख नहीं है।
ऐसा जब महावीर को दिखाई पड़ा होगा। ऐसा जब किसी को भी दिखाई पड़ता है तो उसके जीवन में क्रांति हो जाती है। वह दूसरे तरह का आदमी हो जाता है। व्याख्याओं का आदमी वह नहीं रह जाता। व्याख्याएं छोड़ देता है, तथ्य को पकड़ता है। और जो तथ्य को पकड़ता है वह सत्य की दिशा में उसके कदम बढ़ जाते हैं, क्योंकि सत्य तथ्य के भीतर छिपा हुआ है। वह जो ट्रुथ है, वह फैक्ट के भीतर छिपा हुआ है। लेकिन हम तो तथ्य को देख ही नहीं पाते, क्योंकि व्याख्या कर लेते हैं। व्याख्या करने वाला मन सत्य को कभी नहीं जान सकता। लेकिन तथ्य को देखने वाला मन धीरे-धीरे तथ्य में प्रवेश करता है और तथ्य में प्रवेश करके सत्य को उपलब्ध हो जाता है। महावीर ने तथ्य देखा कि घटनाएं हैं, न कोई सुख है, न कोई दुख है। और घटनाओं के वे सम्यक निरीक्षक मात्र रह गए।
बारह वर्षों की लंबी तपश्चर्या में मुझे जो दिखाई पड़ता है, वह यही कि महावीर हर तथ्य के निरीक्षक मात्र हैं। उन्हें कोई सता रहा है, दुख दे रहा है, तो वे देख रहे हैं। हमें बाहर से लग रहा है कि महावीर को बहुत दुख दिया जा रहा है। महावीर को लग रहा है, एक घटना घट रही है--दुख नहीं। हमें लग रहा है, महावीर को कोई परेशान कर रहा है, कान में कीलें ठोंक रहा है, डंडों से चोट पहुंचा रहा है। हमें लगता है कि एक महावीर को दुख दिया जा रहा है। महावीर को लगता है, एक घटना घट रही है। और दुख क्या है, तथ्य है एक! महावीर जब तथ्यों को देखने लगे तो उनके भीतर एक निरीक्षक का जन्म हुआ। वह तथ्य के देखने से ही होता है। एक कांशसनेस का, एक चेतना का, जो मात्र निरीक्षण करती है, व्याख्या नहीं करती।
और जब आप किसी चीज का आब्जर्वेशन करेंगे, निरीक्षण करेंगे, मात्र देखेंगे, मात्र साक्षी हो जाएंगे, तो क्या होगा? यह होगा कि तथ्य बाहर खड़े रह जाएंगे और आपको अपनी पृथकता का बोध होगा। व्याख्या के कारण आप पृथक नहीं हो पाते।
मुझ पर चोट आपने की, मैं तत्क्षण कहता हूं कि बड़ा दुख हुआ, मेरा बड़ा अपमान किया गया। घटना की जो दूरी थी वह खत्म हो गई, घटना मुझसे जुड़ गई। मैंने जोड़ लिया कि मेरा अपमान किया गया, मुझे दुख दिया गया।
अब कल वह जो अभी उन्होंने कहा कि एक्सीडेंट हुआ, लगता है कि बड़ा बुरा हुआ। ऐसा लगता है कि गए, मर जाते तो क्या होता! बाकी तथ्य केवल इतना था कि गाड़ी उलट गई। और दूसरा तथ्य--अगर इतना तथ्य ही रहे कि गाड़ी उलट गई--तो दूसरा तथ्य यह होगा कि आपको लगेगा कि हम केवल देखने वाले हैं और कौन हैं! वहां गाड़ी के उलटने में अगर हम व्याख्या कर लें कि यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो दुख की बात हो गई, यह तो दुर्भाग्य हो गया, तो हम संयुक्त हो गए और निरीक्षक न रहे।
तथ्य की जहां व्याख्या है वहीं हम उससे जुड़ जाते हैं और एक हो जाते हैं। और अगर तथ्य की कोई व्याख्या नहीं, केवल तथ्य का दर्शन है, तो हम अलग बने रहते हैं, दूर खड़े रहते हैं। दिखाई पड़ता है कि हम पृथक हैं और घटना घट रही है।
तो वे तो कहते हैं कि मैं भी बैठा हुआ था उनके साथ गाड़ी में, मैं नहीं बैठा हुआ था। मैं तो गाड़ी के बाहर ही था, क्योंकि मैं तो देख रहा था कि

एक्सीडेंट हुआ। जिनके साथ हुआ वे मुझे दिखाई पड़ रहे थे। उसमें मेरा शरीर भी था, उसमें दूसरे शरीर भी थे। उसमें गाड़ी भी थी, उसमें गाड़ी का उलटना भी था। लेकिन मैं बाहर था। क्योंकि जब आप देख रहे हैं तो आप बाहर हो जाते हैं। जिसको आप देख रहे हैं उससे आप अलग हो जाते हैं। और जिसकी आप व्याख्या कर लेते हैं उसमें आप एक हो जाते हैं। तो यह हो सकता है कि आप गाड़ी में बैठे हों और गाड़ी उलट जाए, और आप बाहर हों और केवल देखने वाले हों। तब तथ्य तथ्य रह जाते हैं और आप दूर खड़े रह जाते हैं। और जीवन में सबसे बड़ी साधना यही है कि जीवन के सारे तथ्यों के बीच आपकी चेतना दूर से देख पाए, ऊपर हो पाए।
तो महावीर ने सारे सुखों को, दुखों को--उसको ही हम तपश्चर्या कहें--कि
उन सबका वे निरीक्षण करते रहे और देखते रहे। देखते-देखते उन्हें दिखाई पड़ा कि मैं तो देखने वाला हूं और जो हो रहा है उससे मेरा कोई भी वास्ता नहीं है। पहली बात दिखाई पड़ी कि जो हो रहा है, उसकी व्याख्या व्यर्थ है। दूसरी बात दिखाई पड़ी, जो हो रहा है उससे मेरा कोई वास्ता नहीं, मैं अलग हूं। जीवन में तीन बिंदु हैं। दो बिंदु हैं सुख और दुख के, वे हो रहे हैं। और एक तीसरा बिंदु है देखने वाले का, जानने वाला का।
एक गांव में मैं गया था। मेरे मित्र बहुत बीमार थे, गिर पड़े और उनके पैर खराब हो गए। जब मैं गया तो वे एकदम रोने लगे, मुझसे गले लगे और रोने लगे कि मैं तो अपाहिज हो गया और जीवन खराब हो गया। अब मैं क्या करूंगा! अब तो मेरी जिंदगी बेकार हो गई। अब तो मैं यही सोच रहा हूं इन पिछले सात दिनों से कि किसी तरह मर जाऊं। खाट पर पड़े होकर जिंदा रहना भी कोई जिंदा रहना है! और अब तो जिंदगी भर ऐसे ही पड़े रहना पड़ेगा! सब गड़बड़ हो गया। मैंने उनसे कहा कि मैं तो बड़ी खुशी में आया हूं कि यह सुन कर कि तुम्हारे पैर टूट गए। क्योंकि पैर जब तक चलते थे तुम रुकने वाले नहीं थे, चलते ही रहते। और चलने वाला खो देता है और रुकने वाला पा लेता है। तो धन्य हैं वे जिनके पैर टूट गए। मैंने कहा, मौका मिला है कि कुछ पा सकते हो। वे बोले, क्या बात कर रहे हो! सब कारोबार गड़बड़ हो गया। मैंने कहा, उसे कोई संभाल लेगा, क्योंकि तुम नहीं रह जाओगे तो भी कारोबार संभला रहेगा।
यहां दुनिया में आज तक कारोबार कोई गड़बड़ हुआ ही नहीं। बल्कि आप हटे नहीं कि उसको पूरा करने वाला कोई खड़ा हो जाता है। बल्कि वह प्रतीक्षा कर रहा है कि आप कृपा करो और हट जाओ, मुझे जगह दो। क्योंकि पुराना हटता है, तो नए को जगह मिलती है। नए प्रतीक्षातुर हैं कि पुराने हट जाएं। उनके पैर टूट जाएं। वे अलग हो जाएं। तो जिनके पैर में अभी दम है वे आएं और चलें।
तो मैंने कहा, इसमें तो कोई दिक्कत नहीं है। बच्चे संभाल लेंगे। कोई न कोई संभाल लेगा। इसकी कोई फिक्र की बात नहीं है। लेकिन बड़ा सौभाग्य यह हुआ कि मरने के पहले पैर टूट गए। मरने के साथ ही टूटते हैं सबके, तब कुछ मतलब नहीं रह जाता। अब कोई मौका मिल गया रुकने का, बैठने का, पड़े रहने का। वे बोले, क्या करें? क्या कहते हैं आप? मैं क्या करूंगा? मैंने उनसे कहा कि मैं यहां बैठा हूं, आंख बंद कर लें। पैरों में तकलीफ है, पीड़ा है, बहुत तकलीफ है। आंख बंद कर लें और यह देखें कि पीड़ा को आप देख रहे हैं या पीड़ा आपको हो रही है। मैं बैठा हूं यहां पास, आप आंख बंद कर लें, पांच-दस मिनट देखें, फिर मुझे कहें कि आप देखने वाले हैं या पीड़ा को झेलने वाले हैं। पीड़ा आपको हो रही है, या आपके भीतर कोई बिंदु है जो देख रहा है कि पीड़ा हो रही है।
उन्होंने दस मिनट आंख बंद की। मैं उनके पास बैठा देखता रहा। उनके चेहरे पर तना हुआ भाव क्रमशः शिथिल होता गया। मैंने देखा, उनकी पलकें जो खिंची थीं, ढीली हो गईं। उनके माथे पर जो बल थे, वे क्रमशः विलीन हो गए। उन्हें मैं वैसी अवस्था में आंख बंद किए हुए छोड़ कर चला आया। पीछे तीन महीने बाद दुबारा गया। पहली बार गया था तब भी वे गले मिले थे और उनकी आंखों में आंसू थे। इस बार भी वे गले मिले, इस बार भी उनकी आंखों में आंसू थे। लेकिन दोनों आंसुओं में जमीन और आसमान का भेद था। वे दुख के थे और अब ये बड़े गहरे सुख के थे।
वे कहने लगे, यह तो अदभुत हो गया। जैसे-जैसे मैं देखने लगा, पड़ा रहा और देखता रहा और देखता रहा और मैंने जाना कि मैं अलग हूं और पीड़ा के केंद्र अलग हैं। जहां दर्द हो रहा है, वे अलग हैं; और मैं जो देख रहा हूं, वह पृथक

है। जैसे-जैसे मुझे पृथकता दिखाई पड़ने लगी मैंने पाया कि यह तो मामला ही गया। मैं तो कुछ और ही था, जिसे न कभी कोई सुख हुआ है, न कभी कोई दुख हुआ है।
मैं तो सदा ही देखने वाला था। मैं तो सदा ही साक्षी था।
जैसे-जैसे व्यक्ति सम्यक दर्शन की अनुभूति से गुजरेगा उसे सम्यक ज्ञान होगा। चुपचाप तथ्यों को देखने से, जीवन के तथ्यों को देखने से, निरीक्षण करने से, उस तत्व का बोध होना शुरू होता है जो हमारे भीतर है। तथ्य बाहर रह जाते हैं और कुछ हमारे भीतर एक नई शक्ति खड़ी हो जाती है जिसका हमें अनुभव होने लगता है। उस शक्ति को चाहे कोई आत्मा कहे, चाहे कोई कोई और नाम दे दे, इससे कोई प्रयोजन नहीं। लेकिन जीवन की सारी घटनाओं के बीच में, घटनाएं बदलती रहती हैं, बीच में कोई तत्व खड़ा है अपरिवर्तनीय। जैसे गाड़ी का चाक चलता है और कील खड़ी हुई है। और चाक घूमता रहता है और कील खड़ी रहती है। और कैसा आश्चर्य है कि जो चाक चलता है वह इस कील के बल पर चलता है जो कि बिल्कुल नहीं चलती और खड़ी रहती है। वैसे ही जीवन की सारी दौड़ और सारा चलना और सारे तथ्यों का समूह उस केंद्र पर घूमता है, जो कि अचल है, जो कि सदा खड़ा है। जब आप बच्चे थे तब भी था, जब आप जवान थे तब भी था, जब आप बूढ़े हुए तब भी वह है। बचपन आया और गया, लेकिन वह केंद्र अचल खड़ा हुआ है। जवानी आई और गई, और वह केंद्र अचल खड़ा हुआ है। बुढ़ापा आएगा और जाएगा, और वह केंद्र अचल खड़ा हुआ है।
चेतना का एक बिंदु है जो जीवन के सारे प्रवाह में अचल है। उसी बिंदु
को पा लेना आत्मा को पा लेना है। तथ्यों को और चल-जगत को, वह परिवर्तनशील जगत को, वह जो चेंजिंग सारी दुनिया है, उसके प्रति जो जागता है वह क्रमशः उसे अनुभव करने लगता है जो कि अचल है, जो कि केंद्र है, जो कि बिंदु है, जो कि हम हैं, जो कि हमारी सत्ता है, जो कि हमारी आथेंटिक, हमारी प्रामाणिक आत्मा है।
उस बिंदु को जानना सम्यक ज्ञान है। सम्यक दर्शन है विधि, सम्यक ज्ञान
है उसकी उपलब्धि। ये दो बातें बड़ी अर्थपूर्ण हैं। और दूसरे बिंदु को जो उपलब्ध हो जाता है उसका सारा आचरण बदल जाता है। उसे महावीर ने कहा, उसका आचरण सम्यक आचरण हो जाता है। दर्शन है विधि, ज्ञान है उपलब्धि, आचरण है उसका प्रकाश।
जब भीतर शांत और आनंदित, अचल और अमृत आत्मा का बोध होता है, तो सारा आचरण कुछ और हो जाता है। जैसे किसी घर के दीए बुझे हों, तो उसकी खिड़कियों से अंधकार दिखाई पड़ता है। और जैसे किसी घर के भीतर दीया जल जाए, तो उसकी खिड़कियों से रोशनी बाहर फिंकने लगती है। ऐसे ही जब किसी व्यक्ति के भीतर ज्ञान बुझा होता है और अज्ञान घना होता है, तो आचरण से दुराचरण का अंधकार फैलता रहता है। हिंसा है, और असत्य है, और काम है, और क्रोध है, वे उसकी खिड़कियों से जीवन के बाहर फैलते रहते हैं। और जब उसके भीतर ज्ञान का दीया जलता है और उसे ज्ञात होता है कि मैं कौन हूं और क्या हूं, तो उसके सारे भवन के द्वार, खिड़कियां आलोक को बाहर फेंकने लगते हैं। वही आलोक अहिंसा है, वही आलोक अपरिग्रह है, वही आलोक ब्रह्मचर्य है, वही आलोक सत्य है, फिर वह अनेक-अनेक किरणों में सारे जगत में व्याप्त होने लगता है।
महावीर ने तथ्यों को जाना, तथ्यों को पहचाना, वे सुख के भ्रम से मुक्त हुए, तथ्यों की व्याख्या छोड़ दी। व्याख्या छोड़ते ही वह दिखाई पड़ना शुरू हुआ जो कि ज्ञाता है, जो कि साक्षी है, जो कि विटनेस है। उसको जानने से उन्होंने स्वयं को पहचाना और जाना और जीवन में उस क्रांति को अनुभव किया जो सारे जीवन को प्रेम और प्रकाश से भर देती है। ऐसा जीवन अपने भीतर जाकर उन्होंने उपलब्ध किया। और जो व्यक्ति भी कभी ऐसे जीवन को पाना चाहे, वह अपने भीतर जाकर उपलब्ध कर सकता है। महावीर होने की क्षमता हर एक के भीतर मौजूद है।
लेकिन हम हैं पागल, हम उस क्षमता को तो न खोजेंगे, महावीर की एक मूर्ति बनाएंगे और उनके चरण पकड़ेंगे। हम उस मंदिर को तो न खोजेंगे जो भीतर है, हम एक दीवाल बनाएंगे, एक मकान बनाएंगे और कहेंगे यह मंदिर है। हम उस महावीर की तलाश में तो न जाएंगे जो कि सबकी निहित ऊर्जा है, सबकी निहित शक्ति है, हम उस महावीर की खोज करेंगे जो पच्चीस सौ साल पहले किसी मां-बाप से पैदा

हुआ, जन्मा चला और मरा। हमारी पकड़ उस आंतरिक तत्व पर अगर हो तो हम निश्चित ही महावीर को उपलब्ध हो सकते हैं।
सवाल उनकी पूजा करने का नहीं, सवाल उन्हें मानने का नहीं, सवाल उस पूरे अंतस्तल को जानने का है जहां कि वह क्रांति पैदा होती है और व्यक्ति सामान्य से उठ कर असामान्य जीवन में प्रविष्ट हो जाता है। जहां वह असत्य से उसके सत्य के संसार से संबंधित हो जाता है। जहां वह चलायमान जो है उससे हट कर वह जो अचल है उस पर खड़ा हो जाता है। जहां वह अंधकार से हटता है और प्रकाश के बिंदु को उपलब्ध कर लेता है। यह प्रत्येक मनुष्य की निजी क्षमता है। और महावीर का संदेश दुनिया को यही है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे की तरफ आंखें न उठाए, मुखापेक्षी न हो। किसी दूसरे से आप आशा न करें, किसी दूसरे से मांगें नहीं, किसी दूसरे से भिक्षा का ख्याल न करें। जो भी किया जा सकता है वह प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से, अपने श्रम से, अपनी क्षमता से, अपने साहस से कर सकता है।
व्यक्ति की गरिमा को जैसी प्रतिष्ठा महावीर ने दी संभवतः संसार में किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं दी। और सारी पूजा और सारी शरण जाने की भावना छीन ली। और कहा अपनी शरण पर, अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। अपनी हिम्मत और साहस का प्रयोग करो। जागो, निरीक्षण करो, और अपने भीतर प्रवेश पाओ, तो कोई भी वजह नहीं है कि जो कभी किसी को उपलब्ध हुआ हो वह हमें उपलब्ध क्यों न हो सके। यह उपलब्ध हो सकता है। और इसके लिए जरूरत नहीं कि कोई जंगल में भाग कर जाए, कोई पहाड़ पर जाए, कोई कपड़े बदले, कोई लंगोटी लगाए या नंगा हो जाए, या कोई भूखा मरे, या कोई उलटा सिर करके खड़ा हो जाए। इस सब की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई उपद्रव, किसी तरह के उलटे-सीधे काम, किसी तरह का कोई पागलपन करने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन को जानने, पहचानने, जागने, समझने और अपने भीतर प्रज्ञा को विकसित करने, साक्षी-भाव को जगाने की जरूरत है। यह कहीं भी हो सकता है। जो जहां है, वहीं हो सकता है। और यह हरेक व्यक्ति को कर ही लेना चाहिए। अन्यथा जीवन तो आएगा और व्यतीत हो जाएगा, और तब हमें ज्ञात होगा कि हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। मौत सामने खड़ी होगी और हमको पता चलेगा, हम तो खाली हाथ हैं। फिर मौत से कितने ही भागें, कहीं कोई भाग कर नहीं जा सकता। कहीं भी भागें, फिर भागने का कोई उपाय नहीं है। जागने का उपाय है मौत से, लेकिन मौत से भागने का उपाय नहीं है।
सुबह मुझसे कोई पूछता था, मौत क्या है? तो मैंने कहा, जो जीवन को नहीं जानते उनको मौत दिखाई पड़ती है। जो जीवन को जानते हैं उनके लिए कोई मौत ही नहीं है। इसलिए मौत को जानने का तो उपाय है, जान लेंगे तो पाएंगे मौत नहीं है। लेकिन मौत से भागने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि भागने वाला तो मानता है कि मौत है। वह मौत उसका पीछा करेगी।
एक छोटी सी कहानी, अपनी चर्चा को मैं पूरा करूं। दमिश्क में एक राजा हुआ। उसके बाबत एक बड़ी काल्पनिक कहानी प्रचलित है। एक सुबह उसने पांच बजे के करीब सपना देखा। सपना देखा कि पीछे मौत खड़ी हुई है। वह एक बगीचे में खड़ा हुआ है एक झाड़ के पास और पीछे उसके मौत खड़ी हुई है। उसने पूछा, तुम कौन हो? उसने कहा, मैं मौत! और तुम्हें लेने को आ गई। आज सांझ को ठीक जगह और ठीक स्थान पर मुझे मिल जाना।
घबराहट में उसकी नींद खुल गई, किसी की भी खुल जाए। पांच बजे ही उसने अपने दरबार के जो विचारशील विद्वान थे, ज्योतिषी थे, पंडित थे, उनको बुलवा भेजा। और उसने कहा कि बड़ा अपशगुन हुआ है, बड़ा बुरा सपना देखा है। सपना देखा है कि मैं एक दरख्त के पास खड़ा हूं। मौत पीछे आ गई। मैंने पूछा, कौन हो? उसने परिचय दिया। और फिर उसने कहा कि आज सांझ कोई सूरज डूबने के बाद ठीक स्थान पर ठीक समय पर मिल जाना। पहुंच जाना। बस आज अंतिम विदा का दिन है। तब इसका क्या अर्थ है? मामला क्या है?
ज्योतिषियों ने कहा, समय खोने का और मामले को तय करने का और ग्रंथों
और शास्त्रों में खोजने की फुर्सत भी तो नहीं है अब। सांझ बहुत जल्दी हो जाएगी। तो उपाय यह है कि तुम भागो और जितनी दूर भाग सकते हो भाग जाओ। सांझ के पहले तुम जितने दूर निकल सकते हो निकल जाओ। अब इसमें विचार करने की फुर्सत नहीं है, नहीं तो सांझ तो विचार में ही हो जाएगी, हम निर्णय भी नहीं कर पाएंगे और मामला खत्म हो जाएगा। सूरज डूबने में देर ही कितनी है! सूरज

उगना शुरू हो गया था। तो अब सूरज डूबने में देर ही कितनी है! उगा हुआ सूरज जल्दी-जल्दी डूब ही जाता है। भाग जाओ जितनी जल्दी भाग सकते हो!
तेज से तेज घोड़ा और राजा भागा। प्राण बचाने की बात थी तो सारे प्राण छोड़ कर भागा। जितनी शक्ति थी घोड़े की, भगाया-भगाया सैकड़ों मील। सांझ सूरज डूबने लगा तो वह दूर निकल गया। उसने थोड़ी राहत की सांस ली, काफी फासला तय कर लिया था। और एक बगीचे में जाकर घोड़े को बांध रहा था एक दरख्त से और पाया कि सूरज डूब गया और मौत पीछे खड़ी है। उसने घबरा कर पूछा, क्यों? मौत ने कहा कि ठीक जगह और ठीक समय पर आ गए। यहीं तो बुलाया था।
काल्पनिक है कहानी, सुबह ही सपने में नहीं, पूरी ही सपने में देखी गई होगी समझ ले सकते हैं। लेकिन हम सब भी इसी कहानी के पात्र हैं। और जिससे भाग रहे हैं उसी की तरफ पहुंचे जा रहे हैं। कितने ही भागें और घोड़े को कैसा भी दौड़ाएं, और प्राण छोड़ दें, और भागते चले जाएं। आखिर में पाएंगे कि सही जगह पहुंच गए हैं जहां बुलाए गए थे। और तब पीछे मौत को खड़ा हुआ पाएंगे। उसके पहले कि मौत कहे कि ठीक जगह और ठीक समय पर आ गए, कुछ समय मिला हुआ है, उसका उपयोग हो सकता है। जो उसका उपयोग नहीं करता और नहीं जागता, वही अधर्म में है। जो उसका उपयोग कर लेता है और जाग जाता है, वह धर्म में प्रविष्ट हो जाता है।
धर्म में प्रविष्ट हों, ऐसी परमात्मा प्रेरणा दे। महावीर को प्रेम करते हैं, बुद्ध को प्रेम करते हैं, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम करते हैं, उनका प्रेम ऐसी प्रेरणा दे कि वह सत्य के प्रति जागें जिसकी कोई मृत्यु नहीं है, स्वयं को जानें जो अमृत है। और उससे भागने की नहीं, उसमें प्रवेश करने की बात है। यह हो सकता है। जैसे प्रत्येक बीज में अंकुर छिपा है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा छिपा है। और अगर बीज बीज रह जाए तो जिम्मा हमारे सिवाय और किसी का भी नहीं होगा। वह वृक्ष बन सकता है। परमात्मा ऐसी क्षमता, ऐसी अभीप्सा, ऐसी प्यास प्रत्येक को दे कि वह बीज वृक्ष बन सके। महावीर-जयंती के इस पुण्य-पर्व पर ये थोड़ी सी बातें कह कर मैं अपनी बात पूरी करता हूं। मेरी बातों को बड़े प्रेम और बड़ी शांति से सुना है, उससे अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

महावीर या महाविनाश
दसवां प्रवचन

अहिंसाः आचरण नहीं, अनुभव है

अहिंसा एक अनुभव है, सिद्धांत नहीं। और अनुभव के रास्ते बहुत भिन्न हैं, सिद्धांत को समझने के रास्ते बहुत भिन्न हैं--अक्सर विपरीत। सिद्धांत को समझना हो तो शास्त्र में चले जाएं, शब्द की यात्रा करें, तर्क का प्रयोग करें। अनुभव में गुजरना हो तो शब्द से, तर्क से, शास्त्र से क्या प्रयोजन है? सिद्धांत को शब्द के बिना नहीं जाना जा सकता और अनुभूति शब्द से कभी नहीं पाई गई। अनुभूति पाई जाती है निःशब्द में और सिद्धांत है शब्द में। दोनों के बीच विरोध है। जैसे ही अहिंसा सिद्धांत बन गई वैसे ही मर गई। फिर अहिंसा के अनुभव का क्या रास्ता हो सकता है?
अब महावीर जैसा या बुद्ध जैसा कोई व्यक्ति है तो उसके चारों तरफ जीवन में हमें बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे हम पकड़ लेते हैंः महावीर कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या पहनते हैं, किस बात को हिंसा मानते हैं, किस बात को अहिंसा। महावीर के आचरण को देख कर हम निर्णय करते हैं और सोचते हैं कि वैसा आचरण अगर हम भी बना लें तो शायद जो अनुभव है वह मिल जाए। लेकिन यहां भी बड़ी भूल हो जाती है। अनुभव मिले तो आचरण आता है, लेकिन आचरण बना लेने से अनुभव नहीं आता। अनुभव हो भीतर तो आचरण बदलता है, रूपांतरित होता है। लेकिन आचरण को कोई बदल ले तो अभिनय से ज्यादा नहीं हो पाता। महावीर नग्न खड़े हैं तो हम भी नग्न खड़े हो सकते हैं। महावीर की नग्नता किसी निर्दोष तल पर नितांत सरल हो जाने से आई है। हमारी नग्नता हिसाब से, गणित से, चालाकी से आएगी। हम सोचेंगे नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। तो फिर एक-एक वस्त्र को उतारते चले जाएंगे। हम नग्नता का अभ्यास करेंगे।
अभ्यास से कभी कोई सत्य आया है? अभ्यास से अभिनय आता है।
एक गांव के पास से मैं गुजर रहा था। एक मित्र संन्यासी हो गए हैं। उनका झोपड़ा पड़ता था पास, तो मैं देखने गया। जंगल में, एकांत में झोपड़ा है। पास पहुंच कर देखा मैंने कि अपने कमरे में वह नग्न टहल रहे हैं। दरवाजा खटखटाया तो देखा वह चादर लपेट कर आए हैं। मैंने उनसे पूछा, भूलता नहीं हूं, खिड़की से मुझे लगा कि आप नंगे टहल रहे थे, फिर चादर क्यों पहन ली है? उन्होंने कहा, नग्नता का अभ्यास कर रहा हूं। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र छोड़ता गया हूं। अब अपने कमरे में नग्न रहता हूं। फिर धीरे-धीरे मित्रों में, प्रियजनों में, फिर गांव में, फिर राजधानी में नग्न रहने का इरादा है। धीरे-धीरे नग्नता का अभ्यास कर रहा हूं, क्योंकि नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं है।
यह व्यक्ति भी नग्न खड़े हो जाएंगे। महावीर की नग्नता से इनकी नग्नता
का क्या संबंध होगा? मैंने उनसे कहा कि संन्यासी होने के बजाय सरकस में भर्ती हो जाओ तो अच्छा है। ऐसे भी संन्यासियों में अधिकतम सरकस में भर्ती होने की योग्यता रखते हैं। अभ्यास से साधी हुई नग्नता का क्या मूल्य है? भीतर निर्दोषता का कोई अनुभव हो, कोई फूल खिले सरलता का और बाहर वस्त्र गिर जाएं और पता न चले तो यह समझ में आ सकता है। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ता है आचरण, अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ता।
महावीर को हमने देखा तो दिखाई पड़ा आचरण। अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ सकता, लेकिन महावीर का आचरण सबको दिखाई पड़ सकता है। फिर हम उस आचरण को पकड़ कर नियम बनाते हैं, संयम का शास्त्र बनाते हैं, अहिंसा की व्यवस्था बनाते हैं और फिर उसे साधना शुरू कर देते हैं। फिर क्या खाना, क्या पीना, कब उठना, कब सोना, क्या करना, क्या नहीं करना--उस सबको व्यवस्थित कर लेते हैं, उसका एक अनुशासन थोप लेते हैं।
अनुशासन पूरा हो जाएगा और अहिंसा की कोई खबर न मिलेगी। अनुशासन से अहिंसा का क्या संबंध? सच तो यह है कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन भीतर की आत्मा को उघाड़ता कम है, ढांकता ज्यादा है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतना अनुशासन को सरलता से थोप सकता है। जितना बुद्धिमान आदमी हो उतना मुश्किल

होगा, उतना वह उस स्रोत की खोज में होगा जहां से आचरण आया है छाया की भांति।
इसलिए पहली बात मैंने कहीः अहिंसा अनुभव है। दूसरी बात आपसे कहता हूं
कि अहिंसा आचरण नहीं है। आचरण अहिंसा बनता है, लेकिन अहिंसा स्वयं आचरण नहीं है। इस घर में हम दीए को जलाएं तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी दिखाई पड़ती है। लेकिन दीया खिड़की के बाहर दिखाई पड़ती रोशनी का ही नाम नहीं है। दीया जलेगा तो खिड़की से रोशनी भी दिखाई पड़ेगी। वह उसके पीछे आने वाली घटना है जो अपने आप घट जाती है।
एक आदमी गेहूं बोता है तो गेहूं के साथ भूसा अपने आप पैदा हो जाता है, उसे पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन किसी को भूसा पैदा करने का ख्याल हो और वह भूसा बोने लगे तो फिर कठिनाई शुरू हो जाएगी। बोया गया भूसा भी सड़ जाएगा, नष्ट हो जाएगा। उससे भूसा तो पैदा होने वाला ही नहीं। गेहूं बोया जाता है, भूसा पीछे से अपने आप साथ-साथ आता है।
अहिंसा वह अनुभव है, वह आचरण है जो पीछे से अपने आप आता है, लाना नहीं पड़ता। जिस आचरण को लाना पड़े वह आचरण सच्चा नहीं है। जो आचरण आए, उतरे, प्रकट हो, फैले, पता भी न चले, सहज, वही आचरण सत्य है।
तो दूसरी बात यह है कि आचरण को साध कर हम अहिंसा को उपलब्ध न हो सकेंगे। अहिंसा आए तो आचरण भी आ सकता है। फिर अहिंसा कैसे आए? हमें सीधा- सरल यही दिखाई देता है कि जीवन को एक व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा हो जाएगी। लेकिन असल में जीवन को व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा नहीं होती। चित्त के रूपांतरण से अहिंसा पैदा होती है। और यह रूपांतरण कैसे आए, इसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझनी उपयोगी होंगी।
पहला तो यह शब्द अहिंसा बहुत अदभुत है। यह शब्द बिल्कुल नकारात्मक है। महावीर प्रेम शब्द का भी प्रयोग कर सकते थे, नहीं किया। जीसस तो प्रेम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद प्रेम शब्द का प्रयोग करने के कारण ही जीसस जल्दी समझ में आते हैं बजाय महावीर के। महावीर निषेधात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं। अहिंसा में वे कहना चाहते हैंः "हिंसा नहीं है।" वे और कुछ भी नहीं कहना चाहते। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा, वह अहिंसा होगी। अहिंसा को लाने का सवाल ही नहीं है। वह उस शब्द में ही छिपा है। अहिंसा को विधायक रूप से लाने का कोई सवाल ही नहीं है, कोई उपाय ही नहीं है।
इसे और एक तरह से देखना जरूरी है। हिंसा और अहिंसा विरोधी नहीं हैं, प्रकाश और अंधकार विरोधी नहीं हैं। अगर प्रकाश और अंधकार विरोधी हों तो हम अंधकार को लाकर दीए के ऊपर डाल सकते हैं; दीए को बुझना पड़ेगा। नहीं, अंधकार विरोधी नहीं है प्रकाश का, अंधकार अभाव है प्रकाश का। अभाव और विरोध में कुछ फर्क है। विरोधी का अस्तित्व होता है, अभाव का अस्तित्व नहीं होता। अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता, प्रकाश का अस्तित्व है। अगर अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो सीधा अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। न तो अंधेरा लाया जा सकता है, न निकाला जा सकता है। नहीं तो दुश्मन के घर में हम अंधेरा फेंक आएं। कुछ भी करना हो अंधेरे के साथ तो प्रकाश के साथ करना पड़ेगा। अंधेरा लाना हो तो प्रकाश बुझाना पड़ेगा। अंधेरा हटाना हो तो प्रकाश जलाना पड़ेगा।
इसलिए जब यहां अंधेरा मिटता है तो प्रकाश हो जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा मिट गया, इससे ऐसा लगता है जैसे अंधेरा था। लेकिन अंधेरा है सिर्फ प्रकाश का अभाव। प्रकाश आ गया--इतना सार्थक है। और प्रकाश आ गया तो अंधेरा कैसे रह सकता है? वह अब नहीं है। न वह कभी था।
महावीर निषेधात्मक अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि हिंसा है, हिंसा में हम खड़े हुए हैं। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम अहिंसा है। लेकिन अगर किसी ने अहिंसा को विधायक बनाया तो वह हिंसक रहते हुए अहिंसा साधने की कोशिश करेगा। हिंसक रहेगा और अहिंसा साधेगा। हिंसक के द्वारा अहिंसा कभी नहीं साधी जा सकती। और अगर साध भी लेगा तो उसकी अहिंसा में हिंसा के सब तत्व मौजूद रहेंगे। वह अहिंसा से भी सताने का काम शुरू कर देगा।
इसलिए मैं गांधी जी की अहिंसा को अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी जी की अहिंसा उस अर्थ में अहिंसा नहीं है जिस अर्थ में महावीर की अहिंसा है।

गांधी जी की अहिंसा में भी दूसरे को दबाने, दूसरे को बदलने, दूसरे को भिन्न करने का आग्रह है। उसमें हिंसा है। अगर हम ठीक से कहें तो गांधी जी की अहिंसा अहिंसात्मक हिंसा है।
मैं आपकी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो मैं कहता हूं वह ठीक है, आप उसे मानें, तो यह हिंसा है। और मैं अपनी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो ठीक है वह मानें नहीं तो मैं छुरी मार लूंगा, यह अहिंसा कैसे हो जाएगी?
अनशन कैसे अहिंसा हो सकता है? सत्याग्रह कैसे अहिंसा हो सकता है? उसमें दूसरे पर दबाव डालने का भाव पूरी तरह उपस्थित है। सिर्फ दबाव डालने का ढंग बदल गया है। एक आदमी कहता है कि मैं भूखा मर जाऊंगा अगर तुम नहीं बदले... ।
अंबेडकर के विरोध में गांधी जी ने अनशन किया। अंबेडकर झुक गया। लेकिन बाद में अंबेडकर ने कहा कि गांधी जी इस भूल में न पड़ें कि मेरा हृदय बदल गया है। मैं सिर्फ यह सोच कर कि मेरे कारण गांधी जी जैसा आदमी न मर जाए, पीछे हट गया हूं। और गांधी जी अपने पूरे जीवन में एक आदमी का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर पाए।
असल में, हिंसा से हृदय परिवर्तन हो ही नहीं सकता। हिंसा दमन है, दबाव है, जबरदस्ती है। हां, जबरदस्ती दो ढंग की हो सकती है। मैं आपको मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है; और मैं अपने को मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है। और मेरी दृष्टि में दूसरी जबरदस्ती ज्यादा खतरनाक है। पहली जबरदस्ती में आपके पास उपाय भी है सीधा सिर खड़ा करके लड़ने का। दूसरी जबरदस्ती में मैं आपको निःशस्त्र कर रहा हूं, आपका नैतिक बल भी छीन रहा हूं, आपको दबा भी रहा हूं।
अहिंसा अगर हिंसा के भीतर रहते साधी जाएगी तो ऊपर अहिंसा हो जाएगी, भीतर हिंसा मौजूद रहेगी। क्योंकि अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें नहीं हैं। गांधी जी के ख्याल में अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें हैं। अहिंसा को साधो तो हिंसा खत्म हो जाएगी। लेकिन कौन साधेगा अहिंसा को? हिंसक आदमी साधेगा तो अहिंसा भी साधन बनेगी उसकी हिंसा का। वह फिर अहिंसा से वही उपयोग लेना शुरू कर देगा जो उसने तलवार से लिया होगा।
पूछा जा सकता है कि महावीर ने जिंदगी भर सत्याग्रह क्यों नहीं किया? पूछा जा सकता है कि महावीर ने किसी को बदलने का आग्रह क्यों नहीं किया? सच तो यह है कि सत्याग्रह शब्द ही बेहूदा है। सत्य का कोई आग्रह नहीं
हो सकता। क्योंकि जहां आग्रह है, वहां सत्य कैसे टिकेगा? आग्रह असत्य का ही होता है। सब सत्याग्रह असत्य-आग्रह है। कैसे सत्य का आग्रह हो सकता है? महावीर कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी किया तो हिंसा शुरू हो गई। क्योंकि अगर मैंने यह कहा कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है तो मैंने हिंसा करनी शुरू कर दी, मैंने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। इसलिए महावीर सत्य का आग्रह भी नहीं करते। इसी से उनके स्यात की कल्पना है, इसी से उनके अनेकांत की धारणा का जन्म हुआ है।
एक छोटी सी कहानी से समझाना चाहूंगा। एक गांव में एक क्रोधी आदमी है जिसके क्रोध ने चरम स्थिति ले ली है। उसने अपने बच्चे को कुएं में धक्का देकर मार डाला। उसने अपनी पत्नी को मकान के भीतर करके आग लगा दी। फिर पछताया है, दुखी हुआ है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं। वह उनके पास गया और उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध को किस प्रकार मिटाऊं! मुझे कुछ रास्ता बताएं कि मैं इस क्रोध से मुक्त हो जाऊं। मुनि ने कहा कि सब त्याग कर दो, संन्यासी हो जाओ, सब छोड़ दो, तभी क्रोध जाएगा।
मुनि नग्न थे। उस व्यक्ति ने भी कपड़े फेंक दिए। वह वहीं नग्न खड़ा हो गया। मुनि ने कहा, अब तक मैंने बहुत लोग देखे संन्यास मांगने वाले, लेकिन तुम जैसा तेजस्वी कोई भी नहीं दिखा। इतनी तीव्रता से तुमने वस्त्र फेंक दिए! लेकिन मुनि भी न समझ पाए कि जितनी तीव्रता से कुएं में धक्का दे सकता है वह, उतनी ही तीव्रता से वस्त्र भी फेंक सकता है। वह क्रोध का ही रूप है।
असल में क्रोध बहुत रूपों में प्रकट होता है। क्रोध संन्यास भी लेता है।
इसलिए संन्यासियों में निन्यानबे प्रतिशत क्रोधी इकट्ठे मिल जाते हैं।
उसके कारण हैं।

उसने वस्त्र फेंक दिए हैं, वह नग्न हो गया है, वह संन्यासी हो गया है। दूसरे साधक पीछे पड़ गए हैं। उससे साधना में कोई आगे नहीं निकल सकता। क्रोध किसी को भी आगे नहीं निकलने देता। क्रोध ही इसी बात का है कि कोई मुझ से आगे न हो जाए। वह साधना में भी उतना ही क्रोधी है। लेकिन साधना की खबर फैलने लगी। जब दूसरे छाया में बैठे रहते हैं, वह धूप में खड़ा रहता है। जब दूसरे भोजन करते हैं, वह उपवास करता है। जब दूसरे शीत से बचते हैं, वह शीत झेलता है। उसके महातपस्वी होने की खबर गांव-गांव में फैल गई है। उसके क्रोध ने बहुत अदभुत रूप ले लिया है। कोई नहीं पहचानता, वह खुद भी नहीं पहचानता कि यह क्रोध ही है जो नए-नए रूप ले रहा है।
फिर वह देश की राजधानी में आया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आते हैं। देश की राजधानी में उसका एक मित्र है बचपन का। वह बड़ा हैरान है कि वह क्रोधी व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया! हालांकि नियम यही है। वह देखने गया उसे। संन्यासी मंच पर बैठा है। वह मित्र सामने बैठ गया। संन्यासी की आंखों से मित्र को लगा है कि वह पहचान तो गया। लेकिन मंच पर कोई भी बैठ जाए फिर वह नीचे मंच वाले को कैसे पहचाने? पहचानना बहुत मुश्किल है। फिर वह मंच कोई भी हो, चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे गुरु की हो। मित्र ने पूछा, आपका नाम? संन्यासी ने कहा, शांतिनाथ। फिर परमात्मा की बात करते रहे। मित्र ने संन्यासी से फिर वही प्रश्न किया। संन्यासी का हाथ डंडे पर गया। उसने कहा, बहरे तो नहीं हो? बुद्धिहीन तो नहीं हो? कितनी बार कहूं कि मेरा नाम है शांतिनाथ! मित्र थोड़ी देर चुप रहा। कुछ और बात चलती रही आत्मा-परमात्मा की। फिर उसने पूछा कि क्षमा करिए, आपका नाम क्या है? फिर आप सोच सकते हैं क्या हुआ। वह डंडा उस मित्र के सिर पर पड़ा। उसने कहा कि तुझे समझ नहीं पड़ता कि मेरा नाम क्या है? मित्र ने कहा कि अब मैं पूरी तरह समझ गया। यह पता लगाने के लिए ही तीन बार नाम पूछा है कि आदमी भीतर बदला है या नहीं बदला है।
अहिंसा कांटों पर लेट सकती है, भूख सह सकती है, शीर्षासन कर सकती है, आत्म-पीड़ा बन सकती है--अगर भीतर हिंसा मौजूद हो। दूसरों को भी दुख और पीड़ा का उपदेश दे सकती है। हिंसा भीतर होगी तो वह इस तरह के रूप लेगी, खुद को सताएगी, दूसरों को सताएगी और इस तरह के ढंग खोजेगी कि ढंग अहिंसक मालूम होंगे लेकिन भीतर सताने की प्रवृत्ति परिपूर्ण होगी।
असल में अगर एक व्यक्ति अपने अनुयायी इकट्ठा करता फिरता हो तो उसके अनुयायी इकट्ठा करने में और हिटलर के लाखों लोगों को गोली मार देने में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। असल में गुरु भी मांग करता है अनुयायी से कि तुम पूरी तरह मिट जाओ, तुम बिल्कुल न रहो, तुम्हारा कोई व्यक्तित्व न बचे, समर्पित हो जाओ पूरे। अनुयायी की मांग करने वाला गुरु भी व्यक्तित्व को मिटाता है सूक्ष्म ढंगों से, पोंछ देता है व्यक्तियों को। फिर सैनिक रह जाते हैं जिनके भीतर आत्मा समाप्त कर दी गई है। हिटलर जैसा आदमी सीधा गोली मार कर शरीर को मार देता है।
पूछना जरूरी है कि शरीर को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होंगे या फिर आत्मा को, व्यक्तित्व को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते हैं? कहना मुश्किल है। लेकिन दिखाई तो यही पड़ता है कि किसी के शरीर को मारा जा सकता है और हो सकता है कि व्यक्ति बच जाए, तब आपने कुछ भी नहीं मारा; और यह भी हो सकता है कि शरीर बच जाए और व्यक्ति भीतर मार डाला जाए, तो आपने सब मार डाला। अगर भीतर हिंसा हो, ऊपर अहिंसा हो, तो दूसरों को मारने की, दबाने की नई-नई तरकीबें खोजी जाएंगी।
और तरकीबें खोजी जाती हैं। यह भी हो सकता है कि आदमी सिर्फ इसीलिए एक तरह का चरित्र बनाने में लग जाए कि उस चरित्र के माध्यम से वह किसी को दबा सकता है, गला घोंट सकता है, और मैं पवित्र हूं, मैं संत हूं, मैं साधु हूं-- इसकी भावना से दूसरे की छाती पर बैठ सकता है, इस अहंकार को दूसरे की फांसी बना सकता है, इसकी पूरी संभावना है।
इसलिए महावीर अहिंसा की विधायक साधना का कोई प्रश्न ही नहीं उठाते। बात बिल्कुल दूसरी है उनके हिसाब से। उनके हिसाब से बात यह है कि मैं हिंसक हूं, दूसरे को दुख देने में मुझे सुख मालूम होता है; दूसरे के सुख से भी दुख मालूम होता है। यह हमारी स्थिति है, यहां हम खड़े हैं। अब क्या किया

जा सकता है? ऐसे आचरण को क्षीण किया जाए जो दूसरे का अहित करता हो और ऐसे आचरण को प्रस्तावित किया जाए जो दूसरे का मंगल करता हो? एक रास्ता यह है।
इस रास्ते को मैं नैतिक कहता हूं। और नैतिक व्यक्ति कभी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हो सकता।
गांधी जी को मैं नैतिक महापुरुष कहता हूं, धार्मिक महापुरुष नहीं। शायद उन जैसा नैतिक व्यक्ति हुआ भी नहीं। लेकिन वह नैतिक ही हैं। उनकी अहिंसा नैतिक तल पर है।
महावीर नैतिक व्यक्ति नहीं हैं। महावीर धार्मिक व्यक्ति हैं। और धार्मिक व्यक्ति से मेरा क्या प्रयोजन है? धार्मिक व्यक्ति से मेरा प्रयोजन है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी हिंसा को जाना-पहचाना और जिसने अपनी हिंसा के साथ कुछ भी नहीं किया, जो अपनी हिंसा के प्रति पूरी तरह ध्यानस्थ हुआ, जाग्रत हुआ, जिसने अपनी हिंसा की कुरूपता को पूरा-पूरा देखा और कुछ भी नहीं किया।
तो मेरी दृष्टि ऐसी है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की हिंसा को पूरी तरह देखने में समर्थ हो जाए और उसे पूरा पहचान ले, उसके अणु-परमाणुओं को पकड़ ले, उठने-बैठने, चलने में, मुद्रा में जो हिंसा है उस सबको पहचान ले, जान ले, साक्षी हो जाए, विवेक से भर जाए, तो वह व्यक्ति अचानक पाएगा कि जहां-जहां विवेक का प्रकाश पड़ता है हिंसा पर, वहां-वहां हिंसा विदा हो जाती है, उसे विदा नहीं करना होता। वह वहां से क्षीण हो जाती है, समाप्त हो जाती है। न उसे दबाना पड़ता है, न उसे बदलना पड़ता है। सिर्फ चेतना के समक्ष आते वह वैसे ही विदा हो जाती है जैसे सुबह सूरज निकले और ओस विदा होने लगे। वे ओस-कण विदा होते हैं सूरज के निकलते ही, उन्हें विदा करना नहीं होता। उतने ताप को वे झेलने में असमर्थ हैं।
चेतना का एक ताप है। महावीर जिसे तप कहते हैं वह चेतना का ताप है। अगर चेतना पूरी की पूरी व्यक्तित्व के प्रति जागरूक हो जाए तो व्यक्तित्व में जो भी कुरूप है वह रूपांतरित होना शुरू हो जाएगा। उसे रूपांतरित करना नहीं होगा।
कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरे एक मुसलमान मित्र हैं। हाई कोर्ट के वकील हैं। जिस गांव का मैं हूं वह उसी गांव के हैं। मेरे पास आए कोई साल भर हुआ। उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से सोचता हूं कि आपसे जाकर बात करूं। लेकिन नहीं आया, क्योंकि जब भी मैं आप जैसे लोगों के पास जाता हूं तो वे कहते हैं कि यह छोड़ो, वह छोड़ो। न मुझसे जुआ छूटता, न शराब छूटती, न मांस छूटता। बात वहीं अटक जाती है। कुछ भी नहीं छूटता। फिर मैं वहीं का वहीं रह जाता हूं। फिर मैंने उनसे पूछा, आज आप कैसे आ गए? उन्होंने कहा कि किसी के घर भोजन पर गया था और उन्होंने कहा कि आप तो कुछ छोड़ने को कहते नहीं। तो मैं सीधा यहीं चला आया हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं छोड़ने को क्यों कहूंगा? छोड़ने से मुझे कोई संबंध नहीं है। आप छोड़ो मत, जागो। आप कुछ देखने की कोशिश करो भीतर, कुछ निरीक्षण करो, कुछ होश से भरो, कुछ मूर्च्छा को तोड़ो। उन्होंने कहा, क्या किया जा सकता है? क्या मुझे जुआ नहीं छोड़ना पड़ेगा? शराब नहीं छोड़नी पड़ेगी?
मैंने उनसे कहा कि आप जिस चेतना की स्थिति में हैं उसमें शराब अनिवार्य है। अगर एक शराब छोड़ेंगे दूसरी शराब पकड़ेंगे, दूसरी शराब छोड़ेंगे तीसरी शराब पकड़ेंगे। और इतनी किस्म-किस्म की शराबें हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। अधार्मिक शराबें हैं, धार्मिक शराबें भी हैं। एक आदमी भजन-कीर्तन कर रहा है दो घंटे से और मूर्च्छित हो गया है। वह उतना ही रस ले रहा है भजन-कीर्तन में, वही रस मूर्च्छा का जो एक शराबी ले रहा है। मंदिर में भी शराबी इकट्ठे होते हैं। वहां भी मूर्च्छित होने की तरकीबें खोजते हैं। एक आदमी नाच रहा है, ढोल-मंजीरा पीट रहा है। उस नाच में, ढोल-मंजीरा पीटने में मूर्च्छित हो गया। अब वह शराब का ही मजा ले रहा है। बहुत किस्म की शराबें हैं।
मैंने उनसे कहा, लेकिन चेतना अगर शराब पीने वाली है तो आप शराब बदल सकते हैं, शराब नहीं छूट सकती। चेतना बदले तो कुछ हो सकता है। मैंने उन्हें महावीर का एक छोटा सा सूत्र कहा। महावीर कहते हैं, उठो तो विवेक से, चलो तो विवेक से, बैठो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से। विवेक का मतलब है कि

चलते समय पूरी चेतना हो कि मैं चल रहा हूं, बैठते समय पूरी चेतना हो कि मैं बैठ रहा हूं, उठते समय पूरी चेतना हो कि मैं उठ रहा हूं। बेहोशी में कोई कृत्य न हो पाए, सोए-सोए कोई कृत्य न हो पाए। होशपूर्वक जीना हो तो धीरे- धीरे भीतर के समस्त चित्त के प्रति जागना है।
और जागते ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। जाग कर रूपांतरण करना नहीं पड़ता है। बुद्ध जिसे सम्यक स्मृति कहते हैं, महावीर उसे विवेक कहते हैं, जीसस ने उसे अवेयरनेस कहा है, गुरजिएफ ने उसे सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है। कुछ भी नाम दिया जा सकता है, लेकिन एक ही बात है। हम सोए-सोए जीते हैं। मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। एक मित्र से बात कर रहे हैं। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई है। बुद्ध ने बात करते हुए मक्खी उड़ा दी है। बात जारी रखी है और मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक गए। मक्खी तो उड़ गई है, फिर रुक गए हैं। फिर दुबारा हाथ ले गए वहां जहां मक्खी थी, अब वह वहां नहीं है। साथी मित्र ने पूछा, आप क्या कर रहे हैं? बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे बातचीत करने में लीन था और मैंने मक्खी को बिल्कुल मूर्च्छित भाव से उड़ा दिया जैसे कोई बेहोश उड़ाता हो। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हूं जैसा कि मुझे उड़ाना चाहिए था।
तो मैंने अपने मित्र को कहा कि जीवन की क्रियाओं में होशपूर्वक जीने
का प्रयोग करो।
छह महीने बाद वह मेरे पास आए और मुझे कहा कि आपने मुझे धोखा दिया है। शराब पीनी मुश्किल होती चली जाती है, क्योंकि दो बातें एक साथ चलनी असंभव हैं। अगर मुझे होशपूर्वक जीना है तो मैं शराब नहीं पी सकता हूं। और अगर होशपूर्वक नहीं जीना है तो मैं शराब पी सकता हूं। लेकिन अब होशपूर्वक जीने में जो आनंद की अनुभूति शुरू हुई है वह शराब पीने से कभी नहीं मिली। एक और बात उन्होंने मुझे कही कि एक अदभुत अनुभव मुझे हुआ है कि जब मैं दुखी था तो शराब दुख को भुला देती थी। इधर अभी महीनों निरंतर जागने की कोशिश से सुख की एक धार भीतर बहनी शुरू हुई है, एक झरना भीतर फूटना शुरू हुआ है। शराब पीता हूं तो मैं भूल जाता हूं। शराब सिर्फ भुलाती है। सुखी आदमी को सुख भुला देती है, दुखी आदमी को दुख भुला देती है। और दुखी आदमी शराब खोजे, समझ में आता है। सुखी आदमी शराब कैसे खोज सकता है? तो उन्होंने कहा कि मुश्किल हो गया।
मैंने कहा, मुश्किल हो जाए बात अलग, लेकिन मुझसे उसकी बात मत करना। आप जागने का, ध्यान का प्रयोग जारी रखें।
मेरी दृष्टि में महावीर ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया। महावीर ने
तो ध्यान का एक उपदेश दिया। उस ध्यान से जो भी गुजरा, वह अहिंसक हो गया। उस ध्यान से गुजरने वाले को अहिंसक हो जाना पड़ा। उस ध्यान से जो गुजरेगा वह अहिंसक हो ही जाएगा। अहिंसा की अलग से शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अब महावीर के पीछे चलने वाले लोग हैं। वे "अहिंसा परमो धर्मः"
की तख्तियां लगाए हुए बैठे हैं। वे बैठे रहेंगे तख्तियां लगाए हुए और हिंसा चलती रहेगी। और वे अपने बच्चों को अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। वे सारी दुनिया में शोरगुल मचा रहे हैं कि अहिंसक हो जाना चाहिए सब को। और उन्हें शायद मूल सूत्र का पता ही नहीं है कि अहिंसक कोई होगा कैसे? भीतर चित्त जागे तो जागे चित्त से हिंसा विसर्जित होती है। जागे हुए चित्त में हिंसा नहीं रह जाती। जागा हुआ चित्त हिंसा से मुक्त हो जाता है, हिंसा से मुक्त होना नहीं पड़ता। और तब जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है।
अहिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा चली जाती है तो जो शेष रह जाती है वह अहिंसा है। ब्रह्मचर्य, सत्य विधायक शब्द हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य नकारात्मक शब्द हैं। यह सोचने जैसा है। असल में परिग्रह की वृत्ति विदा हो जाती है तो जो शेष रह जाता है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह को सीधा नहीं साधा जा सकता है। और कोई अगर अपरिग्रह को सीधा साधेगा तो वह परिग्रही हो जाएगा, अपरिग्रही नहीं। अगर कोई धन छोड़ेगा तो जितनी पकड़ उसकी धन के साथ थी, उतनी अब धन छोड़ा इस बात के साथ शुरू हो जाएगी।
मैं एक संन्यासी के पास ठहरा था। वह दिन में दो-तीन बार मुझसे कहे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। चलते वक्त सांझ को मैंने कहा, लात आपने कब मारी? उन्होंने कहा, कोई तीस साल हुए। तो मैंने कहा कि जाते वक्त

एक बात कह जाऊं, वह लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? लात लग ही नहीं पाई, बिल्कुल चूक गई। लाखों रुपए मेरे पास थे, यह भी अहंकार था। लाखों रुपए मैंने छोड़े, यह भी अहंकार है। और पुराने अहंकार से यह ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा जटिल और ज्यादा खतरनाक है। अगर कोई परिग्रह छोड़ेगा तो त्याग को पकड़ेगा।
मैं महावीर को त्यागी नहीं कहता हूं। महावीर ने कोई परिग्रह नहीं छोड़ा, इसलिए त्यागी का कोई सवाल नहीं है। महावीर का परिग्रह विदा हो गया है। जो शेष रह गया है वह अपरिग्रह है। कोई चोरी छोड़ेगा तो सिर्फ छोड़ा हुआ चोर होगा। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। भीतर चोरी जारी रहेगी। हाथ-पांव बांध लेगा, रोक लेगा अपने को छाती पर पत्थर रख कर कि चोरी नहीं करनी, लेकिन भीतर चोर होगा। कोई चोरी करने से थोड़े ही चोर होता है। लेकिन अगर कोई जागेगा और चोरी विदा हो जाएगी तो अचौर्य शेष रह जाएगा। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह नकारात्मक हैं। क्योंकि कुछ विदा होगा तो कुछ शेष रह जाएगा।
और यह बड़े मजे की बात है कि अगर हिंसा विदा हो जाए, परिग्रह विदा हो जाए, चोरी विदा हो जाए--अगर ये तीनों विदा हो जाएं तो अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह की जो चित्त-दशा होगी, उसमें सत्य का उदय होगा। इन तीन के विदा होने पर सत्य का अनुभव होगा। ये द्वार बन जाएंगे और सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य को कोई खोज नहीं सकता। हमें पता ही नहीं कि वह कहां है। हम उस स्थिति में आ जाएं जहां द्वार खुल जाए तो सत्य दिखाई पड़ेगा।
सत्य होगा इन तीन के द्वार से उपलब्ध अनुभव और ब्रह्मचर्य होगा उसकी अभिव्यक्ति। वह जो सत्य मिल गया वह जीवन के सब हिस्सों में प्रकट होने लगेगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ये तीन बनेंगे द्वार और तीन में अहिंसा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह चोरी कैसे करेगा, क्योंकि चोरी करने में हिंसा है। और जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह कैसे संग्रह करेगा, क्योंकि सब संग्रह के भीतर चोरी है। इसलिए अगर हम बाकी दो को विदा भी कर दें तो तीन बातें रह जाती हैंः अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य। अहिंसा के दो हिस्से हैंः अचौर्य, अपरिग्रह।
अहिंसक चित्त में सत्य का अनुभव होगा और ब्रह्मचर्य उसका आचरण होगा। लेकिन यह अहिंसा समाधि से, ध्यान से उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि बहुत से ध्यानी लोग हुए हैं जो अहिंसक नहीं हैं। जैसे रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी मांसाहारी है। रामकृष्ण मछली खाते हैं और विवेकानंद भी। तो विचार होता है कि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी अगर ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होकर मछलियों से मुक्त नहीं होता है तो मामला क्या है?
मेरी दृष्टि में महावीर का जो ध्यान है, उस ध्यान से गुजरने पर ही अहिंसा की उपलब्धि हो सकती है। वह जागने का ध्यान है। और रामकृष्ण का जो ध्यान है, वह जागने का नहीं, सो जाने का, मूर्च्छित हो जाने का ध्यान है। रामकृष्ण का ध्यान ठीक से समझा जाए तो वह सिर्फ मूर्च्छा है। इसलिए रामकृष्ण तीन-तीन, चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते हैं। मुख से फेन गिर रहा है, आंखें बंद हैं, हाथ-पैर अकड़ गए हैं। मेरी दृष्टि में उनकी चेतना भी खो गई है। वह उसी हालत में हैं जिस हालत में कोई हिस्टीरिया में हो। और इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोई अंतर नहीं होगा। हिंसा जारी रहेगी।
महावीर और बुद्ध की इस जगत को जो सबसे बड़ी देन है वह इस भांति के ध्यान
के प्रयोग हैं, जिस प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा होती है। और जिस ध्यान के प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा न होती हो, उस ध्यान के प्रयोग का अंतिम परिणाम ब्रह्मचर्य भी नहीं हो सकता है, क्योंकि कामवासना भी बहुत गहरे में हिंसा का ही एक रूप है।
जिसके भीतर गाली उठती है वह गाली देता है, क्रोध आता है तो क्रोध करता है, वह आदमी स्पष्ट है, सहज है, जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नहीं है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखंडी व्यक्ति है जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। पाखंडी व्यक्ति बाहर ज्ञानी जैसा होता है, भीतर

अज्ञानी जैसा होता है। पाखंडी का मतलब है भीतर अज्ञानी जैसा। उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, "अहिंसा परमो धर्मः" की तख्ती लगा कर बैठता है, सच्चरित्रवान दिखाई पड़ता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं।
कोई अहिंसा का अनुयायी नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। अहिंसा को आचरण से साधने कोई जाएगा तो अभिनय, पाखंड में पड़ जाएगा। सामने के द्वार से अहिंसक होगा, पीछे के द्वार से हिंसा जारी रहेगी। मिथ्या अहिंसा और भी खतरनाक है, क्योंकि वह अहिंसा मालूम पड़ती है और अहिंसा नहीं है। फिर उपाय क्या है? फिर उपाय सिर्फ एक है, क्योंकि अहिंसा है एक नकारात्मक स्थिति, हिंसा जहां नहीं है ऐसी स्थिति। और हिंसा में हम खड़े हैं। हम क्या करें? दो ही उपाय हैं। या तो हम हिंसा से लड़ें या अहिंसक होने की कोशिश करें। कोशिश से साधी गई अहिंसा कभी भी अहिंसा नहीं हो सकती। क्योंकि कोशिश करने वाला हिंसक है। और हिंसक ने जो कोशिश की है उसमें हिंसा मौजूद है। और हिंसक ने जो भी कोशिश की है, उसमें हिंसा प्रविष्ट हो जाएगी। फिर क्या करें?
एक ही उपाय है, अपनी हिंसा के साक्षी बन जाने का। कुछ भी न करें, करने
की बात ही छोड़ दें। मैं जैसा हूं--हिंसक, क्रोधी, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी--जैसा भी मैं हूं, मैं उसके प्रति जागा हुआ रह जाऊं और इस स्थिति में रहने की कोशिश करूं कि मैं जानूं जो भी हूं, बदलने की फिक्र ही न करूं, सिर्फ जानूं। बदलने की फिक्र में जान भी नहीं पाते हैं और अगर कोई जान ले तो बदल पाता है। ज्ञान ही रूपांतरण है, ज्ञान ही क्रांति है। अपनी हिंसा को जान लेना अहिंसा को उपलब्ध हो जाना है।
इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आपको अहिंसा का जो अनुभव होगा, वह नकारात्मक होगा। एक अर्थ में अहिंसा की स्थिति नकारात्मक है। हिंसा चली जाएगी तो जो शेष रह जाएगा वह अहिंसा है। इस अर्थ में वह नकारात्मक है। लेकिन जब अहिंसा प्रकट होगी और सारे जीवन से उसकी किरणें फूट पड़ेंगी, उससे ज्यादा कोई विधायक अनुभूति नहीं है।
इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात ही बंद कर दी है। क्योंकि अहिंसा का अनुभव हो जाए तो परमात्मा का अनुभव हो गया। कोई जरूरत न समझी उस बात की।
अहिंसा का पूर्ण अनुभव परमात्मा का अनुभव है।
हिंसा विदा हो सकती है, विदा की नहीं जा सकती। दीया जल जाए तो अंधेरा विदा हो जाता है। ध्यान जग जाए तो हिंसा विदा हो जाती है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मैं कोई पंडित नहीं हूं, न होना चाहता हूं। भगवान की कृपा से उस झंझट में, भूल में पड़ने का कोई मौका नहीं आया।
सौभाग्य है कि आप सब विद्वज्जनों ने शांति और प्रेम से मेरी बातें सुनीं। उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्नः आपने जो अहिंसा के संबंध में महात्मा गांधी और महावीर की दृष्टि को प्रस्तुत किया है, आप स्वयं हिंसक हैं या अहिंसक--अपनी सम्मति कहें।

मेरे कहने का क्या फर्क पड़ेगा! मैं तो यही कहूंगा कि मैं हिंसक हूं। क्योंकि यह कहना भी कि मैं अहिंसक हूं हिंसा हो जाएगी। तो यही समझें कि मैं हिंसक हूं। और मेरे कहने से क्या पता चलेगा कि मैं क्या हूं, क्या नहीं हूं। इसे बातचीत के बाहर छोड़ा जा सकता है सहज ही। और जितना बातचीत के बाहर छोड़ दें उतना आसान होगा। मुझे नहीं समझना है आपको, अहिंसा को समझना है। और अहिंसा को समझना हो तो "मैं" को बिल्कुल ही बाहर छोड़ देना चाहिए। न तो "मैं" समझा जा सकता है, न समझाया जा सकेगा। क्योंकि "मैं" तो बड़ी हिंसा हो जाएगी।
अभी-अभी दोपहर में मैं कह रहा था। एक व्यक्ति ने जाकर पूछा एक झेन फकीर से कि क्या आपको ईश्वर की उपलब्धि हो गई है? तो उस फकीर ने कहा कि अगर मैं कहूं कि उपलब्धि हो गई है तो जो जानते हैं वे मुझ पर हंसेंगे, क्योंकि

जिसे कभी खोया ही नहीं था उसकी उपलब्धि कैसी! अगर मैं कहूं कि मुझे उपलब्धि नहीं हुई तो तुम बिना कुछ जाने-समझे लौट जाओगे। और तब भी नुकसान होगा।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं हुई है। यह निपट मेरा मामला है। इससे क्या लेना-देना है। लेकिन अहिंसा के संबंध में मैं जो कुछ कह रहा हूं उस संबंध में कुछ पूछेंगे तो अच्छा होगा। अगर मेरे संबंध में कुछ पूछना हो तो मैं दुबारा आऊं तब फिर मैं अपने संबंध में बोलूं तो ठीक होगा।

प्रश्नः क्या महावीर से पहले इतने ऋषि-महर्षि हुए, उन्होंने अहिंसा
को नहीं समझा?

मुझे पता नहीं। ऋषि-महर्षि कहीं मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। समझा होगा, बहुत लोगों ने समझा होगा, क्योंकि महावीर कोई शुरुआत नहीं हैं जगत की और न महावीर कोई अंत हैं। बहुत लोग उस दिशा में गए होंगे। असल में जो भी कभी गया होगा वह अहिंसा से गया होगा। लेकिन शायद हमारे पास ऐतिहासिक रूप से जो निकटतम आदमी है, वह महावीर हैं, जिनके बाबत ज्यादा से ज्यादा हमें पता है। महावीर के पहले भी अहिंसा को अनुभव करने वाले लोग रहे होंगे, लेकिन महावीर सबसे बड़े स्पष्ट व्याख्याता हैं।
फिर यह भी होता है कई बार कि कोई आदमी जान ले तो जरूरी नहीं है कि बता सके। मैं जाऊं और चांदनी रात देखूं, तारे देखूं, और लौट कर आऊं और आप मुझसे कहें कि एक चित्र बना कर बता दें जो सौंदर्य आपने देखा है। हो सकता है कि मैं न बना सकूं, क्योंकि रात की चांदनी देखना एक बात है और चित्र बनाने की कला अलग बात है। बहुत लोगों ने अहिंसा देखी हो, लेकिन महावीर ने जिस ढंग से बताई है, शायद किसी शिक्षक ने नहीं बताई है।

प्रश्नः आपने बताया कि जब भी अहिंसा को शब्द देते हैं वह वाद या सिद्धांत का रूप धारण कर लेती है, वह अहिंसा हिंसा के रूप में परिणत हो जाती है। और आपने कहा कि विवेक द्वारा ही हम अपनी अनुभूति को जगा सकते हैं और कार्य का संपादन कर सकते हैं। तो मेरा प्रश्न यह है कि इस विवेक का स्फुरण कैसे हो? और जब आप बताएंगे कि विवेक के स्फुरण करने में यह पद्धति होगी, तो वह पद्धति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी!

ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। आपने दो-तीन बातें पूछीं जो कि महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि मैंने कहा कि अहिंसा को संगठित नहीं किया जा सकता। असल में सिर्फ घृणा के लिए संगठित होने की जरूरत है, शत्रुता के लिए संगठित होने की जरूरत है। प्रेम के लिए संगठित होने की जरूरत ही नहीं है। प्रेम अकेले ही काफी है। घृणा अकेले काफी नहीं है, इसलिए घृणा संगठन बनाती है। दुनिया के सब संगठन घृणा के ही संगठन हैं, हिंसा के ही संगठन हैं। और इसलिए जब घृणा का मौका आ जाता है तो लोग संगठित हो जाते हैं। जैसे भारत पर चीन का हमला हुआ तो लोग ज्यादा संगठित हो जाएंगे। हमला चला जाएगा, संगठन कम हो जाएगा। क्योंकि हमला घृणा को पैदा करेगा, हिंसा को पैदा करेगा।
असल में जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध है वह अकेला ही काफी है। वह दूसरे
को इकट्ठा करने नहीं जाता। दूसरे को इकट्ठा करने की कोई जरूरत ही नहीं। दूसरे को हम इकट्ठा तब करते हैं जब कुछ ऐसा करना हो जिसे अकेला करना कठिन हो जाए। प्रेम अकेले ही किया जा सकता है, अकेले ही बांटा जा सकता है। लेकिन संगठन की जरूरत है, क्योंकि हमें बड़ी हिंसाएं करनी हैं, बड़ी हत्याएं करनी हैं--राष्ट्रों के नाम पर, संप्रदायों के नाम पर, धर्मों के नाम पर।
तो जब भी संगठन होगा, उसके केंद्र में हिंसा होगी, घृणा होगी, चाहे वह संगठन किसी का भी हो। हो सकता है कि अहिंसकों का हो हिंसकों के खिलाफ। तो भी वह हिंसा ही होगी। संगठन मात्र हिंसात्मक होंगे। अहिंसात्मक संगठन का कोई अर्थ नहीं होता। अहिंसात्मक व्यक्ति अकेला ही काफी है। दस

अहिंसात्मक व्यक्ति भी मिल कर बैठ सकते हैं, लेकिन वे एक-एक ही होंगे। संगठन का कोई अर्थ नहीं है, यह मैंने कहा।
दूसरी बात आपने बहुत बढ़िया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का? और साथ में यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा!
बिल्कुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यहीं पड़ा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे? क्या उपाय है? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नहीं होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा, क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरूं! तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतरना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं तब तक तैर भी नहीं सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी में उतरना होगा।
लेकिन पहली बार पानी में उतरना तड़फड़ाना ही होगा, तैरना नहीं हो सकता। असल में तैरना क्या है? तड़फड़ाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तड़फड़ाएंगे, फिर तड़फड़ाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएंगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तड़फड़ाना चला गया। तैरना तड़फड़ाने का ही व्यवस्थित रूप है।
आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है।
तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नहीं है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा।
लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नहीं होती, बात आपके समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीर्थंकर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नहीं करता, फिर वह शास्त्र बन जाती है, नहीं तो किताब ही रह जाती है।
किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाती है वह शास्त्र है। जो किताब दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नहीं हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिए, बड़ी अदभुत हैं, बड़ी जरूरी हैं। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बड़े खतरनाक हैं। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो मेरे रास्ते से चलेगा वही पहुंचेगा, और जो मैंने कहा है, ऐसा ही करेगा तो पहुंचेगा, अन्यथा नरक है, अन्यथा नरक की अग्नि में सड़ना पड़ेगा, तब किताब शास्त्र हो गई। और जब कोई इसे इस तरह मान लेता है तो वह बाधक हो जाती है।
मैं जो कह रहा हूं वह कोई शास्त्र नहीं है। मैं कोई प्रमाण नहीं हूं। कोई आप्त-वचन नहीं है मेरा। मैं कोई तीर्थंकर नहीं हूं। मैं कोई सर्वज्ञ नहीं हूं। मैं एक अति सामान्य व्यक्ति हूं। जो मुझे दिखता है वह आपसे निवेदन कर रहा हूं। यह सिर्फ संवाद है। आपने सुन लिया, बड़ी कृपा है। मानने का कोई आग्रह ही नहीं है।
लेकिन सुनते वक्त अगर आपने विवेक से सुना, अगर जागे हुए सुना, और कोई चीज उस जागरण में आपको दिखाई पड़ गई, तो वह चीज आपकी है, वह मेरी नहीं है। कल मैं उस पर दावा नहीं कर सकता कि वह मेरी है। अगर आपने होशपूर्वक सुना, विचारपूर्वक सुना, समझा, सोचा, खोजा और कोई बात आपको मिल गई, तो वह आपकी है। इसलिए सत्य कभी किसी को दिया नहीं जा सकता। मैं आपको कोई सत्य नहीं दे सकता। लेकिन मैं जो कह रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं, उस बात करने के वक्त आप इतने जागे हुए हो सकते हैं, विवेक से भरे हुए हो सकते हैं कि कोई सत्य आपको दिखाई पड़ जाए। कई बार ऐसा भी होता है कि अज्ञानियों से भी सत्य मिल जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी भी सत्य नहीं दे पाता।
मैंने सुना है कि बंगाल में एक फकीर हुआ, राजा बाबू उनका नाम था। वह हाई कोर्ट के मजिस्ट्रेट थे, जस्टिस थे। रिटायर्ड हुए थे, साठ साल के थे।

सुबह के वक्त घूमने निकले हैं एक लकड़ी लेकर, रोज की आदत के अनुसार। एक मकान के सामने से निकले हैं। दरवाजा बंद है। घर के भीतर कोई मां, कोई भाभी, किसी बेटे को, किसी देवर को उठा रही है। उसे पता भी नहीं कि कोई बाहर राजा बाबू नाम का बूढ़ा आदमी जा रहा है। उसने भीतर अपने बेटे को कहा, राजा बाबू, उठो! अब बहुत देर हो गई, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? और बाहर राजा बाबू चले जा रहे हैं, उन्हें एकदम सुनाई पड़ाः राजा बाबू, उठो! सुबह हो गई, सूरज निकल आया है, कब तक सोए रहोगे?
वह छड़ी उन्होंने वहीं फेंक दी, दरवाजे पर नमस्कार किया--उस स्त्री के लिए जिसको कि पता भी नहीं होगा, क्योंकि वह तो घर के भीतर थी--घर वापस लौट आए। आकर कहा कि अब मैं जा रहा हूं। तो घर के लोगों ने कहा कि कहां जाते हो? तो उन्होंने कहा, राजा बाबू, उठो! सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? उन लोगों ने कहा, पागल हो गए हैं! क्या बातें कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि आज कुछ सुनाई पड़ गया, कुछ मिल गया। अब मैं जाता हूं। मैंने यह भी सुना है कि एक फकीर अपने गुरु के निवास पर बीस वर्षों तक रहा। उसे कुछ भी न मिला। सब समझाना व्यर्थ हो गया। फिर गुरु ने कहा कि अब तू समझना भी छोड़, क्योंकि समझने से बीस साल में नहीं मिला तो अब तू समझना छोड़ दे। अब तेरा मन हो तो तू बैठ जा, न मन हो तो उठ जा। समझना हो तो समझ, न समझना हो तो न समझ, सोना हो तो सो जा। जो तुझे करना हो कर। अब तू समझना छोड़ दे। क्योंकि समझना भी एक दिक्कत दे रहा है, क्योंकि समझना भी तो एक तनाव ले आता है।
किसी का नाम भूल गया हो, खोजते हैं, खो जाता है। फिर छोड़ देते हैं, फिर चाय पीने लगते हैं, गड्ढा खोदने लगते हैं बगीचे में--और अचानक ही वह नाम याद आ जाता है। समझना भी तनाव पैदा कर देता है।
उसने कहा, ठीक है, अब मैं समझना भी छोड़ता हूं। उसी दिन वह दरवाजे के बाहर निकला, बाहर पीपल का वृक्ष है। सूखे पत्ते गिर रहे हैं। पतझड़ है। वह खड़ा हो गया, पत्ते गिर रहे हैं सूखे। वह वापस लौट कर पहुंचा, गुरु के पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं समझ गया।
गुरु ने कहा कि मैं तो थक गया समझा-समझा कर, तू अब तक नहीं समझा।
उसने कहा, आज मैं समझने का ख्याल छोड़ कर बाहर द्वार पर जाकर खड़ा हुआ। पीपल के पत्ते गिर रहे हैं। पत्ते सूख गए हैं और गिर रहे हैं। मुझे वह सब दिख गया जो आपने बहुत बार समझाया। मुझे मृत्यु दिख गई और मैं मर गया उन पत्तों के साथ। अब मैं वह आदमी नहीं हूं जो रोज आया करता था। अब मैं एक सूखा पत्ता हूं। गुरु ने कहा कि अब तुझे मेरे पास आने की जरूरत भी नहीं है। अब बात खत्म हो गई है। पीपल ही तेरा गुरु है, उसी को नमस्कार कर और विदा हो जा।
अब पीपल को पता भी नहीं होगा। कैसे पता होगा? मैं समझाऊं तो उससे आप नहीं समझ जाएंगे। आप खुद समझेंगे तो ही समझेंगे। और वह समझ सदा आपकी अपनी होगी, वह मेरी नहीं हो सकती। हां, मैं एक मौका, एक अवसर पैदा कर सकता हूं समझाने की कोशिश का। हो सकता है कोई उस वक्त जागा हुआ हो, उसे सुनाई पड़ जाए कि राजा बाबू, उठो! कब तक सोए रहोगे? लेकिन यह शास्त्र नहीं बनता।
महावीर की वाणी शास्त्र नहीं बनती अगर हम महावीर को सर्वज्ञ और तीर्थंकर न बनाते। बुद्ध की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम बुद्ध को भगवान न बनाते। कृष्ण की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम उन्हें भगवान न बनाते। लेकिन हम बिना भगवान बनाए रुक नहीं सकते, क्योंकि बिना भगवान बनाए हमें समझना पड़ेगा। भगवान बनाने से झंझट उनकी तरफ हो जाती है, हमें समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।
हम शास्त्र को पकड़ लेते हैं, और पक्का कर लेना चाहते हैं कि महावीर आप्त हैं, उपलब्ध हैं, उनको ज्ञान मिल गया है, वे सर्वज्ञ हैं। अगर संदिग्ध हों तो हम फिर किसी और को खोजें। जीसस भगवान के बेटे हैं, मोहम्मद पैगंबर हैं, इस तरह हम पक्का विश्वास जुटा लेना चाहते हैं ताकि झंझट मिट जाए। फिर हम पकड़ लें। वह हमारा विवेक न जगाना पड़े। विवेक से बचने के लिए हम शास्त्र को पकड़ते हैं।
विवेक को जगाना हो तो पीपल के पत्ते भी जगा सकते हैं, जगत की कोई घटना
भी जगा सकती है, किताब भी जगा सकती है, किसी आदमी का बोलना भी जगा सकता है,

किसी आदमी का चुप होना भी जगा सकता है। समझना हो तो चुप भी समझ में आती है, न समझना हो तो बोला हुआ सत्य भी समझ में नहीं आता।
मैं कोई पद्धति की बात नहीं कर रहा हूं। विवेक कोई पद्धति नहीं हो सकती। विवेक का स्मरण आ सकता है। फिर आपको कूदना पड़ेगा, तैरना पड़ेगा, तड़फड़ाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आ जाएगा विवेक।
जिस दिन आ जाएगा उस दिन आपको लगेगा कि किसी का दिया हुआ नहीं आया, किसी गुरु का दिया हुआ नहीं, किसी शास्त्र का दिया हुआ नहीं। उस दिन आपको लगेगा कि मेरे ही भीतर सोया था जग गया है, मेरे भीतर सोया था जग गया है, जो उपलब्ध था वही पा लिया है, जिसे कभी नहीं खोया था वही मिल गया है।

प्रश्नः पहला प्रश्न यह है कि समाज का अहिंसा से क्या संबंध है? दूसरा प्रश्न यह है कि महावीर ने अहिंसा या सत्य की दो-ढाई हजार वर्ष पहले बात कही, उसका आज क्या मतलब हो सकता है? तीसरा प्रश्न यह है कि जो आप कहते हैं कि नैतिक अहिंसा अलग है और धार्मिक अहिंसा अलग है, अगर आप दोनों में से अहिंसा को हटा दें तो इसका मतलब यह है कि जब आप धर्म की बात पर आ जाते हैं तो नीति नष्ट हो जाती है!

जो प्रश्न आपने पूछे हैं उनका समाधान मैं करूंगा तो नहीं होगा। समाधान आप खोजेंगे तो मिल जाएगा। मैं कोशिश कर सकता हूं।
पहली बात आप पूछते हैं कि आज के समाज के साथ अहिंसा का क्या संबंध है? समाज का अहिंसा से कभी संबंध नहीं था। समाज तो हिंसक है और हिंसा पर
ही खड़ा है। अहिंसा का संबंध व्यक्तियों से है। अभी वह दिन दूर है जब कि सभी व्यक्ति अहिंसक हो जाएंगे और जो समाज होगा वह अहिंसक होगा। समाज का संबंध अभी अहिंसा से नहीं है, न अब तक कभी था। आगे संभावना है। कभी होगा, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध हो सकते हैं।
लेकिन अगर व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होते चले जाएं तो समाज उनसे निर्मित होगा, वह धीरे-धीरे अहिंसक होता चला जाएगा। अभी तक अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं, अहिंसक समाज पैदा नहीं हुआ है। महावीर अहिंसक होंगे, जैन थोड़े ही अहिंसक हैं! बुद्ध अहिंसक होंगे, बौद्ध थोड़े ही अहिंसक हैं! अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं अब तक, अहिंसक समाज नहीं पैदा हुआ। व्यक्ति बढ़ते चले जाएंगे और किसी दिन अहिंसक व्यक्तियों का पलड़ा भारी हो जाएगा। अहिंसक व्यक्तियों से एक अहिंसक समाज की संभावना भी प्रकट होगी। अभी कोई आशा नहीं है जल्दी।
दूसरी बात आप पूछते हैं कि ढाई हजार साल पहले महावीर ने अहिंसा की जो बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है? कहां बैलगाड़ी का जमाना और कहां जेट का जमाना! कहां महावीर को बिहार के बाहर जाना मुश्किल और कहां आदमी का चांद पर चला जाना!
बिल्कुल ठीक पूछते हैं आप। लेकिन इस बात का ख्याल नहीं है कि कुछ चीजें हैं जो न बैलगाड़ी पर यात्रा करती हैं और न जेट पर। कुछ चीजें हैं जिनका जेट से और बैलगाड़ी से कोई संबंध नहीं है। अंतर्यात्रा के लिए न तो बैलगाड़ी की जरूरत है और न जेट की। अगर अंतर्यात्रा में बैलगाड़ी की जरूरत होती तो महावीर की बात गलत हो जाती। अंतर्यात्रा तो आज भी वैसी ही होगी जैसी ढाई हजार साल पहले होती थी और करोड़ वर्ष बाद भी जब कोई भीतर जाएगा तो वही विधि है बाहर को छोड़ने की और भीतर जाने की।
भीतर जाने में कभी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। और जो भीतर है उसमें भी समय से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह समय के बाहर है। वह कालातीत है। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म इसी अर्थ में सनातन है। धर्म का अनुभव सनातन है, सामयिक नहीं है। उसका काल से कोई संबंध नहीं है। जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होगा, वह उसी सत्य को उपलब्ध होगा जिस सत्य को कभी कोई उपलब्ध हुआ या कोई कभी उपलब्ध होगा।
दो सत्य नहीं हैं। सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य चिरंतन है, वही है। उसे पाने के लिए हमारा मन बड़े अधैर्य में है। हम चाहते हैं कोई सस्ती तरकीब, कोई ऐसी तरकीब कि एक गोली खा लें और आत्मज्ञान उपलब्ध हो जाए। कोई ऐसी तरकीब कि एक बटन दबाएं और आत्मा उपलब्ध हो जाए। हम इस फिराक में हैं।

क्योंकि असल में शायद हमें आत्मा को उपलब्ध करने की कोई अभीप्सा ही नहीं है। सारी दुनिया में आदमी चाहता है कि सब कुछ अभी बन जाए, एकदम अभी हो जाए। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं, जो अभी अगर करना चाहेंगे
तो कभी न होंगी, क्योंकि अभी करने वाला चित्त इतना तनावग्रस्त होता है कि अभी नहीं कर सकता।
एक छोटी सी कहानी समझाऊं। कोरिया में भिक्षुओं की एक कहानी है। एक वृद्ध भिक्षु ने अपने जवान भिक्षु के साथ एक नदी को पार किया है। नाव से उतरे हैं, दोनों के ऊपर ग्रंथों का बोझ है, जैसा भिक्षुओं के ऊपर होता है। बोझ को लेकर उतरे हैं, जल्दी से केवट से पूछा है कि गांव कितनी दूर है, क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढलने पर गांव के दरवाजे बंद हो जाते हैं। सूरज ढलने के करीब है। हम पहुंच पाएंगे या नहीं! रात तो न हो जाएगी! जंगल है, अंधेरा है, खतरा है। केवट ने नाव को बांधते हुए धीरज से कहा कि अगर धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो। लेकिन अगर जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है।
उन दोनों ने जब यह बात सुनी तो कहा कि यह तो पागल आदमी है, इसकी बातों में पड़ना तो झंझट का काम है, भागो। क्योंकि यह कह रहा है कि धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो, जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। इस आदमी से क्या पूछना! दोनों भागे।
सूरज ढलने लगा है और वे भाग रहे हैं। अंधेरा होने लगा है, अंधेरा रास्ता है, पहाड़ी रास्ता है, अनजान है। बूढ़ा आदमी जो है, वह गिर पड़ा है, घुटने टूट गए हैं। वह केवट नाव बांध कर पीछे आया है और कह रहा है कि मैंने कहा था, मेरा बहुत बार का अनुभव है, जो धीरे गए हैं वे पहुंच गए हैं, जो जल्दी गए हैं वे जल्दी के कारण नहीं पहुंच पाए हैं।
एक चित्त की अवस्था हैः जल्दी! अभी! यह विक्षिप्त चित्त की अवस्था है। पश्चिमी देशों में चित्त जल्दी में है, इतनी जल्दी में कि वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। भीतर प्रवेश के लिए चाहिए अत्यंत शांत धैर्य। वह अभी भी हो सकता है; ऐसा भी नहीं है कि जन्मों के बाद ही होगा। अगर जन्मों के बाद की प्रतीक्षा हो तो अभी हो सकता है। और अभी करना हो तो जन्मों तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है।
आखिरी बात आपने यह पूछी है कि नैतिक अहिंसा मिथ्या अहिंसा है, सच्ची अहिंसा नहीं है। नैतिक अहिंसा के पीछे हिंसा मौजूद रहेगी। और एक धार्मिक अहिंसा है जो अहिंसा है इस अर्थ में कि वहां से हिंसा विदा हो गई है। तो आपने कहा कि इसका मतलब तो यह हुआ कि धर्म अनैतिक है!
हां, एक अर्थ में यही मतलब हुआ। अनैतिक के दो रूप हैं, एक तो नीति से नीचे और एक नीति से ऊपर। दोनों अनैतिक हैं। जो नीति से ऊपर उठते हैं वही धर्म को उपलब्ध होते हैं। नीचे भी उतरते हैं लोग। उनको हम अनैतिक कहते हैं।
अनैतिक शब्द ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिए कहना चाहिए अतिनैतिक। धर्म अतिनैतिक है, वह नैतिक नहीं है।
पापी भी अनैतिक है, वह नीति से नीचे उतर आया, उसने खुल कर हिंसा करनी शुरू कर दी। वह पापी है। नैतिक वह है जिसने हिंसा भीतर दबा ली और अहिंसा का बाना पहन लिया। यह सज्जन है, यह नैतिक है। धार्मिक वह है जिसकी हिंसा विदा हो गई है और अहिंसा ही शेष रह गई है। यह अतिनैतिक है, यह भी अनैतिक है। यह भी नीति के पार चला गया। इसको भी नैतिक नहीं कहा जा सकता।
महावीर की, बुद्ध की या कृष्ण की वाणी नैतिक नहीं है, अतिनैतिक है। और इसलिए जब पश्चिम में पहली बार भारतीय ग्रंथों का अनुवाद शुरू हुआ तो पश्चिम के विचारकों को तकलीफ मालूम पड़ी कि इनमें नीति का तो कोई उपदेश ही नहीं है! उपनिषदों के पूरे अनुवाद हो गए, लेकिन उन्हें मालूम हुआ कि कहीं कोई नीति का उपदेश ही नहीं है!
ऐसा होना ही चाहिए। धर्म तो नीति से बहुत ऊपर की बात है। संत सज्जन से बहुत भिन्न बात है। सज्जन थोपा हुआ दुर्जन है। भीतर मौजूद है दुर्जनता। ऊपर सज्जनता है। संत वह है जिसके सज्जन-दुर्जन दोनों विदा हो गए हैं। वहां कोई भी नहीं है। न नीति है, न अनीति है। वहां सब शांति है।

प्रश्नः आपने कहा कि बाह्य आचरण से सब हिंसक हैं। इसके साथ-साथ आपने कहा कि चूंकि रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद मांस खाते थे, इसलिए वे अहिंसक नहीं थे। साथ ही साथ आपने कहा कि बुद्ध और महावीर अहिंसक थे। बुद्ध तो मांस खाते थे, वे अहिंसक कैसे थे?

यह बात आपने अच्छी पूछी। मेरा मानना है कि आचरण से अहिंसा उपलब्ध नहीं होती। मैंने यह नहीं कहा कि अहिंसा से आचरण उपलब्ध नहीं होता। इसके फर्क को समझ लीजिए आप। हो सकता है कि मैं मछली न खाऊं। लेकिन इससे मैं महावीर नहीं हो जाऊंगा। लेकिन यह असंभव है कि मैं महावीर हो जाऊं और मछली खाऊं। इस फर्क को आप समझ लें। आचरण को साध कर कोई अहिंसक नहीं हो सकता, लेकिन अहिंसक हो जाए तो आचरण में अनिवार्य रूपांतरण होगा।
दूसरी बात यह कि मैंने बुद्ध और महावीर को अहिंसक कहा, लेकिन बुद्ध मांस खाते थे। बुद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाते थे। उसमें कोई भी हिंसा नहीं है। लेकिन महावीर ने उसे वर्जित किया किसी संभावना के कारण। जैसा कि आज जापान में है। सब होटलों के, दूकानों के ऊपर तख्ती लगी हुई है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है।
अब इतने मरे हुए जानवर कहां से मिल जाते हैं, यह सोचने जैसा है। बुद्ध चूक गए, बुद्ध से भूल हो गई। हालांकि मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं है, क्योंकि हिंसा का मतलब है कि मार कर खाना। मारा नहीं है तो हिंसा नहीं है। लेकिन यह कैसे तय होगा कि लोग फिर मरे हुए जानवर के नाम पर मार कर नहीं खाने लगेंगे! इसलिए बुद्ध से चूक हो गई है और उसका फल पूरा एशिया भोग रहा है।
बुद्ध की बात तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन बात के ठीक होने से कुछ नहीं होता; किन लोगों से कह रहे हैं, यह भी सोचना जरूरी है। महावीर की समझ में भी आ सकती है यह बात कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में क्या कठिनाई है। जब मर ही गया तो हिंसा का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जिन लोगों के बीच हम यह बात कह रहे हैं, वे कल पीछे के दरवाजे से मार कर खाने लगेंगे। वे सब सज्जन लोग हैं, वे सब नैतिक लोग हैं, बड़े खतरनाक लोग हैं। वे रास्ता कोई न कोई निकाल ही लेंगे, वे पीछे का कोई दरवाजा खोल ही लेंगे।
मैं बुद्ध और महावीर दोनों को पूर्ण अहिंसक मानता हूं। बुद्ध की अहिंसा में रत्ती भर कमी नहीं है। लेकिन बुद्ध ने जो निर्देश दिया है, उसमें चूक हो गई है। वह चूक समाज के साथ हो गई है। अगर समझदारों की दुनिया हो तो चूक होने का कोई कारण नहीं है।
एक मित्र यह पूछते हैं कि विवेक के लिए विवेक के प्रति जागना क्या अपनी अविवेक बुद्धि के साथ प्रतिहिंसा न होगी?
फिर आप मेरे विवेक का मतलब नहीं समझे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवेक से अविवेक को काटें। अगर काटें तो हिंसा होगी। मैं तो यह कह रहा हूं कि आप सिर्फ विवेक में जागें। कुछ है जो कट जाएगा, कट जाएगा इस अर्थ में कि वह था ही नहीं, आप सोए हुए थे इसलिए था, अन्यथा वह गया। कटेगा भी कुछ नहीं, अंधेरा कटेगा थोड़े ही दीए के जलाने से। इसलिए अंधेरे के साथ कभी भी हिंसा नहीं हुई है। वह नहीं रहेगा बस। विवेक जगेगा और अविवेक चला जाएगा। इसमें मैं हिंसा नहीं देख पाता हूं जरा भी।
आप यह कहते हैं कि यह तो ठीक दिखाई पड़ता है कि दीए को जलाया और अंधेरा चला गया। इसको हम सच मान सकते हैं, क्योंकि यह हमारा अनुभव है। दूसरे को कैसे सच मानें?
मैं कहता ही नहीं कि मानें। अनुभव हो जाएगा तो मान लेंगे। इसको मैं कहता भी नहीं कि मानें। मैं कहता हूं कि आप प्रयोग करके देखें। यदि संशय सच में ही जगा है तो प्रयोग करवा कर ही रहेगा। तभी संशय सच्चा है। तो प्रयोग करके देख लें। विवेक जग जाए और अगर अहिंसा रह जाए तो समझना कि मैं जो कहता था, सत्य नहीं कहता था। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हुआ है और न हो सकता है।

महावीर या महाविनाश
ग्यारहवां प्रवचन

अहिंसा-दर्शन

प्रिय चिदात्मन्,
मैं आपकी आंखों में झांकता हूं। एक पीड़ा, एक घना दुख, एक गहरा संताप, एंग्विश वहां मुझे दिखाई देते हैं। जीवन के प्रकाश और उत्फुल्लता को नहीं, वहां मैं जीवन-विरोधी अंधेरे और निराशा को घिरता हुआ अनुभव करता हूं। व्यक्तित्व के संगीत का नहीं, स्वरों की एक विषाद भरी अराजकता का वहां दर्शन होता है। सब सौंदर्य, सब लययुक्तता, सब अनुपात खंडित हो गए हैं। हम अपने को व्यक्ति, इंडिविजुअल कहें, शायद यह भी ठीक नहीं है। व्यक्ति होने के लिए एक केंद्र चाहिए, एक सुनिश्चित संगठन, क्रिस्टलाइजेशन चाहिए, वह नहीं है। उस व्यक्तित्व संगठन और केंद्रितता, इंडिविजुएशन के अभाव में हम केवल अराजकता, एनार्की में हैं।
मनुष्य टूट गया है। उसके भीतर कुछ बहुमूल्य, एसेंशियल खो गया और खंडित हो गया है। हम किसी एकता, यूनिटी के जैसे खंडहर और अवशेष हैं। वह एकता महावीर में, बुद्ध में, क्राइस्ट में परिलक्षित होती है। वे व्यक्ति हैं, क्योंकि वे स्वरों की अराजक भीड़ नहीं, संगीत हैं, क्योंकि वे स्व-विरोध से भरी अंधी दौड़ नहीं, एक सुनिश्चित गति और दिशा हैं।
जीवन अपने केंद्र और दिशा को पाकर आनंद में परिणत हो जाता है। व्यक्तित्व को और उसमें अंतर्निहित समस्वरता, हार्मनी को उपलब्ध कर लेना वास्तविक जीवन के द्वार खोलना है। उसके पूर्व जीवन एक वास्तविकता, एक्चुअलिटी नहीं, केवल एक संभावना है, एक भविष्य, पोटेंशियलिटी है। मनुष्य के व्यक्तित्व विघटन की यह दुर्घटना सारे जगत में घटी है। हम अपने ही से विच्छिन्न और पृथक हो गए हैं। हम एक ऐसे वृत्त हैं, जिसका केंद्र खो गया है और केवल परिधि ही शेष रह गई है। जीवन की परिधि पर दौड़ रहे हैं, दौड़ते रहेंगे और फिर गिर जाएंगे और एक क्षण को भी उसे नहीं जानेंगे जिसे विश्रांति कहते हैं। तेलघानी में कोल्हू के बैलों जैसी हमारी गति हो गई है।
जीवन परिधि ही नहीं है, केंद्र भी है, यह जाने बिना सब प्रयास, सब गति अंततः व्यर्थ और निस्सार हो जाती है। इसके ज्ञान के अभाव में श्रम की सब धाराएं दुख के सागर में ले जाती हैं। जीवन की परिधि पर तो केवल क्रियाएं, बिकमिंग हैं; सत्ता, बीइंग तो वहां नहीं है। मैं, मेरा अस्तित्व, मेरा होना, एक्झिस्टेंस तो वहां नहीं है। मैं अपनी प्रामाणिक सत्ता, आथेंटिकनेस में तो उस तल पर अनुपस्थित हूं। क्रिया, बिकमिंग के तल पर मुझे नहीं पाया जा सकता है। उससे कहीं और गहरे और गहराइयों, डेप्थ्स में उसे पाया जा सकता है जो मैं हूं।
इस गहराई को जाने बिना, इस आत्यंतिक रूप से आंतरिक से संबंधित हुए बिना जीवन एक भटकाव है, एक बोझिल यात्रा है। इस स्व से, इस सत्ता से संबंधित हुए बिना जीवन एक आनंद यात्रा में परिणत नहीं होता है।
मैं एक उखड़े हुए वृक्ष का स्मरण करता हूं। जब भी मनुष्य के संबंध में सोचता हूं, यह अनायास ही स्मृति में उभर आता है। न जाने क्यों मैं मनुष्य को वृक्ष से भिन्न नहीं समझ पाता हूं। शायद जड़ों, रूट्स के कारण ही यह समता चित्त में धर गई है। व्यक्ति अपने सत्ता केंद्र से टूट जाए तो उखड़े वृक्ष की भांति हो जाता है। स्वरूप से जो वियुक्त है, वह सत्ता से जड़ें खो रहा है। कैसा आश्चर्य है कि हम स्वयं से ही अपरिचित होते जा रहे हैं! जैसे वह दिशा जानने की ही नहीं है! जैसे वह कोई दिशा, डायरेक्शन ही नहीं है! यदि भूल-चूक से कोई अपने से मिल जाए, यदि अनायास कहीं स्वयं से साक्षात, एनकाउंटर हो जाए, तो जिससे मिलन हुआ है, उसे देख अवाक हो रह जाना पड़ेगा, पहचानना तो किसी भी तरह संभव नहीं है।
स्व से, स्वभाव से हमारी जड़ें उखड़ गई हैं। हम हैं, पर स्वयं में नहीं। सबसे परिचित हैं, पर स्वयं से अनजान और अजनबी, स्ट्रेंजर हो गए हैं। बाहर ज्ञान बढ़ा है, भीतर अज्ञान घना हो गया है। दीए के तले अंधेरा होने की बात

बहुत सच हो गई है। शक्ति आई है, शांति विलीन हो गई है। विस्तार हुआ है, गहराई नहीं आई है। असंतुलन और पक्षाघात से घिर गए हैं, जैसे कोई वृक्ष बाहर विस्तृत हो, पर भीतर उसकी जड़ें सड़ने लगी हों, ऐसा ही मनुष्य के साथ हुआ है। इससे दुख, विषाद और संताप पैदा हुआ है, निराशा और आसन्न मृत्यु की कालिमा बनी हुई है, जैसी किसी भी वृक्ष की भूमि से जड़ें ढीली होने पर होती है।
मनुष्य की भी जड़ें हैं और उसकी भी भूमि है। इस सत्य को पुनउर्दघोषित करने की आवश्यकता है। यह अत्यंत आधारित सत्य विस्मृत हो गया है। इस विस्मृति के कारण हम क्रमशः अपनी जड़ें अपने हाथों खो रहे हैं। एक सतत आत्मघात, स्युसाइड में हम लगे हैं। यह जड़ों को खोना, अपरूटेडनेस हमें निरंतर गहरे से गहरे दुख, विषाद और मृत्यु में ले जा रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति को मैं दुख से घिरा देखता हूं। और यह स्मरणीय है कि
जब एक व्यक्ति दुखी होता है, तो वह अनेकों के दुख का कारण बन जाता है। मैं यदि दुखी हूं, तो अनिवार्यतः दूसरों के दुख का कारण बन जाऊंगा। जो मैं हूं, वही मेरे संबंधों में व्याप्त हो जाता है।
यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि अपने संबंधों में मैं स्वयं को ही तो डालता और उंडेलता हूं, अन्यथा संभव नहीं है। मेरे संबंध मेरे ही प्रतिरूप और मेरे ही स्वर हैं। उनमें मैं ही प्रतिबिंबित और प्रतिध्वनित हूं। मैं ही उनमें उपस्थित हूं। इससे यदि मैं दुखी हूं, दुख हूं, तो दुख ही मुझ से प्रवाहित और प्रसारित होगा। सरोवर में जैसे लहर-वृत्त एक छोटे से केंद्र पर उठ कर दूर-दूर व्यापी हो जाते हैं, ऐसे ही मेरे व्यक्ति केंद्र पर जो संवृत्त जाग जाते हैं, वे मुझ तक ही सीमित नहीं रहते हैं, उनकी प्रतिध्वनियां दूर दिगंत तक सुनी जाती हैं। व्यक्ति में जो घटित होता है, वह बहुत शीघ्र अनंत में परिव्याप्त हो जाता है। व्यक्ति और विराट के बीच वस्तुतः सीमाएं नहीं हैं। वे अनंत मार्गों से संबंधित और अंतः-संवादित हैं।
मैं दुखी हूं, तो मैं दुख देने वाला हूं। न चाहूं, तब भी प्रतिक्षण मुझसे वह प्रवाहित हो रहा है। वह विवशता है। क्योंकि जो मेरे पास है, वही तो मैं दे सकता हूं; जो मेरे स्वयं के ही पास नहीं है, उसे चाह कर भी तो नहीं दिया जा सकता है। संबंधों में हम आकांक्षाओं को नहीं, अपने को ही देते हैं। शुभ आकांक्षाएं ही नहीं, मेरा शुभ होना आवश्यक है। मंगल कामनाएं ही नहीं, मेरा मंगल होना आवश्यक है। स्वप्न नहीं, सत्ता ली-दी जाती है।
इससे कितने ही लोग चाह कर भी न किसी को आनंद, न शांति, न प्रेम ही दे पाते हैं। उनकी शुभाकांक्षाएं असंदिग्ध हैं, पर उतना ही पर्याप्त नहीं है। उनके स्वप्न सच ही सुंदर हैं, पर सत्ता के जगत में उनका प्रभाव पानी पर खींची गई रेखाओं से ज्यादा नहीं है। उनसे काव्य तो बन सकता है, पर जीवन अस्पर्शित रह जाता है। हम देना चाहते हैं आनंद--और कौन नहीं देना चाहता है--पर दे पाते हैं दुख और विषाद। देना चाहते हैं प्रेम और जो दे पाते हैं, उसमें कहीं दूर भी प्रेम की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती है।
और तब कैसी एक रिक्तता, एम्पटीनेस, कैसी एक असफलता, फ्रूटलेसनेस, कैसी
एक व्यर्थता अनुभव होती है! कैसा सब हारा हुआ और पराजित लगता है! पराजय के इन क्षणों में सब दिशा-सूत्र खो जाते हैं, सब प्रयोजनवत्ता खो जाती है, सब अर्थ खो जाता है। शेष रह जाता है एक अवसाद और अकेलापन, लोनलीनेस, जैसे हम जगत में अकेले ही छूट गए हों। इन क्षणों में अपनी असमर्थता, इम्पोटेंस और असहायावस्था दिखती है।
शुभाकांक्षाओं के, स्वप्नों के अनुकूल परिणाम नहीं आते हैं, क्योंकि सत्ता उनके प्रतिकूल होती है। इससे जीवन-सरिता सार्थकता और कृतार्थता के सागर तक पहुंचती ही नहीं, व्यर्थता और अतृप्ति, फ्रस्ट्रेशन के मरुस्थल में विलीन और अपशोषित होती मालूम होती है। अर्थहीनता-बोध की इस मनःस्थिति में यदि थोड़ी सी भी अमूर्च्छा, अवेयरनेस हो, तो एक अत्यंत बद्धमूल भ्रम भंग हो सकता है। और उस भ्रम-भंगता के आलोक, डिसइल्यूजनमेंट में व्यक्ति जीवन के एक आधारभूत सत्य के प्रति जाग सकता है। उस विद्युत आलोक में दिख सकता है कि जीवन की अंतस-सत्ता से अर्थहीनता पैदा नहीं होती है। अर्थहीनता पैदा होती है इस भ्रांत धारणा से कि जो स्वयं के पास ही नहीं है,

उसे भी किसी को दिया जा सकता है; इस अज्ञान से कि जो सुगंध मुझ में ही नहीं है, वह भी संप्रेषित की जा सकती है। यह अज्ञान बहुत मूलव्यापी है। प्रेमशून्य प्रेम देना चाहते हैं; आनंदरिक्त आनंद वितरित करना चाहते हैं; दरिद्र समृद्धि दान करने के स्वप्नों से पीड़ित और आंदोलित होते हैं।
मैं देखता हूं कि जो स्वयं के पास नहीं है, उसे दिया भी नहीं जा सकता है। इसे सिद्ध करने को किसी तर्क और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यह तो सूरज की भांति साफ और स्पष्ट है। शायद सूरज से भी ज्यादा स्पष्ट है, क्योंकि आंखें न हों तब भी तो इसे देखा जा सकता है। किंतु यह सिक्के का एक ही पहलू है। एक दूसरा पहलू भी है। वह तो और भी आंखों से ओझल हो गया है। कभी-कभी कितना आश्चर्य होता है कि जो इतना निकट और इतना सहज जानने योग्य है, वह भी हमें विस्मृत हो जाता है। शायद जो बहुत स्पष्ट और बहुत निकट होता है, वह निकटता की अति के कारण ही दिखना बंद हो जाता है।
वह दूसरा पहलू यह है कि जो स्वयं के पास नहीं है, उसे किसी से लिया भी नहीं जा सकता है। जो स्वयं में नहीं है, उसे देना तो संभव है ही नहीं, लेना भी संभव नहीं है। जो भी अन्य से पाया जा सकता है, वह पाने के पूर्व स्वयं में उपस्थित होना चाहिए, तो ही उसके प्रति संवेदनशीलता, सेंसिटिविटी और ग्रहणशीलता, रिसेप्टिविटी होती है। मैं जो हूं उसे ही स्वीकार कर पाता हूं, उसके ही मुझ में द्वार, ओपनिंग और उसे आकर्षित करने की क्षमता होती है।
हम देखते हैं कि एक ही भूमि से कैसे भिन्न-भिन्न पौधे भिन्न-भिन्न रूप, रंग और गंध आकर्षित कर लेते हैं। उनमें जो है, वही उनमें चला भी आता है। वे जो हैं, वही वे पा भी लेते हैं। यही नियम है, यही शाश्वत व्यवस्था है।
प्रेम पाने को प्रेम से भरे होना आवश्यक है। जो घृणा से भरा है, वह घृणा को ही आमंत्रित करता है। विष से जिसने अपने को भर रखा है, सारे जगत का विष उसकी ओर प्रवाहमान हो जाता है। समान समान को, सजातीय सजातीय को पुकारता और उसका प्यासा होता है। अमृत को जो चाहता हो उसे अमृत से भर जाना होता है। प्रभु को जो चाहता है, उसे अपने प्रभु को जगा लेना होता है। जो चाहते हो, वही हो जाओ। जिससे मिलना चाहते हो, वही बन जाओ। आनंद को पकड़ने के लिए आनंद में होना आवश्यक है, आनंद ही होना आवश्यक है। आनंद ही आनंद का स्वागत और स्वीकार कर पाता है।
क्या देखते नहीं हैं कि दुखी चित्त ऐसी जगह भी दुख खोज लेता है जहां दुख है ही नहीं? पीड़ित पीड़ा खोज लेता है, उदास उदासी खोज लेता है। वस्तुतः वे जिसके प्रति संवेदनशील हैं, उसका ही चयन कर लेते हैं। जो भीतर है, उसका चयन भी होता है, और उसी का प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन, आरोपण भी होता है। हम जो हैं, उसी को खोज भी लेते हैं। जगत, जगत की स्थितियां दर्पण हैं, जिसमें हम अनेक कोणों से, अनेक रूपों में अपने ही दर्शन कर लेते हैं।
मैं जो देता हूं, वह भी मैं ही हूं। मैं जो लेता हूं, वह भी मैं ही हूं। मैं के अतिरिक्त मेरी कोई सत्ता, कोई अनुभूति नहीं है। उसके बाहर जाना संभव नहीं है। वही संसार है, वही मोक्ष है। वही दुख है, वही आनंद है। वही हिंसा है, वही अहिंसा है। वही विष है, वही अमृत है।
एक मंदिर के द्वार पर हुए विवाद का स्मरण आता है। सुबह की हवाओं में मंदिर की पताका लहरा रही थी। सूरज के स्वर्ण-प्रकाश में आंदोलित उस पताका को देख कर दो भिक्षुओं में विवाद हो गया था कि आंदोलन, मूवमेंट पताका में हो रहा था कि हवाओं में हो रहा था? किसी निकट से निकलते हुए तीसरे भिक्षु ने कहा थाः मित्र, आंदोलन मन, माइंड में हो रहा है।
सच ही, सब आंदोलन मन में हो रहा है और मन का हो रहा है।
मैं यदि भूलता नहीं हूं, तो महावीर ने कहा हैः यह आत्मा ही शत्रु है,
यह आत्मा ही मित्र है।
आत्मा की शुद्ध परिणति अहिंसा है, आत्मा की अशुद्ध परिणति हिंसा है।
वह व्यवहार की ही नहीं, मूलतः सत्व की सूचना है।
व्यवहार-शुद्धि का बहुत विचार चलता है। मैं जैसा देखता हूं, वह पकड़ और पहुंच उलटी है। व्यवहार नहीं, सत्व-शुद्धि करनी होती है। व्यवहार तो अपने से बदल जाता है। वह तो सत्व का अनुगामी है। ज्ञान परिवर्तित हो तो आचार

परिवर्तित हो जाता है। ज्ञान ही आधार और केंद्रीय है। व्यवहार उसी का प्रकाशन है। वह प्राण है, आचार उसका स्पंदन है।
साक्रेटीज का वचन हैः ज्ञान ही चरित्र है--नालेज इ.ज वर्च्यू।
ज्ञान से अर्थ जानकारी, इनफर्मेशन और पांडित्य का नहीं है। ज्ञान से अर्थ है प्रज्ञा का, सत्व, सत्ता के साक्षात से उत्पन्न बोध, कांशसनेस का। यह बोध, यह जागरूकता, यह प्रज्ञा ही क्रांति, ट्रांसफार्मेशन है। तथाकथित विचार-संग्रह से उत्पन्न ज्ञान इस क्रांति को लाने में असमर्थ होता है, क्योंकि वस्तुतः वह ज्ञान ही नहीं है। वह नगद और स्वयं का नहीं है। वह है उधार, वह है अन्य की अनुभूति से निष्पन्न और इस कारण मृत और निष्प्राण है। आत्मानुभूति हस्तांतरित होने में मृत हो जाती है। उसे जीवित और सप्राण हस्तांतरित करने का कोई उपाय नहीं है। सत्य नहीं, केवल शब्द ही पहुंच पाते हैं। इन शब्दों पर ही आधारित जो ज्ञान है, वह बोझ तो बढ़ा सकता है, मुक्ति उससे नहीं आती है।
मैं जिस ज्ञान को क्रांति कह रहा हूं, वह पर से संगृहीत नहीं, स्व से जाग्रत होता है। उसे लाना नहीं, जगाना है। उसका स्वयं में आविष्कार करना है। उसके जागरण पर आचार साधना नहीं होता है, वह आता है, जैसे हमारे पीछे हमारी छाया आती है। आगम इसी ज्ञान को ध्यान में रख कर कहते हैंः पढमं नाणं तओ दया। पहले ज्ञान है, तब अहिंसा है, तब आचरण है।
यह केंद्र के परिवर्तन से परिधि को परिवर्तित करने की विधि है। यही सम्यक विधि है। इसके विपरीत जो चलता है, वह बहुत मौलिक भूल में है। वह निष्प्राण से प्राण को परिवर्तित करने चला है, वह क्षुद्र से महत को परिवर्तित करने चला है, वह शाखाओं से मूल को परिवर्तित करने चला है। वैसे व्यक्ति ने अपनी असफलता के बीज प्रारंभ से ही बो लिए हैं।
यह स्वर्ण-सूत्र स्मरण रहे कि आचार से सत्ता परिवर्तित नहीं होती है, सत्ता से ही आचार परिवर्तित होता है। सम्यक ज्ञान सम्यक आचार का मूलाधार है। इससे ही हरिभद्र यह कह सके हैंः आत्मा अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा, क्योंकि आत्मा की अप्रमत्तता से ही अहिंसा फलित होती है और प्रमत्तता से हिंसा।
आया चेव अहिंसा, आया हिंसति निच्छओ अेस।
जो होई अप्पमत्तो अहिंसओ, हिंसओ इयरो।।
मैं यदि आत्म-जाग्रत, अप्रमत्त, अमूर्च्छित हूं, तो मेरा जो व्यवहार है, वह अहिंसा है।
मैं यदि स्वस्थित हूं, स्थितप्रज्ञ हूं, ब्रह्मनिमज्जित हूं, तो जीवन-परिधि पर मेरा जो परिणमन है, वह अहिंसा है।
अहिंसा प्रबुद्ध चेतना की जगत तल पर अभिव्यंजना है। अहिंसा आनंद में प्रतिष्ठित चैतन्य का आनंद प्रकाशन है। दीए से जैसे प्रकाश झरता है, ऐसे ही आनंद को उपलब्ध चेतना से अहिंसा प्रकीर्णित होती है। वह प्रकाशन किसी के निमित्त नहीं है, किसी के लिए नहीं है। वह सहज है और स्वयं है। वह आनंद का स्वभाव है।
एक साधु के जीवन में मैंने पढ़ा है। किसी ने उससे कहा था, शैतान को घृणा करनी चाहिए। तो उसने कहा था, यह तो बहुत कठिन है, क्योंकि घृणा तो अब मेरे भीतर है ही नहीं। अब तो केवल प्रेम है, चाहे शैतान हो और चाहे ईश्वर, उसके सिवाय देने को अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं तो उन दोनों में शायद अंतर भी नहीं कर पाऊंगा, क्योंकि प्रेम की आंख कब अंतर कर पाई है?
यह जब मैं सुनता हूं कि दूसरों पर दया करना अहिंसा है, तो सच ही मुझे बहुत हैरानी होती है। अहंकार कैसे-कैसे मार्ग अपनी तृप्ति के निकाल लेता है! उसकी आविष्कार क्षमता अदभुत है। अहिंसा का वस्तुतः किसी से कोई संबंध नहीं है, वह आत्म-उदभूत प्रकाश है। जिन पर वह पड़ता है उन्हें जरूर प्रेम और करुणा का अनुभव हो सकता है, लेकिन उस दृष्टि से वह चेष्टित नहीं है। यह भी सुनता हूं कि अहिंसा करनी चाहिए, जैसे वह भी कोई क्रिया है, जो कि की और न की जाती है। कभी-कभी सुंदर दिखने वाले उपदेश कितने व्यर्थ और अज्ञानपूर्ण हो सकते हैं, ऐसी बातें सुन कर उनका पता चलता है। प्रेम क्रिया, एक्टिविटी नहीं है, वह सत्ता की एक स्थिति, स्टेट ऑफ बीइंग है। प्रेम किया नहीं जाता है, प्रेम में हुआ जाता है। वह संबंध नहीं, सदभाव है।

यह बोध भी हो कि मैं प्रेम कर रहा हूं, तो वह प्रेम नहीं है। प्रेम या आनंद जब स्वभाव होते हैं, तो उनकी उपस्थिति का अनुभव कि मैं प्रेम कर रहा हूं, क्रिया और सत्ता में भेद का सूचक है। वह भेद यदि उपस्थित है, तो प्रेम चेष्टित है, सत्ता निष्पन्न नहीं है। और वैसा प्रेम प्रेम नहीं है। प्रेम जब संपूर्ण सत्ता से, संपूर्ण व्यक्तित्व, टोटल पर्सनैलिटी से आविर्भूत होता है, तो उसके पीछे उसे जानने वाला कोई नहीं रह जाता है। कोई प्रेम करने वाला नहीं होता है, केवल प्रेम ही होता है।
मैं अहिंसा से प्रेम का अर्थ लेता हूं। वह प्रेम की शुद्ध और पूर्ण अनुभूति है। प्रेम में जो किसी से संबंधित होने का भाव है, उस भाव के दूर करने के हेतु ही अहिंसा के नकारात्मक शब्द का प्रयोग होता रहा है। उस नकारात्मकता में प्रेम का निषेध नहीं है, निषेध है केवल प्रेम के एक संबंध, रिलेशनशिप होने का। प्रेम संबंध नहीं, स्थिति, स्टेट ऑफ कांशसनेस है, इस सत्य पर जोर देने के लिए अहिंसा शब्द का प्रयोग हुआ है। पर जो उसे प्रेम का ही अभाव समझ लेते हैं, वे बहुत बड़ी भूल कर देते हैं। वह प्रेम का अभाव नहीं है, केवल उनका अभाव है, जो प्रेम को परिपूर्ण और परिशुद्ध नहीं होने देते हैं। वह उन तत्वों का अभाव अवश्य है, जो उसे संबंध की स्थिति से सत्ता की स्थिति तक नहीं उठने देते हैं। वह राग, विराग, आसक्ति, विरक्ति का अभाव है। इन बंधनों से ऊपर उठ कर प्रेम वीतराग हो जाता है।
मैं वीतराग प्रेम को ही अहिंसा कहता हूं। अहिंसा प्रेम है, और इसलिए
वह नकारात्मक नहीं है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है, पर अहिंसा नकारात्मक नहीं है। वह भावस्थिति अत्यंत विधायक, पाजिटिव है। उससे अधिक विधायक और कुछ भी नहीं हो सकता है। प्रेम से अधिक जीवंत और विधायक और हो भी क्या सकता है?
प्रेम-अभाव हिंसा ही नकारात्मक, निगेटिव है, क्योंकि वह स्वभाव-विरोध है। मैं अपने प्रति अप्रेम, हिंसा नहीं चाहता हूं, और कोई भी नहीं चाहता है। प्रत्येक प्रेम का प्यासा क्यों है? अप्रेम की प्यास क्यों किसी को नहीं है?
मैं अनुभव करता हूं कि हम केवल स्वरूप को ही चाहते और चाह सकते हैं।
और यदि हम अपनी चाह को समझ लें, तो उस चाह में ही हम स्वरूप की ओर छिपे इंगित पा सकते हैं।
मैं प्रेम चाहता हूं, अर्थात मेरा स्वरूप प्रेम है।
मैं आनंद चाहता हूं, अर्थात मेरा स्वरूप आनंद है।
मैं अमृतत्व चाहता हूं, अर्थात मेरा स्वरूप अमृत है।
मैं प्रभुत्व चाहता हूं, अर्थात मेरा स्वरूप प्रभु है।
और स्मरण रखना है कि जो मैं चाहता हूं, वही प्रत्येक चाहता है। हमारी चाहें कितनी समान हैं! और तब क्या हमारी समान चाहें हमारे समान स्वरूप की उदघोषणा नहीं हैं?
"मैं" और "न मैं" में जो बैठा है, वह भिन्न नहीं है। इस अभिन्न चेतना की आकांक्षा अप्रेम, हिंसा के लिए नहीं है। इसलिए मैंने कहा कि हिंसा नकारात्मक है, क्योंकि वह स्वभाव-विरोध है। और जो नकारात्मक, निगेटिव होता है, वह विध्वंसात्मक, डिस्ट्रक्टिव होता है। अप्रेम विध्वंस शक्ति है। वह मृत्यु की सेविका है। उस दिशा से चलने वाला निरंतर गहरे से गहरे विध्वंस और मृत्यु और अंधेरे में उतरता जाता है। वह मृत्यु है, क्योंकि वह स्वरूप-विपरीत आयाम, डायमेंशन है।
अहिंसा जीवन की घोषणा है। प्रेम ही जीवन है।
अहिंसा शब्द में हिंसा की निषेधात्मकता का निषेध, निगेशन ऑफ निगेशन है। और मैंने सुना है कि निषेध के निषेध से विधायकता, पाजिटिविटी फलित होती है। शायद अहिंसा शब्द में उसी विधायकता की ओर संकेत है। फिर, शब्द की खोल तो निस्सार है। शब्द की राख के पीछे जो जीवित आग छिपी है, उसे ही जानना है। वह आग प्रेम की है। और प्रेम सृजन है। अप्रेम को मैंने विध्वंस कहा है, प्रेम को सृजन कहता हूं। जीवन में प्रेम ही सृजन का स्रोत है। विधायकता और सृजनात्मकता के चरम स्रोत और अभिव्यक्ति के कारण ही क्राइस्ट प्रेम को परमात्मा या परमात्मा को प्रेम कह सके हैं। सच ही सृजनात्मकता,

क्रिएटिविटी के लिए प्रेम से अधिक श्रेष्ठ और ज्यादा अभिव्यंजक अभिव्यक्ति खोजनी कठिन है।
मैं देखता हूं कि यदि अहिंसा की यह विधायकता और स्वसत्ता दृष्टि में
न हो, तो वह केवल हिंसा का निषेध होकर रह जाती है। हिंसा न करना ही अहिंसा नहीं है, अहिंसा उससे बहुत ज्यादा है। शत्रुता का न होना ही प्रेम नहीं है, प्रेम उससे बहुत ज्यादा है। यह भेद स्मरण न रहे तो अहिंसा-उपलब्धि केवल हिंसा-निषेध और हिंसा-त्याग में परिणत हो जाती है।
इसके परिणाम घातक होते हैं। नकार और निषेध की दृष्टि जीवन को विस्तार नहीं, संकोच देती है। उससे विकास और मुक्ति नहीं, कुंठा और बंधन फलित होते हैं। व्यक्ति फैलता नहीं, सिकुड़ने लगता है। वह विराट जीवन ब्रह्म में विस्तृत नहीं, क्षुद्र में और अहं में सीमित होने लगता है। वह सरिता बन कर सागर तक पहुंच जाता, लेकिन सरोवर बन सूखने लगता है। अहिंसा को जगाना सरिता बनना है, केवल हिंसा-त्याग में उलझ जाना सरोवर बन जाना है। नकार की साधना श्री और सौंदर्य और पूर्णता में नहीं, कुरूपता और विकृति में ले जाती है। वह मार्ग छोड़ने का है, पाने का और मर जाने का नहीं। जैसे कोई स्वास्थ्य का साधक मात्र बीमारियों से बचने को ही स्वास्थ्य-साधना समझ ले, ऐसी ही भूल वह भी है।
स्वास्थ्य बीमारी का अभाव ही नहीं, प्राणशक्ति, वाइटल फोर्स का जागरण है। वह प्राण की प्रसुप्त और बीज-शक्ति का जागना और वास्तविक बनना है। बीमारी से बचाव तो मुर्दों का भी हो सकता है, लेकिन उन्हें स्वास्थ्य नहीं दिया जा सकता है। बीमारियों से बच-बच कर कोई अपने को जिलाए रख सकता है, लेकिन स्वास्थ्य और जीवन को पाना बहुत दूसरी बात है।
धर्म-साधना में भी स्वास्थ्य-साधना के इस विज्ञान को याद रखना अत्यधिक उपादेय है।
एक साधु आश्रम में अतिथि था। उसके स्वागत में एक समारोह आयोजित था।
उस आश्रम के कुलपति ने अपने आश्रम और आश्रम के अंतेवासियों के परिचय में कहा था, हम हिंसा नहीं करते हैं, हम मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं करते हैं, हम परिग्रह नहीं करते हैं। इसी स्वर में उसने और बहुत सी बातें बताई थीं, जो कि साधु नहीं करते थे। वह अतिथि देर तक यह सब सुनता रहा था और अंत में उसने पूछा था, मैं यह तो समझ गया कि आप क्या नहीं करते हैं, अब कृपया यह और बताएं कि आप करते क्या हैं!
निश्चय ही, यही मैं भी पूछना चाहता हूं, "न करने" और "करने" के इस बहुमूल्य भेद की मैं भी याद दिलाना चाहता हूं।
अहिंसा को, या उस दृष्टि से धर्म को ही जिसने "न करने" की भाषा में समझा और पकड़ा है, वह बहुत आधारभूत भूल में पड़ गया है। शवीत्जर ने जिसे जीवन-निषेध, लाइफ निगेशन कहा है, वही उसकी चर्या हो जाती है। जीवन-विधेय, विधायकता, लाइफ एफर्मेशन के लक्ष्य से उसके संबंध-सूत्र विच्छिन्न हो जाते हैं। वह उपलब्धि के आरोहण को खो देता है, और केवल खोने और न होने में लग जाता है।
और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि खोने की इस सतत चेष्टा और आग्रह के बावजूद भी जिन्हें वह खोना चाहता है, उन्हें नहीं खो पाता है। संघर्ष से जिन्हें वह दूर करता है, वे किसी रहस्यमय ढंग से उसके निकट ही बने रहते हैं। वह विश्राम भी नहीं कर पाता है कि पाता है कि जिन्हें वह दूर छोड़ आया था, वे सब पुनः वापस लौट आए हैं। जिन्हें वह दमन करता है, वे वेग न मालूम क्यों और वेग पकड़ते प्रतीत होते हैं। जिन वासनाओं से वह युद्धरत है, जिनके सिरों को वह धड़ों से अलग कर फेंक देता है, वह अवाक रह जाता है कि वे सब पुनः- पुनः हजार-हजार सिर रख कर फिर उसे घेर कर कैसे खड़ी हो जाती हैं?
हिंसा, क्रोध या काम, सेक्स कोई भी केवल दमन से विलीन नहीं होता है। नकार और विरोध मात्र से ये वेग समाप्त नहीं होते हैं। उस भांति वे और सूक्ष्म होकर चित्त की और भी गहरी पर्तों पर सक्रिय हो जाते हैं। फ्रायड ने जिसे अचेतन मन, अनकांशस कहा है, वही दमन से उनका कार्य क्षेत्र बन जाता है। इस दमन, सप्रेशन और विरोध की दिशा से चल कर व्यक्ति विमुक्त तो नहीं, विक्षिप्त अवश्य हो सकता है।

वस्तुतः, जीवनानुभूतियों के जगत में निषेध के मार्ग से न कभी कुछ पाया गया, न कभी कुछ पाया जा सकता है; न कभी कुछ छोड़ा गया है, न कभी छोड़ा जा सकता है। वह दिशा ही पाने और छोड़ने की नहीं है। असल में, सब छोड़ने के पूर्व पाना होता है। श्रेष्ठ का मिलना ही अश्रेष्ठ का छूटना बनता है। हीरों के मिलने पर कंकड़ों पर मुट्ठी खोलनी नहीं पड़ती है, वह खुल जाती है।
मैं समस्त त्याग को इसी रूप में देख पाता हूं। वह श्रेष्ठ की उपलब्धि
पर उसके लिए स्थान बनाने से ज्यादा नहीं है। वह ज्ञान का अग्रगामी नहीं, अनुगामी है। जैसे गाड़ी के पीछे उसके चाकों के निशान बिना बनाए बनते जाते हैं, ऐसा ही आगमन उसका भी होता है। वह ज्ञान की सहज छाया है।
मैं हिंसा को, अधर्म को, अज्ञान को नकारात्मक कहता हूं, वैसे ही जैसे अंधेरा नकारात्मक है। अंधेरे की अपनी कोई सत्ता नहीं है, उसका कोई स्व अस्तित्व, सेल्फ एक्झिस्टेंस नहीं है। वह सत्ता नहीं, अभाव है। वह स्वयं का होना नहीं, प्रकाश का न होना है। वह प्रकाश की अनुपस्थिति है। यदि इस कक्ष में अंधेरा व्याप्त हो और हम उसे दूर करना चाहते हों, तो क्या करना होगा? क्या उसे संघर्ष से, धक्के देकर बाहर किया जा सकता है? क्या अंधेरे से किए गए सीधे युद्ध के परिणाम में उसकी मृत्यु हो सकती है?
मित्र, यह कभी नहीं होगा, उस मार्ग से चलने पर अंधेरा तो नहीं, मिटाने वाले अवश्य मिट सकते हैं। अंधेरे को मिटाने का उपाय अंधेरे को मिटाना नहीं, प्रकाश को जलाना है। जिसकी अपनी स्व सत्ता नहीं, उसे निषेध से मिटाना असंभव है। अभाव को न तो लाया जा सकता, न हटाया जा सकता है। अंधेरे को कहीं ले जाना भी संभव नहीं है। सत्ता ही लाई और सत्ता ही हटाई जा सकती है। अभाव के साथ सीधी कोई भी क्रिया नहीं होती है। उसके साथ सब व्यवहार अप्रत्यक्ष होता है। उसके साथ समस्त व्यवहार उसके माध्यम से होता है, जिसका कि वह अभाव है।
अहिंसा, प्रेम, आनंद, परमात्मा भावात्मक हैं, पाजिटिव हैं। उनकी सत्ता है। वे किसी के अभाव, अनुपस्थिति मात्र ही नहीं हैं। उनका स्वयं में होना है। इसलिए किसी के अभाव से उनका होना नहीं होता है। यद्यपि उनके अभ्युदय से हिंसा, दुख, अज्ञान आदि अंधेरे की भांति तिरोहित हो जाते हैं। शायद अंधेरा विलीन हो जाता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह तो था ही नहीं। वस्तुतः प्रकाशागमन पर इस सत्य का दर्शन होता है कि वह न तो था, न है।
यह अब कहा जा सकता है कि अहिंसा हिंसा-त्याग नहीं, आत्म-जागरण है। वह दुख-मुक्ति नहीं, आनंद-प्रतिष्ठा है। वह त्याग नहीं, उपलब्धि है। यद्यपि उसके आविर्भाव से हिंसा विलीन हो जाती है, दुख निरोध हो जाता है और परम त्याग फलित होता है।
अहिंसा को पाना है, तो आत्मा को पाना होगा। अहिंसा उसी साक्षात का परिणाम, कांसीक्वेंस है। उसे साधा नहीं जा सकता है। कृष्णमूर्ति ने पूछा है, क्या प्रेम भी साधा, कल्टीवेट किया जा सकता है? और उस प्रश्न में ही उत्तर भी दे दिया है। निश्चय ही साधा हुआ प्रेम प्रेम नहीं हो सकता है। वह या तो होता है या नहीं होता है। कोई तीसरा विकल्प नहीं है। वह सहज प्रवाहित हो तो ठीक, अन्यथा वह अभिनय और मिथ्या प्रदर्शन है। साधी हुई अहिंसा अहिंसा नहीं, अभिनय है। विचार और चेष्टा से जो आरोपित है, वह मिथ्या है।
सम्यक अहिंसा प्रज्ञा से प्रवाहित होती है, वैसे ही जैसे अग्नि से उत्ताप बहता है। आरोपण से आचरण में दिखता है, वह अंतस में नहीं होता है, नहीं हो सकता है। आचरण और अंतस की विपरीतता एक सतत अंतर्द्वंद्व बन जाता है। जिसे जीता है, उसे बार-बार जीतना पड़ता है। पर जीत कभी पूरी नहीं होती है। वह हो भी नहीं सकती है।
वस्तुतः परिधि कभी केंद्र को नहीं जीत सकती है, आचरण कभी अंतस को नहीं जीत सकता है। परिवर्तन का प्रवाह विपरीत होता है। वह परिधि से केंद्र की ओर नहीं, केंद्र से परिधि की ओर होता है। अंतस क्रांति से गुजरता है और आचरण में परिवर्तन होता है।
चेष्टा से लाया हुआ आचरण कभी भी सहज नहीं हो सकता है। वह आदत, हैबिट से ज्यादा नहीं है। मूल्य भी उसका उससे ज्यादा नहीं है। वह स्वभाव तो कभी बन

ही नहीं सकता है। आदत कभी भी स्वभाव नहीं है। स्वभाव है ही वह, जिसे बनाने का कोई प्रश्न नहीं है। आदत सृष्ट है, स्वभाव असृष्ट है। एक को निर्माण और एक को अनावरण करना होता है।
मित्र, स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होती, वह तो है। केवल उसे जानना है, केवल उसे उघाड़ना है। जैसे कोई सोता हो और उसे उठाना पड़े, ऐसा ही उसके साथ भी करना होता है।
मैं एक कुआं खुदता देखता था, तब मुझे स्मरण आया था कि स्वभाव को भी ऐसे
ही खोदना होता है। जल-स्रोत तो मौजूद थे, पर आवृत थे। वे बहने और फूट पड़ने को भी उत्सुक थे, पर अवरुद्ध थे। और जब अवरोध देने वाली मिट्टी की परतें दूर हो गई थीं, तो वे कैसे स्फुरित हो उठे थे! स्वभाव के साथ भी कुछ ऐसा ही है। बहने, विकसित और पुष्पित होने की वहां भी चिर प्रतीक्षा है। थोड़ा सा खोदना है, और जीवन एक बिल्कुल नए आयाम पर गतिमय हो जाता है। कल तक जो साध कर भी साध्य नहीं था, वह सहज हो जाता है। कल तक जो छोड़े-छोड़े भी नहीं छूटता था, वह अब खोज कर भी मिलता नहीं है।
जीवन-आयाम बदलने की इस कीमिया, अल्केमी को जानना ही धर्म है। अल्केमिस्ट इसकी ही खोज में थे। वे एक ऐसे रसायन की तलाश में थे, जिससे लोहा स्वर्ण में बदल सके। जीवन जैसा पाया जाता है, वह लोहा है; जीवन जैसा हो सकता है, वह स्वर्ण है। और यदि बहुत ठीक से देखें, तो लोहा केवल आवरण है, वस्त्र है, स्वर्ण नित्य भीतर उपस्थित है। सद-आचार, अहिंसा स्वभाव का उदघाटन है, स्वरूप का अनावरण है।
महावीर ने उसे इसी अर्थ में लिया है। जो स्वयं में स्थित है, वही अहिंसा को उपलब्ध है। जो आचार केवल आचरण है, स्वभाव की सहज स्फुरणा, स्पांटेनियस एक्सप्रेशन नहीं, वह ब्रह्म में नहीं और गहन अहं में ले जाता है। उससे अहंकार, ईगो और परिपुष्ट होता है। वह उस दिशा से भी भरता और बलिष्ठ होता है। तथाकथित साधु और संन्यासी में जो प्रगाढ़ दंभ परिलक्षित होता है, वह अनायास ही नहीं है। उसके मूल में अतिचेष्टा से आरोपित आचरण और प्रयत्न साध्य चरित्र है। यह कमाया हुआ चरित्र वैसे ही अहंकार-पूर्ति का साधन बन जाता है, जैसे कमाया हुआ धन बन जाता है। चरित्र भी परिग्रह और संपत्ति का रूप ले लेता है।
असल में जो भी कमाया और अर्जित किया जाता है, वह मैं को भरता है, क्योंकि अर्जन उसकी ही विजय का रूप ले लेता है। कैसा आश्चर्य है कि अर्जित त्याग भी परिग्रह हो जाता है और अर्जित विनय में भी अहंकार उपस्थित होता है! क्या तथाकथित विनय में झुके सिर के पीछे अक्सर दंभ में उठे सिर के दर्शन नहीं हो जाते हैं?
एक बार एक साधु से मिलना हुआ था। उन्होंने मुझ से कहा था, मैंने लाखों
की संपत्ति पर लात मार दी है। मैं निश्चय ही सुन कर हैरान हो गया था। फिर उनसे पूछा था, यह लात आपने कब मारी? वे बहुत गौरव से बोले थे, कोई तीस वर्ष हुए।
उनसे मिल कर लौटते समय मैं राह में सोचता आया था कि जो त्याग किया गया
हो, वह अहंकार के बाहर नहीं ले जाता है। एक दिन वे इस अहंकार से भरे रहे होंगे कि उनके पास लाखों हैं, आज वे इससे भरे हैं कि उन्होंने लाखों पर लात मार दी है।
त्याग आए तो सम्यक, किया जाए तो असम्यक हो जाता है। और यह धर्म की समस्त साधना के संबंध में सत्य है। अहंकार के मार्ग बहुत सूक्ष्म हैं। वह बहुत रहस्यमय है और उन जगहों पर भी वह उपस्थित हो जाता है, जहां उसके होने की कल्पना नहीं होती है और जहां ऊपर से उसके दर्शन बिल्कुल भी नहीं होते हैं। उसके स्थूल रूप तो दिखाई पड़ते हैं, इसलिए वे उतने घातक भी नहीं हैं। पर सूक्ष्म रूप बहुत घातक हैं, क्योंकि वे साधारणतः दिखाई नहीं पड़ते हैं, इसलिए उनसे बहुत आत्मवंचना होती है। धार्मिक, त्यागी, ज्ञानी, अहिंसक आदि होने का अहंकार वैसा ही है।
नीति, मारेलिटी अध्यात्म, स्प्रिचुएलिटी की स्फुरणा है। और जो तथाकथित आरोपित नैतिकता के अहंकार से परितृप्त हो जाते हैं, वे उस अलौकिक अध्यात्म-स्फुरणाजन्य नीति से वंचित रह जाते हैं जहां अहंकार की छाया भी प्रवेश नहीं कर पाती है। सूर्य के प्रकाश में जैसे ओस-कण विलीन हो जाते

हैं, ऐसे ही आत्मानुभूति के प्रकाश में अहंकार वाष्पीभूत हो जाता है। वह अज्ञान और अंधकार का प्रवासी है। उसके प्राण, श्वास-प्रश्वास उसी से निर्मित हैं। अज्ञान के अभाव में उसका जीवन संभव नहीं है।
अज्ञान अहंकार है। ज्ञान अहंकार-मुक्ति है। अज्ञान आचरण अहंचर्य है। ज्ञान आचरण ब्रह्मचर्य है। अहंचर्य हिंसा है। ब्रह्मचर्य अहिंसा है। मैं-भाव हिंसा में ले जाता है। वह भाव आक्रामक, एग्रेसिव है। समस्त हिंसा उसके ही केंद्र पर आवर्तित होती है। अज्ञान में सत्ता पर मैं आरोपित हो जाता है। आत्मा में, जो पतित हो जाती है, वह जो वस्तुतः नहीं है उसकी प्रतीति होने लगती है। यह मैं विश्वसत्ता से पृथक और विरोध में खड़ा हो जाता है। फिर उसे प्रतिक्षण स्वरक्षा में संलग्न होना पड़ता है। मिटने का एक सतत भय उसे घेरे रहता है। एक असुरक्षा, इनसिक्योरिटी चौबीस घंटे उसके साथ बनी रहती है। वह कागज की नाव है और किसी भी क्षण उसका डूबना हो सकता है। वह ताशों का घर है और हवा का कोई भी झोंका उसे नष्ट कर सकता है। यह भय, फियर हिंसा का जन्म है। हिंसा अपने मूल मानसिक रूप में भय ही है। यह भय आत्मरक्षा से आक्रमण तक विकसित हो सकता है। वस्तुतः तो आक्रमण भी आत्मरक्षण का ही रूप है। शायद मैक्यावेली ने कहा है कि आक्रमण आत्मरक्षा का सर्वोत्तम उपाय है। भय यदि आत्मरक्षण तक ही सीमित रहे, तो अंततः कायरता पैदा हो जाती है। वही भय आक्रामक होकर वीरता जैसा दिखाई पड़ता है। पर कायरता हो या तथाकथित वीरता, भय दोनों में ही उपस्थित रहता है, और वही दोनों का चालक है। जिनके हाथ में तलवार दिखाई देती है वे, और वे भी जो पूंछ दबा कर कहीं छिप रहते हैं, दोनों ही भय से संचालित हैं।
यह जानना आवश्यक है कि भय क्या है, क्योंकि जो भयग्रस्त हैं, कभी अहिंसक नहीं हो सकते हैं। और यदि भयग्रस्त व्यक्ति अहिंसक होने की चेष्टा करे, तो वह केवल कायर हो पाता है, अहिंसक नहीं। इतिहास और अनुभव इसके बहुत और सबल प्रमाण देता है। अहिंसा का आधार अभय, फियरलेसनेस है। अभय के अभाव में अहिंसा संभव नहीं है। महावीर और बुद्ध ने अभय को अहिंसा की अनिवार्य शर्त माना है।
मैं देखता हूं कि मनुष्य की संपूर्ण चेतना ही भय से घिरी और बनी है। उसके मन के किसी तल पर वह सदा ही मौजूद है। यह भय, चाहे उसके प्रकटन के रूप कोई भी हों, मूलतः मृत्यु का भय है। जीवन भर मृत्यु घेरे रहती है। वह प्रतिक्षण आसन्न है। किसी भी घड़ी और किसी भी दिशा से उसका आगमन हो सकता है। कभी भी संभावित इस मृत्यु से भय स्वाभाविक ही है। एक तो वह एकदम अपरिचित है, और दूसरे मनुष्य उसके सामने पूर्ण विवश है। अपरिचित और अनजान से भय मालूम होता है। जीवन असह्य हो, तब भी कम से कम परिचित तो है। मृत्यु अज्ञात, अननोन में ले जाती है। यह अज्ञात भय देता है। फिर उस पर हमारा कोई वश नहीं है। हम उसके साथ कुछ कर नहीं सकते हैं।
यह विवशता हमारे अहंकार को आमूल खंडित कर देती है। जिस अहंकार के पोषण को हमने जीवन समझा था, वह टूटता और नष्ट होता दिखता है। वही तो हमारा होना था! वही तो हम थे! और इससे मृत्यु जीवन का अंत मालूम होती है। हम क्या हैं? शरीर और चित्त, और उन दोनों के जोड़ से फलित अहंकार! लेकिन मृत्यु की लपटें तो उन्हें राख करती हुई मालूम होती हैं। उनके पार और अतीत कुछ भी तो शेष बचता नहीं दिखता है। फिर मनुष्य कैसे भयभीत न हो? वह कैसे अपने को सांत्वना दे?
ऐसी स्थिति में भय स्वाभाविक है, और इस भय से बचाव के लिए व्यक्ति कुछ
भी करने को हो जाता है। इस भय से ही हिंसा के अनेक रूपों की उत्पत्ति होती है। इसलिए मैं कहता हूं कि भय ही हिंसा है और अभय अहिंसा है। हिंसा से मुक्त होने के लिए भय से मुक्त होना होता है। भय से मुक्त होने के लिए मृत्यु से मुक्त होना होता है। मृत्यु से मुक्त होने के लिए स्वयं को जानना होता है।
मैं पर को जानता हूं, स्व को नहीं जानता हूं। यह कैसा आश्चर्य है! क्या इससे भी ज्यादा आश्चर्य की कोई और बात हो सकती है?
यह कैसा रहस्यपूर्ण है कि मैं बाहर से परिचित और अंतस से अपरिचित हूं!
यह आत्म-अज्ञान ही जीवन के समस्त दुख, अनाचार और अमुक्ति का कारण है।

ज्ञान की शक्ति तो मुझ में है, अन्यथा मैं पर को, बाहर को भी कैसे जानता? वह तो अविच्छिन्न मुझ में उपस्थित है। मैं जागता हूं, तो वह है। मैं सोता हूं, तो वह है। मैं स्वप्न में हूं, तो वह है। मैं स्वप्नशून्य सुषुप्ति में हूं, तो वह है। मैं जागने को, निद्रा को, स्वप्न को, सुषुप्ति को जानता हूं। मैं उनका द्रष्टा हूं, उनका ज्ञान हूं। मैं ज्ञान हूं, क्योंकि जो मुझ में अविच्छिन्न है, यह मेरा स्वरूप ही है। ज्ञान के अतिरिक्त मुझ में कुछ भी अविच्छिन्न, कांटिन्यूअस नहीं है। वस्तुतः मैं ज्ञान से पृथक नहीं हूं। मैं ज्ञान ही हूं। यह ज्ञान ही मेरी सत्ता, मेरी आत्मा है।
मैं ज्ञान हूं, इसलिए पर को जान रहा हूं। मैं ज्ञान हूं, इसलिए स्व को जान सकता हूं।
यह बोध भी कि मैं अपने को नहीं जानता हूं, स्व-ज्ञान की ओर बहुत बड़ा चरण है।
मैं पर को देख रहा हूं, इसलिए पर को जान रहा हूं। यदि पर को न देखूं, यदि पर चैतन्य के सामने से अनुपस्थित हो, तो जो शेष रहेगा, वही स्व है।
स्व को देखा तो नहीं जा सकता है। स्व को देखना पर को देखना है। स्व तो द्रष्टा है। वह तो देखने वाला है। वह दृश्य में परिणत नहीं हो सकता है।
इसलिए स्व भी नहीं दिखता है, कोई भी दृश्य नहीं है, तब जो है, वही मैं हूं। शुद्ध चैतन्य का अनुभव आत्मानुभव है।
मैं पर से घिरा हूं, इसलिए पूछूंगा कि आत्मानुभव के लिए पर को अनुपस्थित कैसे करूं? वह तो सदा घेरे हुए है?
पर "पर" तो आंख बंद करते ही अनुपस्थित हो जाता है, इसलिए वह कोई समस्या नहीं है। विचार है वास्तविक समस्या। पर के जो प्रतिबिंब, जो प्रतिफलन चित्त पर छूट जाते हैं और हमें घेरे रहते हैं, वे ही समस्या हैं। उनको ही जानते रहने से हम उसे नहीं जान पाते हैं जो कि उनको भी जान रहा है। विचार, थॉट्स के कारण चेतना, कांशसनेस नहीं ज्ञात हो पाती है। विचार-प्रवाह, थॉट प्रोसेस का जो साक्षी है, उसमें जागना है। साक्षी में जागना, साक्षी को जगाना है। यही ध्यान, मेडीटेशन है।
विचार के अमूर्च्छित दर्शन, राइट माइंड से, विचार-प्रवाह के प्रति सम्यक जागरण से क्रमशः विचार-प्रवाह में जो अंतराल, इंटरवल्स हैं उनका अनुभव होता है। वे रिक्त स्थान क्रमशः बड़े होते जाते हैं। विचार को मात्र देखने भर से, केवल उसका द्रष्टा बनने से, बिना किसी दमन और संघर्ष के वह विसर्जित होता है। विचार-प्रवाह का दर्शन, अवेयरनेस विचार-शून्यता, थॉटलेसनेस पर, और विचार के अतीत ले जाता है।
विचार का शून्य हो जाना ध्यान है। विचार-शून्यता में सच्चिदानंद का अनुभव समाधि है। समाधि सत्य-दर्शन है।
समाधि की अनुभूति सत्य है। समाधि का व्यवहार अहिंसा है।
समाधि में दिखता है कि जो है, अमृत है। मृत्यु का भ्रम विसर्जित हो जाता है। मृत्यु के साथ भय चला जाता है और अभय उत्पन्न होता है। अभय से अहिंसा प्रवाहित होती है।
समाधि में स्व से पहुंचा जाता है, पर उसमें पहुंच कर आत्म और अनात्म विलीन हो जाते हैं। वह भेद विचार का था। समाधि भेद और द्वैत के अतीत है। वह अद्वय और अद्वैत है। जैसे बाती दीए के तेल को जला कर स्वयं भी जल जाती है, वैसे ही स्व भी पर से मुक्त करके स्वयं से भी मुक्त कर जाता है। मैं की मुक्ति, मैं से भी मुक्ति है।
समाधि ब्रह्म-साक्षात है। ब्रह्मानुभूति से ब्रह्मचर्य स्पंदित होता है। ब्रह्मचर्य का केंद्र सत्य और परिधि अहिंसा है। समाधि में सत्य के फूल लगते और अहिंसा की सुगंध फैलती है।